गल्प-समुच्चय

हिन्दी के

विशिष्ट गल्पकारों की सर्वोत्तम गल्पों का संग्रह

संग्रहकर्त्ता और सम्पादक

भारत-विख्यात उपन्यास-सम्राट

श्रीप्रेमचन्दजी

प्रकाशक

सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी

द्वितीय	मूल्य	सन्
संस्करण	२॥)	१९३१
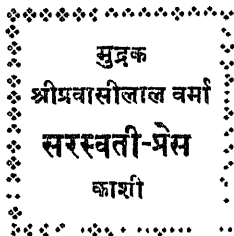
मुद्रक
श्रीप्रवासीलाल वर्मा
सरस्वती-प्रेस
काशी

भूमिका

आधुनिक गल्प-लेखन-कला हिन्दी मे अभी बाल्यावस्था मे है इसलिये इससे पाश्चात्य के प्रौढ गल्पों की तुलना करना अन्याय होगा। फिर भी इस थोडे-से काल मे हिन्दी-गल्प-कला ने जो उन्नति की है, उसपर वह गर्व करे, तो अनुचित नही। हिन्दी मे अभी टालस्टाय, चेकाफ, परे, डाडे, मोपासाँ का आविर्भाव नहीं हुआ है, पर बिरवा के चिकने पात देखकर कहा जा सकता है, कि यह होनहार है। इस सग्रह मे हमने चेष्टा की है, कि हिन्दी के सर्वमान्य गल्पकारों की रचनाओं की बानगी दे दी जाय। हम कहाँ तक सफल हुए है, इसका निर्णय पाठक और समालोचक-गण ही कर सकते है। हमे खेद है, कि इच्छा रहते हुए भी हम अन्य लेखकों की रचनाओं के लिये स्थान न निकाल सके, पर इतना हम कह सकते है कि हमने जो सामग्री उपस्थित की है वह हिन्दी-गल्प-

कला की वर्त्तमान परिस्थिति का परिचय देने के लिये काफी है। इसके साथ ही हमने मनोरजकता और शिक्षा का भी ध्यान रखा है, हमे विश्वास है, कि पाठक इस दृष्टि से भी इस संग्रह मे कोई अभाव न पावेगे।

गल्प-लेखन-कला की विपद रूप से व्याख्या करना हमारा तात्पर्य नही। सक्षिप्त रूप से गल्प एक कविता है, जिसमे जीवन के किसी एक अग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य होता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास, सब उसी एक भाव का पुष्टि-करण करते है। उपन्यास की भॉति उसमे मानव-जीवन का सम्पूर्ण तथा वृहद् रूप दिखाने का प्रयास नही किया जाता, न उपन्यास की भॉति उसमे सभी रसों का सम्मिश्रण होता है। वह रमणीक उद्यान नही, जिसमे भॉति-भॉति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए है, वरन् एक गमला है, जिसमे एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप मे दृष्टिगोचर होता है।

हम उन लेखक महोदयों के कृतज्ञ है, जिन्होंने उदारता-पूर्वक हमे अपनी रचनाओं के उद्धृत करने की अनुमति प्रदान की। हम सम्पादक महानुभावों के भी ऋणी हैं जिनकी बहुमूल्य पत्रिकाओ मे से हमने कई गल्पे ली है।

—प्रेमचन्द

अनुक्रमणिका

—

गल्प-समुच्चय

सरस्वती-प्रेस से प्रकाशित पुस्तकें

१—पं० ज्वालादत्त शर्मा

आप मुरादाबाद के निवासी है। संस्कृत, फारसी और उर्दू के अच्छे ज्ञाता है। आपने उर्दू के कई सुविख्यात कवियों पर आलोचनात्मक पुस्तके लिखी है। आप की वर्णन-शैली और भाषा सरस है।

(१) अनाथ-बालिका

(१)

पण्डित राजनाथ, एम० डी० का व्यवसाय साधारण नहीं है। शहर के छोटे-बडे—अमीर-गरीब सभी उनको अपनी बीमारी मे बुलाते है। इसके कई कारण है। एक तो आप साधु पुरुष है, दूसरे बडे स्पष्ट वक्ता है; तीसरे सदाचार की मूर्त्ति है। चालीस वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी आपने अपना विवाह नही किया। ईश्वर की कृपा से आपके पास रुपये और मान की कमी नही। अतुल धन और अमित सम्मान के अधिकारी होने पर भी आप बडे जितेन्द्रिय, निरभिमान और सदाचारी हैं। गोरखपुर मे आपको डाक्टरी शुरू किये सिर्फ सात ही वर्ष हुए है, पर शहर के छोटे-बड़े सबकी ज़बान पर राजा-बाबू का नाम इस तरह चढ गया है; मानों वे जन्म से ही वहाँ के निवासी है। आपका कद ऊँचा, शरीर छरेरा और चेहरा कान्ति-पूर्ण गोरा है। मरीज से बात-चीत करते ही उसकी तकलीफ आप कम कर देते है। इस कारण साधारण लोग आपको जादूगर तक समझते

है। आपके परिवार मे सिर्फ वृद्धा माता है। एक भानजे का भरण-पोषण भी आप ही करते है। भानजा सतीश कालेज में पढता है।

डाक्टर राजा-बाबू ने अनेक मरीजों से फारिग होकर आज का दैनिक उठाया ही था कि उनके सामने एक ११-१२ वर्ष की निरीह बालिका, आँखों मे आँसू भरे हुए, आ खड़ी हुई। डाक्टर साहब समझ गये कि इस बालिका पर कोई भारी विपत्ति आई है। उन्होंने दैनिक को मेज पर रखकर बडे स्नेह के साथ उससे पूछा—

"बेटी, क्यों रोती हो?"

"डाक्टर साहब कहाँ है, मै उनके पास आई हूँ। मेरी माँ का बुरा हाल है।"

"मैं ही डाक्टर हूँ। तुम्हारी माँ को क्या शिकायत है?"

'डाक्टर साहब, मेरी माँ को बडे जोर का बुखार चढा है। तीन दिन से वह बेहोश थी। आज कुछ होश हुआ है, तो आपको बुलाने के लिये भेजा है। हमारा घर बहुत दूर नहीं है। आप चलकर देख लीजिये।"

"मै अभी चलता हूँ। तुम घबराओ मत। ईश्वर तुम्हारी माँ को निरोग कर देगा।"

डाक्टर साहब अपना हैंड-बेग उठाकर लडकी के साथ पैदल ही चल दिये। लडकी के मना करने पर भी उन्होंने नहीं माना और कहा—तुम्हारा मकान बहुत करीब है। मैं भी प्रातःकाल

से गाडी मे बैठे-बैठे थक-सा गया हूँ; इसलिये थोडी दूर पैदल चलने को तबीयत चाहती है।

डाक्टर साहब पेचदार गलियों से निकलते हुए एक बहुत छोटे मकान मे दाखिल हुए। मकान की अवस्था देखते ही डाक्टर साहब ने समझ लिया कि इसमे रहने वालों पर चिरकाल से लक्ष्मीजी का कोप मालूम होता है। उन्होंने मकान के भीतर जाकर देखा कि एक छप्पर के नीचे चारपाई पर लडकी की माँ लिहाफ ओढे लेटी हुई है। आँगन मे नीम का एक पेड है। उसके पत्तों से आँगन भर रहा है। मालूम होता है कि कई दिनों से घर मे झाड़ू तक नहीं लगाई गई। लडकी ने अपनी माँ की चारपाई के पास पहले से ही एक मूँढा बिछा रखा था; क्योंकि उसने अपनी माॅ से सुना था कि कोई भी ग़रीब आदमी डाक्टर साहब के घर से निराश नही लौटाया जाता। डाक्टर साहब मूँढे पर बैठ गये। लड़की ने माँ के कान मे ज़ोर से आवाज दी कि डाक्टर साहब आ गये। माँ ने मुँह पर से लिहाफ उठाया। यद्यपि बीमारी की तकलीफ के कारण उसके चेहरे पर उदासी छाई थी, तथापि उस उदासी के अन्दर से भी डाक्टर साहब ने उसके हृदय की पवित्रता और मानसिक दृढता की निर्म्मल किरणों को छनते हुए देखा। उन्होंने यह भी जान लिया कि भगवान् अदृष्ट के कोप से यद्यपि यह रोगिणी इस छोटे से मकान में टूटे-फूटे सामान के साथ रहने को विवश कर दी गई है; किन्तु एक दिन यह ज़रूर अच्छे घर और बड़े सामान के

साथ किसी सुयोग्य पति के हृदय की अधिकारिणी रही होगी। रोगिणी की अवस्था ४० वर्ष के ऊपर थी। रोग और गरीबी ने मिलकर उसके मुख-कमल को मलिन करने मे कोई कसर न छोडी थी, परन्तु उसके चेहरे पर जिस स्वर्गीय शान्ति का आधिपत्य था, उसे विपत्ति नही हटा सकी थी। रोगिणी के शान्ति-पूर्ण चेहरे को देखते ही डाक्टर के हृदय मे उसके विषय मे बडी श्रद्धा उत्पन्न हो गई। उन्होंने अपने स्वभाव-सिद्ध मीठे स्वर से पूछा—

"माजी, आपको क्या तकलीफ है? धीरे-धीरे अपनी तबीयत का हाल कह सुनाइए।"

रोगिणी ने कराहते हुए कहा—

"राजा-बाबू तुम दीनबन्धु हो, इसलिए ईश्वर-वत पूज्य हो। मै आपसे लज्जा छोड़ कर कुछ कहना चाहती हूँ। आशा है, इसके लिए तुम मुझको क्षमा करोगे। ससार मे मैने किसी का एहसान नही उठाया, पर मरते समय तुम्हारे एहसान के नीचे मुझे दबना पड़ा। इसलिए ईश्वर तुम्हारा...... ......" यह कहते-कहते रोगिणी के नेत्रों मे आँसू भर आये।

राजा-बाबू ने बड़ी नम्रता से कहा—

"माँजी, आप तबीयत को भारी न कीजिए। मै आपकी सेवा के लिए तैयार हूँ। आप निस्सङ्कोच आज्ञा कीजिये; पर पहले रोग का हाल तो कहिए।"

"डाक्टर साहब, रोग का हाल कुछ नहीं। समय पूरा हो

गया है। अब मै आपसे जो कुछ कहना चाहती हूँ, उसे सुन लीजिए। सरला—जो आपके पीछे खडी हुई है—मेरी एक-मात्र कन्या है। यह अब अनाथ होती है। इसको मै आपके सिपुर्द करती हूँ। इसका विवाह मै न कर सकी, इसीलिए मुझे आपसे इतनी बडी भिक्षा माँगनी पडी। यह घर के काम-काज मे होशियार है। जो कुछ मै जानती थी और बता सकती थी, उसकी शिक्षा मैने इसको दे दी है। यह आपकी सेवा करेगी। मुझे पूर्ण आशा है कि यह आपको प्रसन्न रक्खेगी। समय आने पर आप इसका किसी पढे-लिखे ब्राह्मण-वर के साथ विवाह कर दे। बस मेरी यही प्रार्थना है। और, हाँ, यह एक पैकट है, जिसमे दो लिफाफे है। इनको आप मेरी मृत्यु के एक वर्ष बाद जब चाहे पढे। उनमें मेरा परिचय है—जिसको बताने की और आपको जानने की इस समम जरूरत नहीं। दूसरों का उपकार करने वाले सदा सङ्कट मे ही रहते है। आप भी परोपकार-रत है, इसलिए आपको भी बे-वास्ते इन सकटों मे पड़ना पड़ा।"

इस प्रकार कहते-कहते उसका गला भर आया।

राजा-बाबू ने उत्तर दिया—

"माँजी, मै आपकी आज्ञा को सहर्ष स्वीकार करता हूँ। मै आपकी कन्या को सन्तान-वत् रक्खूँगा। मेरे घर मे कोई बालक नही। माताजी सरला को पाकर यथार्थ में बहुत प्रसन्न होंगी। समय आने पर मै इसका विवाह भी कर दूँगा; पर आप इतना निराश क्यों होती हैं। मुझे आशा है, आप अच्छी हो जायँगी।"

इसके बाद डाक्टर साहब ने रोगिणी की नब्ज़ आदि देखी। देखने से डाक्टर साहब को मालूम होगया कि रोगिणी का रोग-विषयक बयान बहुत कुछ ठीक है।

उसी दिन शाम को रोगिणी इस संसार से चल बसी।

(२)

विस्मृति भी बडे काम की चीज़ है। यह न होती, तो मनुष्य का जीवन बहुत बुरा हो जाता। जन्म से लेकर आज तक हमको जिन-जिन दु:खों, क्लेशों और सङ्कटों का सामना करना पडा है, वे सब-के-सब यदि हर समय हमारी आँखों के सामने खडे रहते, तो हमारा जीवन भयानक हो जाता। अकेली विस्मृति ही उनसे हमारी रक्षा करती है।

सरला ने मातृ-वियोग को सह लिया। माता की याद धीरे-धीरे विस्मृति के गर्भ मे छिपने लगी। अब उसकी जीवन-पुस्तक का एक नया, पर चमचमाता हुआ, पृष्ठ खुला। छोटे-से झोपडे से निकलकर अब उसने महल को मात करनेवाले डाक्टर राजा-बाबू के मकान मे प्रवेश किया। माता की छत्रच्छाया उठ गई, डाक्टर की वृद्धा माता की गोद का आश्रय मिला, पर उसमे भी उसने वही स्नेह-रस-परिप्लुत अभय दान पाया।

सरला ने पहले तो कुछ सङ्कोच अनुभव किया; पर अन्नपूर्णा की ममता-पूर्ण और डाक्टर साहब की स्नेह-भरी बातों ने उसको बता दिया कि वह मानों अपने ही घर मे है। डाक्टर साहब ने सरला की शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध कर दिया।

सरला भी डाक्टर साहब की यथा-शक्य सेवा करने लगी। पर नौकरों की तरह नही, घर के बच्चे की तरह। वह डाक्टर साहब को अपने हाथ से भोजन कराती। अन्नपूर्णाजी यद्यपि अपने देवोपम पुत्र के लिए स्वय ही भोजन तैयार करती; पर सरला फिर भी उनको कुछ कम सहायता न देती। सरला को धीरे-धीरे पाक-शास्त्र की शिक्षा मिलने लगी। वृद्धा अन्नपूर्णा के निरीक्षण मे निरामिषभोजी डाक्टर साहब के लिए विविध प्रकार के शाक, खीर, हलुआ आदि अनेक सु-स्वादु और पौष्टिक पदार्थ वह बनाने लगी। प्रात काल होते ही, अन्नपूर्णा की पूजा का सामान भी वह ठीक कर देती। घर के बगीचे से फूल लाकर सजा देती और चन्दन आदि सामग्री यथा-स्थान रख देती। अपनी सेवा और सु-स्वभाव से—मतलब यह कि—सरला ने डाक्टर साहब और उनकी वृद्धा माता के हृदय मे सन्तान से बढ-कर स्नेह पैदा कर लिया।

बडे दिन की छुट्टियों मे सतीश घर आया। उसने देखा कि घर मे एक देवी-स्वरूपिणी कन्या रहती है। उसके आलोक से उसने मानों सारा मकान आलोकित पाया। मामा से पूछने पर उसको मालूम हुआ कि वह भी उनकी एक आत्मीया है और कुछ दिनों तक उनके यहाँ रहने के लिए चली आई है। दो-चार दिन तक सतीश को उसके साथ बात-चीत करने मे सकोच-सा मालूम हुआ। उधर सलज्जा सरला भी एक नये आदमी के साथ बात-चीत करने मे झिझकती रही, पर कुछ ही दिनों मे दोनों की

तबीअते खुल गईं। फिर तो वे आपस मे खूब आलाप करने लगे। सतीश ने सरला से कभी उसका परिचय न पूछा, क्योंकि वह मामाजी की बात को वेद भागवान् की बात समझता था। न सरला ने ही अपना प्रकृत परिचय देने की आवश्यकता समझी। इसमे सन्देह नहीं कि सरला की योग्यता, गृहकार्य्य-कुशलता और उसके पवित्रता-पूर्ण आचरण पर सतीश मन से मुग्ध हो गया। सरला भी सतीश के कामों का बडा ध्यान रखती। सतीश प्राय: देखता कि उसके कपड़े तह किये हुए यथा-स्थान रक्खे है, वह अपने पढने की पुस्तकें भी—जिनको वह इधर-उधर बिखरी और खुली हुई छोड गया था—बन्द की हुई और चुनी हुई पाता। छुट्टियों के अत्यल्प काल मे ही सरला ने उसके हृदय मे स्थान कर लिया। उसको न-मालूम क्यों हर समय सरला का ध्यान रहने लगा। वह अपने मन से भी इसका कारण कई दफे पूछकर कुछ उत्तर न पा सका था। परन्तु वह जाने या न जाने—और जानने की जरूरत भी नहीं—प्रेमदेव की पवित्र किरणों से उसका हृदयाकाश अवश्य ही आलोकित रहने लगा। वह कभी सरला को पढ़ाता—बीसियों नई-नई बाते बताता—और कभी घण्टों खाली इधर-उधर की बातें ही करता। मतलब यह कि इन दोनों की मैत्री दिन-पर-दिन मजबूत होने लगी। छुट्टियाँ समाप्त होने पर जब सतीश कालेज को जाने लगा, तब उसे मकान छोड़ने मे बड़ा मीठा दर्द-रूप मोह मालूम हुआ; पर वह तत्काल सँभल गया और [हमेशा की तरह

मामाजी और वृद्धा के चरण छूकर सरला से आँखों-ही-आँखों उसने बिदा ली।

(३)

सतीश सेन्ट्रल हिन्दू-कालेज मे पढता है। इस वर्ष वह एम० ए० की अन्तिम परीक्षा देगा। सती बडा धार्मिक है। वैसे तो हर लड़के को, जो हिन्दू-कालेज के बोर्डिङ्ग-हाउस मे रहता है, स्नान-ध्याय और धार्मिक कृत्य सम्पादन करने पड़ते है, किन्तु सतीश ने अपनी बाल्यावस्था के कुल वर्ष अपने मामा डाक्टर राजा-बाबू के साथ काटे है। इसलिए, नित्य प्रातःकाल उठना, सन्ध्योपासन करना और परोपकार के लिए दत्त-चित्त रहना उसका स्वभाव-सा हो गया है। सतीश छः वर्ष से इसी कालेज में पढ़ रहा है और हर वर्ष परीक्षा मे बडी नामवरी के साथ पास हो रहा है। सतीश अपने दैवी गुणों के लिए सब लडकों मे प्रसिद्ध है। हर एक लड़का, किसी-न-किसी रूप मे, उसकी कृपा का पात्र बना है। अनेक कमज़ोर (शरीर मे नही पढ़ाई मे) लड़कों ने उससे पढ़ा है; अनेक गरीब विद्यार्थियों की उसने आर्थिक सहायता की है। किसी लड़के के रोग-ग्रस्त होने पर सहोदरवत् उसने उसकी शुश्रूषा भी की है। इसलिए, कालेज का हर लडका उसको बड़ी पूज्य-दृष्टि से देखता है। सतीश के पास वाले कमरे मे रामसुन्दर-नामक एक लड़का रहता है। वह दो वर्ष से इस कालेज मे पढ़ता है। पर, है सतीश का सहाध्यायी ही। यह लड़का घर का मालदार होते हुए भी विद्या का

बडा प्रेमी है। इसके पिता का हाल में स्वर्गवास हो गया है और यह बहुत बड़ी सम्पत्ति का मालिक हुआ है। पर, फिर भी, इसने पढना नहीं छोड़ा। सतीश के साथ इसकी बडी घनिष्ठता है। सतीश और रामसुन्दर की प्रकृति अनेक अंशों मे एक-सी है। इसीलिये इन दोनों मे खूब मित्रता है। सतीश और रामसुन्द छुट्टी के समय प्राय: एक ही साथ रहते है।

सतीश और रामसुन्दर एक नाव पर बैठे हुए है। नाव पुण्यतोया भागीरथी मे धीरे-धीरे बह रही है। ग्रीष्म-ऋतु की सन्ध्या है। बडा लुभावना दृश्य हैं। तारों का बिम्ब गङ्गाजल मे पडकर अजीब बहार दिखा रहा है। सच तो यह है कि इस "शाम" के सामने "शामे लखनऊ" कुछ भी चीज नही। नाव-वाला बड़े मीठे स्वर मे कोई गीत गा रहा है। उसकी आवाज गङ्गा के तट के अट्टालिका-सम ऊँचे स्थानों से टकराकर मानों कई गुनी होकर वापिस आ रही है। ये दोनों मित्र आपस मे खूब घुल-घुलकर बाते कर रहे है। अन्त मे सतीश ने कहा—

"मित्र, तुम्हारा हृदय बहुत विशाल है। इस बात को मैं स्वीकार करता हूँ। जहाँ तक मेरी शक्ति है, मैं तुमको इस पुण्य-कार्य्य मे सहायता दूँगा। तीन मास बाद कालेज बन्द होगा। उस समय तीन मास से अधिक का अवकाश मिलेगा। उसमे मै तुम्हारे साथ रहूँगा। जहाँ तुम चलोगे मैं चलूँगा। जहाँ तक पता चलेगा, मै तुम्हारे मनोरथ के साफल्य के लिये प्रयत्न करूँगा। इस समय इस काम को ईश्वर के ऊपर छोड़ो।

परीक्षा के दिन बहुत कम रह गये हैं। इसलिए सब ओर से मन हटाकर इसी ओर लगाना चाहिए। परीक्षा से निवृत्त होकर अपनी सब शक्तियाँ उधर लगावेंगे। मैं तुम्हारा साथ दूँगा।"

रामसुन्दर—भाई सतीश, मुझे तुम्हारा बहुत भरोसा है। पूर्ण आशा है कि यदि तुम-जैसे परोपकार-व्रती और देवोपम मित्र ने प्रयत्न किया, तो मेरा यह कार्य्य—जिसके कारण मेरी निद्रा और मेरी, भूख, दोनों नष्ट हो गई है—जरूर सिद्ध हो जायगा। मित्र, तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है—

'यद्यपि जग दारुण दुख नाना।
सबते कठिन जाति-अपमाना।'

नाव धीरे-धीरे किनारे पर आ लगी और ये दोनों नवयुवक उससे उतर कर कालेज की ओर चल दिये।

(४)

सरला को माता को मरे दो वर्ष बीत गये। सरला निश्चिन्तता-पूर्वक डाक्टर-बाबू के यहाँ रहती है। उसको अपनी माता की याद आती है जरूर; पर डाक्टर और उसकी वृद्धा माता के सद्व्यवहार से उसको कोई कष्ट नहीं। बल्कि, यह कहना चाहिए कि कोई ऐसा सुख नहीं, जो उसको प्राप्त न हो। राजा-बाबू उसको अपनी ही पुत्री समझते हैं। उसने भी अपने गुणों से उसको खूब प्रसन्न कर रक्खा है।

राजा-बाबू ने दो वर्ष बाद उस लिफाफे को खोला, जिसको पढने की आज्ञा सरला की माता, मरते समय दे गई थी।

उसमे दो लिफाफे थे। जिस पर नम्बर एक पडा था, उसको खोल-कर डाक्टर साहब पढने लगे। उसमे लिखा था—

"आप मेरे परम हितैषी है। जो ऐसा न होता, तो यह लिफाफा आप न पढते। अब तक यह कब का अग्निदेव के सिपुर्द हो चुका होता। आप मेरी कन्या के सरक्षक है। इस कारण मै आपसे नीचे लिखा वृत्तान्त कहती हूँ। सुनिये—

"मेरे पति दो भाई थे। पति की मृत्यु के बाद मेरे जेठ ने मुझसे अच्छा व्यवहार न किया। उन्होंने एक दिन क्रोध-वश मुझे मकान से निकल जाने तक की आज्ञा दे दी। मेरे पति ने मरते समय बिना विचार किये ही, अपने भाई की आज्ञा का पालन करने का आदेश मुझे दिया था; इसलिए स्वर्ग-गत पतिदेव की आज्ञा का स्मरण करके मुझे अपने जेठ की अत्यन्त अनुचित और अकारण दी हुई आज्ञा को शिरोधार्य्य करना पडा। मैं अपनी एक मात्र कन्या को लेकर घर से निकल चली। ओफ! कैसी भीषण रात्रि थी। उस समय के दुःख का हाल किसी भले और सम्मान्य घर की स्त्री के मन से ही पूछना चाहिये। मेरे शरीर पर कुछ आभूषण थे। उन्हीं के सहारे मै कई सौ मील की यात्रा करके यहाँ आई और एक साधारण-सा मकान लेकर रहने लगी। मैंने जीवन-भर प्रतिष्ठा के साथ अपना और अपनी प्यारी बेटी का पेट पाला। मैंने 'आन को रक्खा जान गँवा कर' बस मेरा यही रहस्य है। अब यदि आप मेरा पूरा परिचय प्राप्त करना चाहे, तो दूसरे लिफाफे को खोलिए। उसमें आपको मेरे जेठ का लिखा हुआ

एक रजिस्टर्ड इकरारनामा मिलेगा। उसमे उन्होंने मेरे पति की सम्पत्ति को मेरी सम्पत्ति से अलग, अर्थात् विभक्त बताया है। उसमे मेरे पतिदेव का पूरा पता भी प्रसङ्गवश आ गया है। उसको आप साधारण कागज़ न समझिये। उसके द्वारा मेरी एकमात्र कन्या सरला—ईश्वर उसे सानन्द रक्खे—एक दिन लाख रुपये से अधिक मूल्यवाली सम्पत्ति की अधिकारिणी बन सकती है; पर मैं नही चाहती कि उसका प्रयोग किया जाय। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरी सरला अपने गुणों के कारण ही बहुत बडा सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी।

अन्त मे, मै आपको हृदय से आशीर्वाद देती हूॅ कि ईश्वर आपका भला करे, क्योंकि आपने मेरा और मेरी कन्या का भला किया है।"

डाक्टर राजनाथ को पत्र पढकर बडा आश्चर्य्य हुआ। वे बहुत देर तक ईश्वरीय माया और मरनेवाली सती की दृढ प्रतिज्ञा पर विचार करते रहे। उन्होंने दूसरा लिफाफा बिना पढे ही अपने बाक्स मे बन्द कर दिया।

(५)

जब डाक्टर राजनाथ ने सतीश के पत्र मे यह पढा कि वह परीक्षा देकर मकान पर न आवेगा, तब उनको बड़ी चिन्ता हुई। उसका विचार कुछ दिनों इधर-उधर घूमने का है। और खर्च के लिये पाँच सौ रुपये उससे माँगे हैं। राजनाथ ने पाँच सौ रुपये का नोट नीचे लिखी चिट्ठी के साथ उसके पास भेज दिया—

"प्रिय सतीश,

मुझे बड़ा विस्मय है कि तुम किधर जा रहे हो और क्यों? माताजी तुमको देखने के लिए बड़ी व्यग्र है; पर, मुझे भरोसा है कि तुम किसी अच्छे उद्देश्य से ही जा रहे हो। खर्च भेजता हूँ। यथा साध्य शीघ्र लौटना।

शुभानुध्यायी—

राजनाथ।"

पाँचवे-छठे दिन इसका उत्तर आ गया। उसमे लिखा था—

"पूज्य मामाजी, प्रणाम।

कृपापत्र और ५००) का नोट मिला। मेरे मित्र पण्डित रामसुन्दर को आप जानते ही हैं। उनका एक बहुत ही आवश्यक कार्य्य है, जिसमे वे मेरी सहायता चाहते है। उस कार्य्य के लिए इधर-उधर घूमना पड़ेगा। मैं आपको पहले पत्र मे ही वह कार्य्य बता देता, जिसके लिए यह तैयारी है; पर उसको गुप्त रखने के लिए उन्हों ने ताकीद कर दी है। अब आप यदि आज्ञा दें, तो मैं उनके साथ चला जाऊँ। आपके उत्तर की मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

सेवक—

सतीश।"

पत्र को पढकर राजा-बाबू कुछ देर तक सोचते रहे। फिर उन्होंने नीचे लिखा हुआ प्रत्युत्तर अपने भानजे को भेजा—

"प्रिय सतीश,

मैं बड़ी प्रसन्नता से तुमको अपने मित्र के कार्य्य में सहायता देने की आज्ञा देता हूँ। खर्च के लिए जिस क़दर रुपये की और जरूरत हो, निस्सङ्कोच मँगा लेना। यात्रा से लौटते समय अपने मित्र को भी एक दिन के लिए इधर लाना। उनको बहुत दिनों से मैंने नही देखा। देखने को तबीअत चाहती है। आशा है, वे मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

शुभैषी—

राजनाथ।"

राजा-बाबू ने पत्र समाप्त ही किया था कि सरला ने चाँदी की तश्तरी मे कुछ तराशे हुए फल उनके सामने रख दिये। राजा-बाबू फल खाते-खाते सरला से इधर-उधर की बातें करने लगे।

(६)

गरमी की बड़ी छुट्टियों के ८-१० दिन ही बाकी हैं। सतीश ने अब की बार छुट्टी के तीनों महीने बाहर ही काटे। कल उसकी चिट्ठी आई कि वह आज रात को रामसुन्दर-सहित मकान पहुँचेगा। उसका कमरा साफ किया गया है। वृद्धा माता भी आज बड़ी खुशी से भोजन बना रही हैं। सरला के मन की आज अद्भुत दशा है। कभी तो वह हर्ष के मारे उछलने लगता है और कभी किसी अज्ञात कारण से उसकी गति और भी कम पड जाती है। उसका मुख-सरोज घड़ी-घड़ी पर इन भावों के अस्तोदय के साथ खिलता और मुरझाता है। उसने यह भी सुना है

कि सतीश के साथ उसके मित्र भी आवेंगे, जिनके काम में उसने अपनी सारी छुट्टियाँ खर्च की है। सरला मन-ही-मन सतीश के मित्र पर नाराज़ भी है; क्योंकि उसके कारण ही सतीश की छुट्टियों से वह फायदा नहीं उठा सकी।

सतीश रात के ९ बजे की ट्रेन से मकान पहुँच गया। राजा-बाबू उसकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। उन्होंने बड़े प्रेम से रामसुन्दर को अपने पास बिठाया और बडे आग्रह से पूछा—"मुझे आशा है, तुम अपनी चेष्टाओं में अवश्य सफल हुए होगे।" रामसुन्दर ने निराशा-भरी आवाज में उत्तर दिया—"सफलता का कोई चिह्न नहीं मिला। भविष्यत् के लिए कोई आशा भी बाकी नही रही।" इस पर डाक्टर साहब ने उसे ढाढस देकर उसके चित्त-क्षोभ को बहुत कुछ कम कर दिया।

सतीश मामाजी के चरण छूकर अन्दर गया। सरला को देखते ही उसका मुख-कमल खिल उठा। उसने देखा कि उसके काम की हर चीज़ ठीक रक्खी हुई है और बडी सावधानता से उसके आने की बाट देखी जा रही है। सरला ने मुस्कराकर, पर ताने के साथ, पूछा—

"अबकी बार आपने कुल छुट्टियाँ बाहर ही बिता दी?"

"मित्र के काम के लिए यह सब करना पड़ा, पर कोई फल न हुआ। इसके लिए मुझे भी दुःख है।"

"आपके मित्र का ऐसा क्या काम था, जिसके लिए तीन महीने इधर-उधर घूमना पड़ा और फिर भी वह न हो सका?"

"उस काम का ज़िक्र करने से भी, सरला, मुझे दुःख होता है। इसलिए, सुनकर तुम भी दु.खी हुए बिना न रह सकोगी। भोजन की बात तो कहो, क्या देर है? भूख लग रही है।"

"बिलकुल तैयार है। मै जाकर नौकर से आसन बिछाने के लिए कहती हूँ। आप, मामाजी और अपने मित्र को साथ लेकर आइए।"

यह कहकर सरला बड़ी फुरती से चली गई। उसने बडे करीने से भोजन चुनना शुरू किया। तीन थालों मे भोजन चुना गया। जिन चीजों को गरम रखने की जरूरत थी, वे अभी तक गरम पानी मे रक्खी हुई थी; भोजन के साथ नहीं परोसी गई थीं। थोड़ी देर मे डाक्टर साहब, सतीश और रामसुन्दर के साथ आ पहुँचे। भोजन शुरू हुआ, सरला ने बड़ी होशियारी से परोसना आरम्भ किया। भोजन करते समय इधर-उधर की बाते होने लगीं—

'सतीश—'मामाजी, स्टेशनों पर बहुत बुरा भोजन मिलता है। भाई रामसुन्दर, बलिया के स्टेशन की पूडियाँ याद हैं?"

रामसुन्दर—"और लखनऊ के स्टेशन के 'निखालिस दूध' को तो कभी न भूलिएगा।"

सतीश—"पर तरकारी तो किसी भी स्टेशन की भूलने की नहीं।"

डा० सा—"ऐसे मौक़ों पर तो फल खा लेने चाहिए।"

सतीश—"मामाजी, बड़े स्टेशनों को छोडकर और स्टेशनों पर फल नहीं मिलते।"

बातें भी जारी थीं। खाना भी जारी था। सरला का परोसना भी जारी था। रामसुन्दर यद्यपि बातों मे योग दे रहा था; पर उसका ध्यान सरला ही की ओर था। वह बार-बार उसी को देखता था। उसकी इस हरकत से सतीश को थोड़ी-सी भीतर जलन पैदा हुई। मानिनी सरला ने भी मन मे कुछ बुरा माना। भोजन साङ्ग हुआ। रामसुन्दर और सतीश ने एक-कण्ठ से कहा—"तीन महीने मे आज ही तृप्त होकर भोजन किया है।"

चलते समय रामसुन्दर ने मुडकर एक बार फिर सरला को देखा। अब की बार तो सतीश जल ही गया। दोनों मित्र बाहर आये। सतीश को गुस्सा आ ही रहा था कि रामसुन्दर को इस बेहूदा हरकत पर उसको लानत-मलामत दे कि इतने ही मे उसने पूछा—

"भाई, यह लड़की कौन है? जब मैं पहले तुम्हारे यहाँ आया था, तब तो यहाँ यह न थी।"

मानों सतीश की प्रदीप्त क्रोधाग्नि पर मिट्टी का तेल पड़ा। उसने बडो घृणा के साथ कहा—

रामसुन्दर, तुम बड़े नीच हो। जब तक खाते रहे, तब तक उसकी ओर घूरते रहे। जब खाकर बाहर आये, तब फिर-फिरकर उसकी ओर देखा किये। अब तुम्हारी नीचता इतनी बढ़ गई कि मुझसे भी उसी प्रकार के प्रश्न करने लगे। मुझे तुम्हारी नैतिक अवस्था पर बड़ा दुःख है।'

सतीश की यह बकवास सुनकर रामसुन्दर को जरा भी क्रोध न आया। उसने बडे विनीत भाव से कहा—

"भाई साहब, आप क्या कह रहे है ? जो कुछ आपने मेरे आचरण के विषय मे कहा, ठीक है ; पर यह आचरण किस दृष्टि से देखना चाहिये, इस पर आप ने विचार नही किया। मै समझता हूॅ कि हमारा सैकड़ों मील इधर-उधर घूमना बेकार हुआ। जिसकी हमको तलाश थी, वह हमारे ही घर मे मौजूद है। मै सच कहता हूॅ कि कई बार मेरे जी में आया कि अपनी नन्ही को हृदय से लगा लूॅ। आप मामाजी से इसके विषय मे पूछिये तो मेरा हृदय कूद रहा है। कार्य सिद्ध हो गया।"

बडे ही विस्मय और सलज्जता के साथ सतीश ने पूछा—"रामसुन्दर क्या सच कहते हो, यही तुम्हारी बहिन—नन्ही है ?"

"मेरी अवस्था आठ वर्ष की थी, जब प्यारी नन्ही हमसे जुदा हुई थी। मुझे अब तक उसका चेहरा खूब याद है। वह हँसता हुआ स्वर्गीय कान्ति-पूर्ण चेहरा, आज भी मेरी ऑखों के सामने फिर रहा है। सरला से उसका चेहरा बहुत मिलता है। मुझे खूब याद है, उसके गाल पर दो छोटे-छोटे स्याह तिल थे। सरला के चेहरे पर भी वैसे ही हैं। चलिए, मामाजी से इसके विषय में पूछ-ताछ करें।"

दोनों मित्र तत्काल डाक्टर साहब के कमरे मे आये। डाक्टर साहब आराम-कुर्सी पर लेटे कोई व्यवसाय सम्बन्धी पुस्तक पढना ही चाहते थे कि ये दोनों वहाॅ पहुॅच गये। उन्होंने कहा—

"सतीश, अब आराम करो। बहुत थके हो।"

सतीश ने धीरे से कहा—"मामाजी, रामसुन्दर सरला के विषय में आपसे कुछ पूछना चाहते हैं।"

डाक्टर साहब ने भाव-पूर्ण दृष्टि से रामसुन्दर को देखा, जिसका चेहरा हर्ष और विस्मय के मिले हुए भाव से एक विशेष प्रकार का आकार धारण कर रहा था।

डाक्टर साहब ने कहा—

"सरला के विषय मे आप क्या और क्यों पूछना चाहते है?"

रामसुन्दर बड़े विनीत भाव से बोला—

"मामाजी! आज मै अपने घर का एक रहस्य सुनाता हूँ।

उसी के विषय मे मै और भाई सतीश, इधर-उधर सैकड़ों मील घूमा किये। मगर सफलता तो क्या, उसके चिह्न तक भी नही मिले। अब मै उस रहस्य को सुनाता हूँ। मेरे पिता दो भाई थे—रामप्रसाद और शिवप्रसाद। रामप्रसादजी मेरे पिता थे। शिवप्रसादजी के एक कन्या थी, जिसको घर के लोग स्नेह-वश नन्हीं कहा करते थे। वह मुझसे छः वर्ष छोटी थी। मेरे चाचा—नन्हीं के पिता—का देहात मेरे पिता के सामने ही हो गया था। मेरी चाचीजी का स्वभाव बड़ा उग्र था। वे अपनी आन की बड़ी पक्की थी। एक दिन मेरे पिता ने किसी घरेलू बात पर गुस्सा होकर उनसे घर से निकल जाने की बहुत ही बुरी बात कह दी। उसके लिए उनको सदा पश्चात्ताप रहा और इस बड़े भारी कलङ्क को साथ लिये ही उन्होंने इह-लोक परित्याग किया। मेरी

चाची ने उसी रात को घर छोड़ दिया। नन्हीं को भी वे साथ ले गईं। मेरे पिता ने बहुत तलाश की, पर पता न लगा। मरते समय उन्होंने मुझको अन्तिम वसीअत के तौर पर यही कहा कि 'जिस तरह हो, अपनी चाची और बहिन का पता लगाना। यदि पता लग जाय, तो उनकी सम्पत्ति मय उस दिन तक के सूद के उनको दे देना। इस तरह मेरी आत्मा के कलङ्क को धोने की चेष्टा करना। मेरा गया-श्राद्ध इसे ही समझना। यदि पता न लगे, तो तू भी विवाह मत करना। अपने शरीर के साथ ही वंश की समाप्ति कर देना; क्योंकि इस कलंक के साथ वंश-वृद्धि करना मानो कलङ्क जिन्दा रखना है। बेटा, वंश-नाश ही इस पाप का एक छोटा-सा; पर भयानक प्रायश्चित्त है। आशा है, तुम इस प्रायश्चित्त-द्वारा, मेरे कारण अपने वंश पर लगे इस कलङ्क से उसको मुक्त करने का—ज़रूरत हुई तो—सुप्रयत्न करोगे।" यह कहते-कहते मेरे पिता के प्राण-पखेरू उड़ गये। उनकी मृत्यु के बाद से ही मैं व्यग्र था कि इस विषय मे क्या करूँ। भाई सतीशचन्द्र से मैंने अपना रहस्य खोलकर कह दिया था और इन्होंने सदा की तरह मेरे इस दु:ख मे भी भाग लेना स्वीकार कर लिया था। अब, जैसा कि आपको मालूम है, हम लोग सैकड़ों मील का चक्कर और न-मालूम किन-किन मुसीबतों को झेलकर वापिस आ गये और कार्य्य-सिद्धि न हुई। पर, यहाँ आकर—यहाँ सरला को देखकर—मेरी अन्तरात्मा बार-बार यह कह रही है, कि यही मेरी बहन नन्ही है। अब आप कृपा करके यह बतलाइए कि सरला

के विषय मे मेरी जो यह धारणा है, उसको आप अमूलक तो नहीं समझते ?'

डाक्टर साहब ने बडी शान्ति से उत्तर दिया,—

"रामसुन्दर, मै इसके उत्तर मे स्वय कुछ न कहकर तुमको वे पत्र दिये देता हूँ, जो सरला की माता ने मरते समय सरला के साथ ही मुझे सिपुर्द किये थे। मुझे प्रतीत होता है कि तुम अपनी चेष्टाओं मे सफल हुआ चाहते हो।"

डाक्टर साहब ने बाक्स खोलकर वे दोनों लिफाफे राम-सुन्दर के हाथ मे दे दिये, जो सरला की माता ने उनको दिये थे। रामसुन्दर ने दोनों लिफाफों को खोलकर पढ़ा। उनको पढ़ते ही उनको निश्चय हो गया कि उसकी चाची का ही यह पत्र है और उसके पिता का ही वह इकरार-नामा है। सरला भी प्यारी नन्हीं के सिवा और कोई नहीं। रामसुन्दर डाक्टर-बाबू के चरणों पर गिर पड़ा और सतीश, जो इस अभिनय को देखकर आश्चर्य्य मे डूब रहा था, उठकर बाहर चला गया। डाक्टर बाबू ने सरला को बुलाया। वह तुरन्त आकर उपस्थित हो गई। रामसुन्दर भावावेश को न रोक सका और सरला को हृदय से लगाकर अश्रुवर्षन करने लगा। यदि डाक्टर-बाबू सरला से यह न कहते, तो वह अपने को बड़ी विपत्ति में समझती—

"बेटी, ये तुम्हारे भाई रामसुन्दर है। तुम्हारी तलाश मे बहुत दूर तक घूम आये है। तुम उस दिन कहती थीं कि तुम्हारी माता तुमसे कभी-कभी जिक्र किया करती थी कि सरला, तुम्हारे

एक भाई है। वह अवश्य एक दिन तुमको मिलेगा। आज तुम्हारी स्वर्गीया माता की भविष्यद्वाणी पूरी हुई।"

(७)

चार मास के बाद डाक्टर राजनाथ ने नीचे लिखा हुआ निमन्त्रण-पत्र अपने मित्रों के नाम भेजा—

"प्रिय महोदय,

मेरे भानजे श्रीसतीशचन्द्र विद्यानिधि, एम० ए० का विवाह जौनपुर के सुप्रसिद्ध रईस स्वर्गीय पण्डित शिवप्रसादजी की कन्या के साथ होना निश्चित हुआ है। आपसे प्रार्थना है कि वसन्त पञ्चमी के दिन शाम को मेरे निवास-स्थान पर पधार कर, भोज मे सम्मिलित हूजिए और दूसरे दिन प्रात.काल ९ बजे की ट्रेन से बरात में सम्मिलित होकर मेरी मान-वृद्धि कीजिए।

निवेदक—

राजनाथ।"

कहने की ज़रूरत नहीं कि सरला का विवाह सतीश के साथ बडी धूम-धाम से हो गया। रामसुन्दर ने उसकी कुल सम्पत्ति दहेज़ में सरला के अर्पण कर दी। आज तक रामसुन्दर और सतीश मित्रता के ही जबरदस्त पाश में बद्ध थे। अब वे मित्रता और आत्मीयता के डबल पाश मे बेतरह जकड गये!

——o——

(२) स्वामीजी

(१)

मारे छोटे से जीवन मे भी कितने ही व्यापार घटे है, कितने ही हर्ष-शोक के समय आये है, पर उस दिन की घटना यद्यपि उसे आज पूरे बीस वर्ष गुजर गये, जैसी स्पष्ट याद है वैसी और कोई बात याद नहीं। जब हमारी उम्र चार साल की थी, तब की भी हमे घटना याद है। उस समय ऊपर चढ़ते समय जीने से हम लुढ़क पड़े थे, चोट भी लगी थी। वह बात हमें आज भी जैसी साफ याद है—इन्ट्रेन्स की परीक्षा मे इतिहास के पर्चे में क्या पूछा गया था—इस समय बिलकुल याद नहीं। मस्तिष्क-विद्या-विशारद ही इन गुत्थियों को खोल सकते हैं।

जून का महीना था। कालेज की छुट्टियाँ थीं। परीक्षा-फल प्रकट हो चुका था। पास होने की खुशी ताजी थी। मित्र भी सब पास हुए थे ; इसलिए हरद्वार जाने का प्रस्ताव पेश होते ही 'भारत-रक्षा कानून' की तरह सर्व सम्मति से 'पास' हो गया। उसी दिन रात को पञ्जाब-मेल में सवार होकर मित्र-मण्डली दूसरे

दिन तडके ही हरद्वार मे दाखिल हो गई। गगा-स्नान और गगा-तट पर भ्रमण का आनन्द खूब लूटा जाने लगा। सच तो यह है कि हम लोग उन दिनों विनोद की गगा मे बहे जा रहे थे। किसी को कुछ फिक्र न थी—जुलाई की १७ तारीख बेशक दूर खडी हुई अपना सूखा-सा मुँह दिखाकर बन्धन के दिनों की कभी-कभी याद दिला देती थी। उसी का खटका था। उस दिन कालेज खुलने को था। इसीलिए समय-विभाग करते समय उस तारीख का कभी-कभी जिक्र आ जाता था। बाकी कोई फिक्र न थी। मौज-ही-मौज थी।

हम सब लोग खूब तड़के उठते और हृषीकेश-रोड पर तीन-चार मील घूम कर "हर की पौढ़ी" पर स्नान किया करते थे। स्नानोपरान्त मिल-जुल कर भोजन बनाते। फिर खाली वक्त का साथी कोई खेल खेलते। शाम को गगा-तट पर घूम कर वहाँ का अपूर्व दृश्य देख, मन और आँखों को युगपत् तृप्त करते थे। पर हमारा मित्र नवीनचन्द्र हमारी दिनचर्य्या मे दोपहर तक का शरीक था। वह साधुओं का बड़ा भक्त था। एम० ए० पास करके भी साधुओं को भण्ड समझने की बुद्धि उसमें उत्पन्न न हुई थी। हम लोग उसे खूब छेडा करते थे। पर वह हमारे कटाक्षों की रत्ती भर पर्वा न करता था। हम जब कभी किसी साधु की निन्दा करते और उसको नशेबाज या कपटी साबित करने की चेष्टा करते, तभी वह कहता—"उन्हे साधु कहना भूल है। तलाश करो, साधु-संग पाओगे। इस तरह सर्व-व्यापक घृणा के

द्वारा तो तुम काँटों के साथ फूलों से भी दूर रहोगे।" उसकी बात मे कुछ सार था, यह बात उस समय हमे मालूम न थी। नवीन ने इसी वर्ष संस्कृत मे एम० ए० की परीक्षा नामवरी के साथ पास की थी। उसमे साधु-भक्ति की मात्रा भी खूब अधिक थी। इसलिए मित्र-मण्डल-विद्यालय की सीनेट ने उसको "पण्डितजी" की आनरेरी उपाधि से विभूषित करने मे अपना भी गौरव समझा। नवीनचन्द्र दोपहर को भोजनोपरान्त हमसे विदा हो जाता था। उपनिषदों का गुटका और मिसेज बिसेन्ट की गीता उसकी आजानु-लम्बित जेबों मे पडी रहती थी। उन्हे लेकर वह न-मालूम कहाँ-कहाँ घूमता, कुछ मालूम नही। शाम को भोजन बनाने से एक घण्टा पहले वह हमसे आ मिलता था। भोजन बनाने का भार "पण्डितजी" पर ही न्यस्त था। पर उनकी सेवा के लिए हम सब लोग उपस्थित रहते थे। मण्डली मे जाति-भेद नाम को न था। सभी एकाकार थे, ब्राह्मण, कायस्थ और वैश्य सभी एक चौके मे खाते थे। भोजन बनाने का काम भी खूब दिल्लगी का काम हो गया था।

एक दिन नवीनचन्द्र शाम तक वापिस न आया। मण्डली विचलित हो गई। अनमने होकर भोजन बनाने का काम शुरू किया गया। शाम के बाद नवीनचन्द्र लौटा। मित्रों ने तड़ा-तड प्रश्न करने शुरू कर दिये। सब के जवाब मे उसने बड़ी शान्ति और धैर्य्य से कहा—"स्वामी चिद्घनानन्दजी के दर्शन के लिए मुझे आज गंगातट पर कई मील दूर जाना पड़ा। वहाँ

सत्सङ्ग मे देर हो गई।" उसने स्वामीजी की शत-मुख से प्रशसा की। उसके कहने से मालूम हुआ कि स्वामीजी सन्यासी साधु है। दर्शन-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित है। परोपकारी है। दिन मे एक बार भोजन करते है। यह सुनते ही मण्डली के सभ्यों की समालोचना शुरू हो गई। किसी ने वैराग्य का अर्थ बहु-राग और किसी ने एक समय भोजन करने का भाव परिपाक-शक्ति की न्यूनता बताई। नवीन ने उन सब बिना पूछी समालोचनाओं के उत्तर मे एक बडी ही वेदना-भरी चितवन से हमारी ओर देखा। हम उसका मतलब समझ गये। वह हमसे मित्रों की कभी-कभी शिकायत किया करता था। सच तो यह है कि हममे उसकी पूज्य बुद्धि थी। वह हमारी इन बातों से नाराज़ न था। पर हमारी मानसिक अवस्था के लिए उसे दुःख ज़रूर था। हमने मित्रों को फटकार बताई और कहा कि हम सब कल प्रातः काल स्वामीजी के दर्शनार्थ चलेगे।

(२)

प्रात' काल उठकर हम लोगों ने भ्रमण के लिए जाकर स्नान किया और स्वामीजी के दर्शन के लिए चल दिये। भगवती भागीरथी के पवित्र तट पर कई मील चल कर एक छोटा-सा मैदान मिला। वहॉ का दृश्य बहुत ही मनोहर था। गगाजी की कलकल-ध्वनि, ज्यों-ज्यों हम ऊपर चढते जाते, बढ़ती जाती थी। सब तरफ सन्नाटा था। इसी मैदान में स्वामीजी कुशा-सन पर ध्यान-मग्न बैठे थे। हम लोग गङ्गाजी के तट पर पडी एक

शिला पर बैठ गये और स्वामीजी के ध्यान-भंग की राह देखने लगे। इसमें से नवीन को छोड कर प्राय: सभी नास्तिक थे। ईश्वर या प्रारब्ध पर विश्वास करना, मूर्खों का काम समझते थे। ईश्वर-भक्त को मूर्ख और प्रारब्धवादी को आलसी समझने का रोग हमारी मण्डली मे खूब ज़ोरों पर था। स्वामीजी को ध्यानावस्थित देखकर यारों की चंचल आँखे एक दूसरी से लड़ कर बेतार के तार से खबरे भेजने लगीं, एक घण्टे बाद स्वामीजी ने आँखे खोली। उनके चेहरे से दिव्य तेज झलक रहा था। हम सब ने प्रणाम किया। नवीन ने हम लोगों का संक्षिप्त परिचय स्वामीजी की सेवा मे निवेदन किया। बाते होने लगीं। उनके उज्ज्वल नेत्रों से शान्त प्रकाश की लहरे निकल रही थीं। उनकी उम्र पचास वर्ष से जरूर ऊपर थी, पर उनका शरीर खूब स्वस्थ और सबल था। स्वामीजी की बुद्धि बडी पैनी थी। जिस विषय पर बातचीत चलती, स्वामीजी उसी विषय की गहरी-से-गहरी बात को बड़ी आसानी से बाहर निकाल लाते। स्वामीजी हमसे मित्रों की तरह बातचीत कर रहे थे। गुरुडम की भयानक मूर्त्ति का वहाँ कोसों तक पता न था। हम लोग भी उनकी सरलता पर मुग्ध होकर खुले दिल से बाते कर रहे थे। हमारे साथी रामप्रसाद उर्फ मौजीराम ने कहा—"महाराज, अब तो कुछ दिनों के लिए लोगों को चाहिये कि साधु बनना बन्द कर दे। साधुओं की संख्या दिन-दिन बढ़ती जाती है।" स्वामीजी ने हँस-कर कहा—"लोग कुछ दिनों के लिए गृहस्थ बनना छोड दे, तो कुछ

लाभ होने की सम्भावना है। मनुष्य-सख्या बेतरह बढ रही है। गृहस्थ न बनने से ही मनुष्यों की बढती मे कमी हो जायगी।"

मौजीराम चुप हो गए। इसी समय एक गृहस्थ अपने परिवार-समेत वहाँ आया। उसने आते ही स्वामीजी को प्रणाम करके नवीन बाबू से पूछा—"कुशल-पूर्वक है ?" गृहस्थ के साथ उसकी स्त्री, षोडशी कन्या और एक दासी थी। ये सब लोग भी गङ्गा तट पर बैठ गए। बाते हो रही थी। हमारी मण्डली की ओर से प्रश्नों की और स्वामीजी की ओर से उत्तरों की झडी लग रही थी। नवीन के साथ गृहस्थ का पुराना परिचय है, इसका पता लगते ही चुलबुले मित्रों की चपल चितौनियाँ नवीनचन्द्र के चिन्ता-पूर्ण चेहरे की ओर फिर गईं। परन्तु वह स्वामीजी के शान्त आश्रम मे बैठा हुआ, किसी अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कर रहा था। हमारे साथी गदाधर उर्फ गञ्जेगोपाल ने बडे विनीत भाव से पूछा—

"स्वामिन्, त्याग का आदर्श क्या है ?"

स्वामीजी—"दूसरों के सुखों के लिए अपने सुखों को छोड देना। इस तरह अभ्यास करते-करते फिर अपने-पराये सुख का भेद नहीं रहता। फिर आनन्द की धारा समान भाव से बहने लगती है।"

गदाधर—"पर ऐसे महात्मा आज-कल बिरले ही है, इसका कारण क्या है ?"

गञ्जेगोपाल के कटाक्ष को समझ कर स्वामीजी ने मुसकराते हुए कहा—

"इसका कारण गृहस्थों की सिद्धान्त-शून्यता है। साधुओं का निकास तो वही से है। तुम लोगों मे कितने आदमी पारमार्थिक विषयों के लिए न सही, अपनी जाति या देश के लिए ही अपने सुखों का त्याग कर सकते है ? फिर साधु होकर तुम विश्व-प्रेम मे रँग जाओगे और उसके लिए अपने सुखों का ध्यान छोड दोगे—इस बात की तुमसे आशा करना व्यर्थ नही, तो कुछ अधिक जरूर है।"

गङ्गे गोपाल चुप हुए। मन्नूलाल उर्फ मस्तराम ने हाथ जोड कर कहा—

"जब कोई भोला-भाला यात्री धोखे से ड्योढे दरजे मे आ बैठता है, तब हम उसकी भर्त्सना करके उसको गन्तव्य पथ दिखा देते हैं, और इस तरह, उसके कुछ पैसे बचाने का अक्षय पुण्य प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए हमे एकदम उपकार शून्य कहना, कुछ बहुत सङ्गत प्रतीत नही होता।"

स्वामीजी इस बात पर खिलखिलाकर हँस पडे। उनकी खिलखिलाहट मे परितृप्ति और सन्तोष की मात्रा खूब अधिक थी। वासना-तप्त पुरुषों के हृत्कमल मे परितृप्ति का यह भाव कहाँ मिल सकता है ?

गङ्गाजी का प्रवाह अनन्त के मार्ग मे अनन्त से मिलने के लिए भागा जा रहा था। हमारी बाते भी अनन्ताकाश के गर्भ मे छिपी चली जाती थी। बाते भी अनन्त-रूप धारण कर रही थीं। स्वामीजी भी खूब दत्तचित्ततता से बाते कर रहे थे। बडी मौज

का समय था। गृहस्थ ने देखा कि लडकों की मण्डली स्वामीजी को जल्द छोडनेवाली नहीं। इसलिए उसने स्नान के लिए स्वामीजी से आज्ञा माँगी। वे लोग निकट ही गङ्गातट पर स्नान करने लगे। वृद्ध ने सबसे पहले स्नान करके सन्ध्योपासना शुरू की। उसकी स्त्री और लडकी ने स्नान के लिए गङ्गा में प्रवेश किया। एक ही क्षण के बाद वृद्ध की स्त्री ने चिल्लाकर कहा—"दौडिए! दौडिए!! शारदा डूबी जाती है।" उसकी बात हम लोगों ने भी सुनी। स्वामीजी और हम सब तत्काल ही तट पर पहुँच गये। वृद्ध का चेहरा सूख गया था। उसका शरीर काँप रहा था। उसने बडी वेदना और निराशा-भरी दृष्टि से स्वामीजी को देखा। शारदा गङ्गा के तरग-जाल मे बेतरह फँस गई थी। उसका चेहरा विकृत होने पर भी, गङ्गा-गर्भ मे अपूर्व रूप-राशि विकीर्ण कर रहा था। निस्सन्देह उसकी दृष्टि मे उदासीनता और नैराश्य के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। हम सब किंकर्त्तव्य विमूढ हुए चित्र की तरह खड़े थे। स्वामीजी ने बडी जोर से छलाँग मारी। वे एक ही छलाँग मे शारदा के बहुत पास पहुँच गये। इसी समय फिर छपाक का शब्द हुआ। हम लोगों ने देखा कि नवीन भी तैरता हुआ स्वामीजी के पीछे जा रहा है। स्वामीजी ने बडी सफाई से शारदा को उठा लिया। शारदा ज्ञान-शून्य हो गई थी। गङ्गा का प्रवाह खूब तेज था। स्वामीजी बहुत चेष्टा करने पर भी गङ्गा की बलवती तरंगों को, शारदा को, लिए हुए, न काट सके। हम लोगों ने देखा कि स्वामीजी बल-

हीन होकर गङ्गा के प्रवाहाभिमुख बहने लगे। ठीक इसी समय नवीन उनकी सहायता के लिए उनके पास पहुँच गया। उसने बडी वीरता से दोनों को सँभाला। शारदा को छोडकर स्वामीजी फिर स्वस्थ हो गये। वडी मुश्किल से नवीन और स्वामीजी ने, अपनी जान पर खेलकर, शारदा को बाहर निकाला। वृद्ध और उसकी स्त्री स्वामीजी के चरण छूने के लिए दौडे। पर उन्होंने उनको ऐसा करने से निषेध कर दिया। वे रो-रोकर स्वामीजी का गुण-गान करने लगे। स्वामीजी ने कहा—

"हमने कोई प्रशसा-योग्य काम नही किया—किया है अपने कर्तव्य का पालन। नवीन-बाबू ने जरूर अपनी श्रेष्ठ-बुद्धि का परिचय दिया है। साधु का जीवन दूसरों के लिए ही है और फिर तुम तो..."

कहकर स्वामीजी रुक गये। स्वामीजी की बात सुनकर हमारे हृदय की तन्त्री मे त्याग का राग बजने लगा। स्वामीजी की निष्कपट और सरल मूर्ति मे हमने सचमुच उस समय मूर्तिमान् त्याग के दर्शन किये।

वृद्ध ने स्वस्थ होकर नवीनचन्द्र की जाति-गोत्र के विषय मे प्रश्न करने शुरू किये। उसी समय स्वामीजी ने सरलता की हँसी हँसते हुए कहा—

"बाबू कृष्णदास, विवाह का दूसरा नाम पाणि-ग्रहण है। नवीन-बाबू ने शारदा का पाणि-ग्रहण करके निश्चय ही तुमको कृतार्थ किया है। जिस समय थककर हम डूबने लगे थे, उस

समय इच्छा न रखते हुए भी नवीन को शारदा का हाथ पकडने की आज्ञा हमने दे दी थी। सच यह है कि इसी के पुरुपार्थ से तुम्हारी कन्या के प्राण बचे है और साथ मे हमारा पापी शरीर गङ्गा-लाभ करते-करते बच गया है। सिद्धान्त-दृष्टि से विवाह विधि साग हो गई। अब लौकिक व्यवहार की रक्षा के लिए कोई शुभ दिन नियत करके इस सस्कार के बाह्य अग की पूर्ति भी कर देनी चाहिए। नवीन-बाबू जैसे निष्ठावान् विद्वान् और सदाचारी जामाता के लिए हम तुम्हे हृदय से वधाई देते है।"

नवीन-बाबू "स्वामिन" कहकर कुछ कहा ही चाहते थे कि स्वामीजी ने अर्थ पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—

"नवीन, विधि के विधान के विरुद्ध बोलने का तुम्हे कोई अधिकार नहीं। बाबू कृष्णदास हमारे बाल्य-सखा है, यह बात इच्छा न रहते भी हमे आज कहनी पडी है। ये रिटायर्ड डिप्टी कलेक्टर है। बडे सज्जन है। इनकी एक-मात्र कन्या शारदा को हमने गोद खिलाया है। इस निष्ग्रहावस्था मे भी हमें उससे सन्तान की तरह स्नेह है। इसका कारण भारवि के शब्दों मे यही है—भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः।"

"जब से हम साधु-वेप मे रहते है, तब से बराबर कृष्णदास बाबू साल में एक बार हमसे मिलने आते है। अपनी कन्या के सम्बन्ध के विषय मे ये कई वर्षो से चिन्तित है। इन्होंने कल तुमसे बात-चीत करके बहुत आनन्द पाया था। हमसे यह जानकर कि तुम अनूढ़ हो, उन्होंने कल ही तुमसे यह प्रस्ताव करने

का निश्चय कर लिया था। यदि आज यह घटना न होती, तो भी तुमसे यह प्रस्ताव किया ही जाता। किन्तु अब तो जिस रत्न का तुमने स्वय उद्धार किया है, उस पर तुम्हारा स्वयं भी अधिकार हो गया है। शारदा बड़ी लजीली और शुभ गुण-सम्पन्ना लडकी है। तुम-जैसे निष्ठावान् हिन्दू की पत्नी बनने के लिए यह सर्वथा योग्य है। हमारा-तुम्हारा कुछ ही दिनों का परिचय है। फिर भी तुम्हारी हम पर श्रद्धा न सही, तो कृपा जरूर ही है। इस छोटे-से रिश्ते से ही हम तुमसे यह प्रार्थना करने की धृष्टता कर रहे है। आशा है, हमारी प्रार्थना स्वीकार करके हमारे मित्र का उपकार करने मे अब तुम आगा-पीछा न करोगे।"

नवीन ने—"मुझे आपकी आज्ञा अविचार्य्य रूप से मान्य है"—कहकर सिर झुका लिया। उस दिन शाम को "पण्डितजी" के ट्रक का ताला तोड कर उसमे जितने रुपये थे निकाल लिये गये और उनको मिठाई और फलों से बदल कर मित्र-मण्डल ने गङ्गा-तट पर षोडशोपचार से पेट-भगवान् की पूजा की। उस दिन पण्डितजी को भोजन बनाने की तकलीफ भी न उठानी पडी।

(३)

अगले सहालग मे ही सुलतानपुर मे कृष्णदास बाबू के निवास-स्थान पर नवीन का विवाह बडी सादगी से सम्पन्न हो गया। मित्र-मण्डली उपस्थित थी। स्वामीजी भी पधारे थे।

खूब सत्सग रहा। पण्डित मदनमोहन शास्त्री, एम० ए० को स्वामी चिद्घनानन्द के रूप मे देखकर सुलतानपुर निवासी बडे आश्चर्य्यान्वित हुए। हम लोगों के आश्चर्य्य की भी, यह जानकर कि स्वामी चिद्घनानन्द उस समय सुलतानपुर मे डिप्टी कलेक्टर थे जिस समय बाबू कृष्णदास वहाँ के तहसीलदार थे, सीमा न रही। स्वामीजी ने तुलसी-कृत "रामायण" की एक प्रति शारदा को और अपने पढने की "चित्सुखी" नवीन को उप हार-स्वरूप भेट की। उस दिन से स्वामीजी का पता और किसी को तो क्या, उनके अभिन्न-हृदय मित्र कृष्णदास बाबू को भी न लगा।

बीस बरस हो गये, पर हरद्वार की वह यात्रा और शारदा का गोते खाया हुआ वह म्लान चेहरा, हमें आज भी खूब याद है। स्वामीजी का स्मरण आते ही उनके प्रति श्रद्धा का भाव हमारे हृदय में आज भी वैसा ही फिर हो जाता है। दिन चले गये, पर स्मृति-पट पर उस समयका चित्र वैसा ही खिंचा हुआ है।

२—महाशय सुदर्शन

आप पजाब के निवासी है। आप कई समाचार-पत्रों का सम्पादन भी कर चुके है। आपका हिन्दी और उर्दू—दोनों ही भाषाओं—पर अधिकार है। आपके गल्प बडे मनोरंजक, शिक्षा-प्रद और भाव-पूर्ण होते है। आपके गल्पों के कई सग्रह प्रकाशित हो चुके है। आप अच्छे नाट्यकार भी हैं। आपको दो बार "पजाब टेक्स्ट-बुक कमेटी" से पुरस्कार मिल चुके है। आपकी शैली बडी मर्म-स्पर्शी तथा लालित्य-पूर्ण है। मनोभावों का चित्रण करने मे आप निपुण है।

(१) संन्यासी

(१)

खनवाल, ज़िला गुजरात, का पालू उन मनुष्यों मे से था जो गुणों की गुथली कहे जाते है। यदि वह गॉव मे न होता, तो होलियों मे झॉकियों का, दीवाली पर जुए का, और दशहरे पर रामलीला का प्रबन्ध कठिन हो जाता था। उन दिनों उसे खाने-पीने तक की सुधि न रहती और वह तन-मन से इन कार्यों मे लीन रहता था। गॉव मे कोई गाने वाला आ जाता तो लोग पालू के पास जाते कि देखो कुछ राग-विद्या जानता भी है, या यों ही हमे गँवार समझकर धोखा देने आ गया है। पालू अभिमान से सिर हिलाता और उत्तर देता,—"पालू के रहते हुए तो यह असम्भव है, पीछे की भगवान् जाने।" केवल इतना ही नही, वह बाँसुरी और घडा बजाने मे भी पूरा उस्ताद था। हीर-राँझे का किस्सा पढ़ने मे, तो दूर-दूर तक कोई उसके जोड का न था। दोपहर के समय जब वह पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर ऊँचे स्वर से जोगी और सहती के प्रश्नोत्तर पढ़ता, तो

सारे गाँव के लोग इकट्ठे हो जाते और उसकी प्रशंसा के पुल बाँध देते। उसके स्वर मे जादू था। वह कुछ दिन के लिए भी बाहर चला जाता, तो गाँव मे उदासी छा जाती। पर उसके घर के लोग उसके गुणों को नही जानते थे। पालू मन-ही-मन इस पर बहुत कूढता था। तीसरे पहर घर जाता, तो माँ ठण्डी रोटियाँ सामने रख देती। रोटियाँ ठण्डी होती थी; परन्तु गालियों की भाजी गर्म होती थी। उस पर भावजे मीठे तानों से कड़वी मिर्चे छिडक देती थी। पालू उन मिर्चों से कभी-कभी बिलबिला उठता था; परन्तु लोगों की सहानुभूति मिश्री की डली का काम दे जाती थी।

वे तीन भाई थे—सुचालू, बालू और पालू। सुचालू गवर्नमेंट-स्कूल गुजरात मे व्यायाम का मास्टर था, इसलिए लोग उसे सुचालामल के नाम से पुकारते थे। बालू दूकान करता था, उसे बालकराम कहते थे। परन्तु पालू की रुचि सर्वथा खेल-कूद ही मे थी। पिता समझाता, माँ उपदेश करती, भाई निष्ठुर दृष्टि से देखते। मगर पालू सुना-अनसुना कर देता और अपने रंग मे मस्त रहता।

इसी प्रकार पालू की आयु के तैतीस वर्ष बीत गये; परन्तु कोई लड़की देने को तैयार न हुआ। मा दुखी होती थी, मगर पालू हँसकर टाल देता और कहता—"मैं व्याह करके क्या करूँगा? मुझे इस बन्धन से दूर ही रहने दो।" परन्तु विधाता के लेख को कौन मिटा सकता है पाँच मील की दूरी पर टाँडा-

नामक ग्राम है। वहाँ के एक चोधरी ने पालू को देखा है, तो लट्टू हो गया। रूप-रङ्ग में सुन्दर था, शरीर सुडौल। जात-पात पूछ कर उसने अपनी बेटी ब्याह दी।

(२)

पालू के जीवन मे पलटा आ गया। पहले वह दिन के बारह घण्टे बाहर रहता था और घर से ऐसा घबराता था, जैसे चिड़िया पिजरे से। परन्तु अब वही पिंजरा उसके लिए फूलों की वाटिका बन गया, जिससे बाहर पाँव रखते हुए उसका चित्त उदास हो जाता था। स्त्री क्या आई, उसका संसार ही बदल गया। अब उसे न बाँसुरी से प्रेम था, न किस्सों से प्रीति। लोग कहते, यार! कैसे जोरू-दास हो, कभी बाहर ही नही निकलते। हमारे सब साज-समाज उजड गये। क्या भाभी कभी कमरे से बाहर निकलने की भी आज्ञा नहीं देतीं? मा कहती, बेटा ब्याह सबके होते आये है, परन्तु तेरे सरीखा निर्लज्ज किसी को नहीं देखा कि दिन-रात स्त्री के पास ही बैठा रहे। पिता उसके मुँह पर उसे कुछ कहना उचित नही समझता था, मगर सुनाकर कह दिया करता था कि जब मेरा ब्याह हुआ था, तब मैने दिन के समय तीन वर्ष तक स्त्री के साथ बात तक न की थी। पर अब तो समय का रग ही पलट गया है। आज ब्याह होता है, कल घुल-घुलकर बातें होने लगती हैं। पालू लाख अनपढ़ था, परन्तु मूर्ख नहीं था कि इन बातों का अर्थ न समझता। पर स्वभाव का बेपरवा था, हँसकर टाल देता। होते-होते नौबत

यहाँ तक पहुँची, कि भाई-भावजें बात-बात में ताने मारने और घृणा की दृष्टि से देखने लगीं। मनुष्य सब कुछ सह लेता है; पर अपमान नहीं सह सकता। पालू भी बार-बार के अपमान को देखकर चुप न रह सका। एक दिन पिता के सामने जाकर बोला—"यह क्या रोज-रोज ऐसा ही होता रहेगा?"

पिता भी उससे बहुत दुःखी था, झल्लाकर बोला—

"तुम्हारे-जैसों के साथ इसी तरह होना चाहिए।"

"पराई बेटी को विष खिला दूँ?"

"नहीं, गले में डाल लो। जगत् में तुम्हारा ही अनोखा ब्याह हुआ है।"

पालू ने कुछ धीरज से पूछा—"आप अपना विचार प्रकट कर दें। मैं भी तो कुछ जान पाऊँ।"

"सारे गाँव में तुम्हारी मिट्टी उड़ रही है। अभी बतलाने की बात बाकी रह गई है?"

"पर मैंने ऐसी कोई बात नहीं की, जिससे मेरी निन्दा हो।"

"सारा दिन स्त्री के पास बैठे रहते हो, यह क्या कोई थोड़ी निन्दा की बात है? तुम सुधर जाओ, नहीं सारी आयु रोते रहोगे। हमारा क्या है, नदी-किनारे के रूख है, आज हैं कल बह गये, परन्तु इतना तो सन्तोष रहे, कि जीते-जी अपने सब पुत्रों को कमाते-खाते देख लिया।"

यह कहते-कहते पिता के नेत्रों में आँसू भर आये। उसकी एक-एक बात जँची-तुली थी।

पालू को अपनी भूल का ज्ञान हो गया, सिर झुकाकर बोला—"तो जो कहें वही करने को उद्यत हूँ।"

इतनी जल्दी काम बन जायगा, पिता को यह आशा न थी। प्रसन्न होकर कहने लगा—"जो कहूँगा, करोगे?"

"हाँ करूँगा।"

"स्त्री को उसके घर भेज दो।"

पालू को ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी ने विष का प्याला सामने रख दिया हो। यदि उसे यह कहा जाता, कि तुम घर से बाहर चले जाओ और एक-दो वर्ष वापस न लौटो, तो वह सिर न हिलाता; परन्तु इस बात से, जो उसकी भूलों की निकृष्टतर स्वीकृति थी, उसके अन्तःकरण को दारुण दुःख हुआ। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसका पिता उसे दण्ड दे रहा है और उससे प्रतीकार ले रहा है। वह दण्ड भुगतने को तैयार था, परन्तु उसका पिता इस बात को जान पाये, यह उसे स्वीकार न था। वह इसे अपने लिये अपमान का कारण समझता था, इसलिए कुछ क्षण चुप रहकर उसने क्रोध से काँपते हुए उत्तर दिया—

"यह न होगा।"

"मेरी कुछ भी परवा न करोगे?"

"करूँगा, पर स्त्री को उसके घर न भेजूँगा।"

"तो मैं भी तुम्हें पराँवठे न खिलाता रहूँगा। कल से किनारा करो।"

जब मनुष्य को क्रोध आता है, तो सबसे पहले जीभ बेकाबू

होती है। पालू ने भी उचित-अनुचित का विचार न किया और अकडकर उत्तर दिया—"मै इसी से खाऊँगा और देखूँगा कि मुझे चौके से कौन उठा देता है?"

बात साधारण थी; परन्तु हृदयों मे गाँठ बँध गई। पालू को उसकी स्त्री ने भी समझाया, मा ने भी, पर उसने किसी की बात पर कान न दिया, और बे-परवाई से सबको टाल दिया। दिन को प्रेम के दौर चलते, रात को स्वर्ग-वायु के झकोरे आते। पालू की स्त्री की गोद मे दो वर्ष का बालक खेलता था, जिस पर माता पिता दोनों न्योछावर थे। एकाएक उजाले मे अन्धकार ने सिर निकाला। गॉव मे विशूचिका का रोग फूट पड़ा, जिसका पहला शिकार पालू की स्त्री हुई।

(२)

पालू विलक्षण प्रकृति का मनुष्य था। धीरता और नम्रता उसके स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल थी। बाल्यावस्था मे वह बे-परवा था। बे-परवाई चरमसीमा पर पहुँच चुकी थी। आठ-आठ दिन घर से बाहर रहना उसके लिये साधारण बात थी। फिर विवाह हुआ, प्रेम ने हृदय के साथ पाँवों को भी जकड लिया। यह वह समय था, जब उसके नेत्र एकाएक बाह्य संसार की ओर से बन्द हो गये और वह इस प्रकार प्रेम-पास मे फँस गया, जैसे—शहद मे मक्खी। मित्र-मण्डली नोक-झोंक करती थी, भाई-बन्धु आँखों मे मुसकुराते थे; मगर उसके नेत्र और कान—दोनो बन्द थे। परन्तु जब स्त्री भी मरगई, तो पालू की प्रकृति

फिर चञ्चल हो उठी। इस चञ्चलता को न खेल-तमाशे रोक सके, न मनोरञ्जक किस्से कहानियाँ। यह दोनों रास्ते उससे पद-दलित किये जा चुके थे। प्राय. ऐसा देखा गया है कि पढे-लिखे लोगों की अपेक्षा अनपढ और मूर्ख लोग अपनी टेक का ज्यादा खयाल रखते है और इसके लिये तन-मन-धन तक न्योछावर कर देते हैं। पालू मे यह गुण कूट-कूट कर भरा हुआ था। माता पिता ने दुबारा विवाह करने की ठानी ; परन्तु पालू ने स्वीकार न किया और उनके बहुत कहने-सुनने पर कहा कि जिस बन्धन से एक बार छूट चुका हूँ, उसमे दुबारा न फँसूँगा। गृहस्थ का सुख-भोग मेरे प्रारब्ध मे न था, यदि होता, तो मेरी पहली स्त्री क्यों मरती। अब तो इसी प्रकार जीवन बिता दूँगा ; परन्तु यह अवस्था भी अधिक समय तक न रह सकी। तीन मास के अन्दर-अन्दर उसके माता-पिता—दोनों चल बसे। पालू के हृदय पर दूसरी चोट लगी। क्रिया-कर्म से निवृत्त हुआ, तो रोता हुआ बड़ी भावज के पाँवों मे गिर पड़ा और बोला—"अब तो तुम्हीं बचा सकती हो ; अन्यथा मेरे मरने मे कोई कसर नहीं।"

भावज ने उसके सिर पर हाथ फैरकर कहा—मैं तुम्हे पुत्रों से बढ़कर चाहूँगी। क्या हुआ, जो तुम्हारे माता-पिता मर गये। हम तो जीते हैं।"

"यह नहीं, मेरे बेटे को सँभालो। मै अब घर मे न रहूँगा।"

उसकी भाभी अवाक् रह गई। पालू अब सम्पत्ति बाँटने के लिये झगड़ा करेगा, उसे इस बात की शङ्का थी ; परन्तु यह

सुनकर कि पालू घर-बार छोड़ जाने को उद्यत है, उसका हृदय आनन्द से झूलने लगा। मगर अपने हर्ष को छिपाकर बोली—

"यह क्या ? तुम भी हमें छोड़ जाओगे, तो हमारा जी यहाँ कैसे लगेगा ?"

"नहीं, अब यह घर भूत के समान काटने दौड़ता है। मैं यहाँ रहूँगा, तो जीता न बचूँगा। मेरे बच्चे के सिर पर हाथ रक्खो। मुझे न धन चाहिए, न सम्पत्ति। मैं सासारिक धन्धों से मुक्त होना चाहता हूँ। अब मैं सन्यासी बनूँगा।"

यह कहकर अपने पुत्र सुखदयाल को पकड़कर भावज की गोद में डाल दिया और रोते हुए बोला—"इसकी मा मर चुकी है, पिता सन्यासी हो रहा है। परमात्मा के लिए इसका हृदय न दुखाना।"

बालक ने जब देखा कि पिता रो रहा है, तो वह भी रोने लगा और उसके गले लिपट गया ; परन्तु पालू के पाँव को यह स्नेह-रज्जु भी न बाँध सकी। उसने हृदय पर पत्थर रक्खा और अपने संकल्प को दृढ कर लिया।

कैसा हृदय-वेधक दृश्य था, सायङ्काल को जब पशु-पक्षी अपने अपने बच्चों के पास घरों को वापस लौट रहे थे, पालू अपने बच्चे को छोड़कर घर से बाहर जा रहा था !

(४)

दो वर्ष बीत गये। पालू की अवस्था में आकाश-पाताल का अन्तर पड गया। वह पर्वत पर रहता था, पत्थरों पर सोता था,

रात्रि को जागता था और प्रति-क्षण ईश्वर-भक्ति मे मग्न रहता था। उसके इस आत्म-सयम की, सारे हृषिकेश मे, धूम मच गई। लोग कहते, यह मनुष्य नही देवता है। यात्री लोग जब तक स्वामी विद्यानन्द के दर्शन न कर लेते, अपनी यात्रा को सफल न समझते। उसकी कुटिया बहुत दूर पर्वत की एक कन्दरा मे थी, परन्तु उसके आकर्षण से लोग वहाँ खिंचे चले आते थे। उसकी कुटिया मे रुपये-पैसे और फल-मेवे के ढेर लगे रहते थे; परन्तु वह त्याग का मूर्त्तिमान रूप उनकी ओर आँख भी न उठता था। हाँ, इतना लाभ अवश्य हुआ कि उनके निमित्त स्वामीजी के बीसों चेले बन गये। स्वामीजी के मुख-मण्डल पर तेज बरसता था, जैसे सूरज से किरणे निकलती है। परन्तु, इतना होते हुए मन को शान्ति न थी। बहुधा सोचा करते कि देश-देशान्तर मे मेरी भक्ति की धूम मच रही है, दूर-दूर मेरे यश के डके बज रहे हैं, मेरे सयम को देखकर बडे-बडे महात्मा चकित रह जाते है; परन्तु मेरे मन को शान्ति क्यो नही। सोता हूँ, तो सुख की निद्रा नही आती, जगता हूँ तो पूजा-पाठ मे मन एकाग्र नही होता। इसका कारण क्या है? उन्हे कई बार ऐसा अनुभव हुआ कि चित्त में अशान्ति है; पर वह क्यों है, इसका पता न लगता।

इसी प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गये। स्वामी विद्यानन्द की कीर्त्ति सारे हृषीकेश मे फैल गई, परन्तु इतना होने पर भी उनका हृदय शान्त न था। प्रा.य उनके कान मे आवाज आती थी कि तू अपने आदर्श से दूर जा रहा है। स्वामीजी बैठे-बैठे चौंक

उठते, मानो किसी ने काँटा चुभो दिया हो। बार-बार सोचते, परन्तु कारण समझ में न आता। तब वे घबराकर रोने लग जाते। इससे मन तो हल्का हो जाता था; परन्तु चित्त को शान्ति फिर भी न होती। उस समय सोचते—संसार मुझे धर्मावतार समझ रहा है, पर कौन जानता है कि यहाँ आठों पहर आग सुलग रही है। पता नही, पिछले जन्म मे कौन पाप किये थे, जिससे अब तक आत्मा को शान्ति नही मिलती।

अन्त मे उन्होंने एक दिन दण्ड हाथ में लिया और अपने गु.. स्वामी प्रकाशानन्द के पास जा पहुँचे। उस समय वे रामायण की कथा से निवृत्त हुए थे। उन्होंने ज्योंही स्वामी विद्यानन्द को देखा, फूल की तरह खिल गये। उनको विद्यानन्द पर गर्व था। हँसकर बोले—

"कहिए क्या हाल है, शरीर तो अच्छा है?"

परन्तु स्वामी विद्यानन्द ने कोई उत्तर न दिया, और रोते हुए उनके चरणों से लिपट गये।

स्वामी प्रकाशानन्द को बडा आश्चर्य हुआ। अपने सबसे अधिक माननीय शिष्य को रोते देखकर उनके आत्मा पर आघात-सा लगा। उन्हे प्यार से उठाकर बोले—"क्यों कुशल तो है?"

स्वामी विद्यानन्द ने बालको की तरह फूट-फूटकर रोते हुए कहा—"महाराज, मै पाखण्डी हूँ। ससार मुझे धर्मावतार कह रहा है, परन्तु मेरे मन मे अभी तक अशान्ति भरी हुई है। मेरा चित्त आठों पहर अशान्त रहता है।"

जिस प्रकार भले-चगे मनुष्य को देखने के कुछ क्षण पश्चात् उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर विश्वास नहीं होता, उसी प्रकार स्वामी प्रकाशानन्द को अपने सदाचारी शिष्य की बात पर विश्वास न हुआ, और उन्होंने इस व्यग्य से, मानो उनके कानों ने धोखा खाया हो, पूछा—"क्या कहा ?"

स्वामी विद्यानन्द ने सिर झुकाकर उत्तर दिया, "महाराज, मेरा शरीर दग्ध हो गया है ; परन्तु आत्मा अभी तक निर्मल नहीं हुआ ।"

"इससे तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?"

"मै प्रतिक्षण अशान्त रहता हूँ, मानो कोई कर्त्तव्य है, जिसे मैं पूरा नहीं कर रहा हूँ ।"

"इसका कारण क्या हो सकता है, जानते हो ?"

"जानता, तो आपकी सेवा में क्यों आता ?"

एकाएक स्वामी प्रकाशानन्द को कोई बात याद आ गई। वे हँसकर बोले—"तुम्हारी स्त्री है ?"

"उसकी मृत्यु ही तो सन्यास का कारण हुई थी ।"

"माता ?"

"वह भी नहीं ।"

"पिता ।"

"वह भी मर चुके हैं ।"

"कोई बाल-बच्चा ?"

"हाँ एक बालक है, वह चार वर्ष का होगा ।"

"उसका पालन कौन करता है ?"

"मेरा भाई और उसकी स्त्री ।"

स्वामी प्रकाशानन्द का मुख-मण्डल चमक उठा । हँसकर बोले—

"तुम्हारी अशान्ति का कारण मालूम हो गया, हम कल तुम्हारे गाँव को चलेंगे ।"

विद्यानन्द ने नम्रता से पूछा—

"मुझे शान्ति मिल जायगी ?"

"अवश्य , परन्तु कल अपने गाँव की तैयारी करो ।"

(५)

पालू के मित्रों मे लाला गणपतराय का पुत्र भोलानाथ हाँडा बड़ा सज्जन पुरुष था । लखनवाल के लोग उसकी सज्जनता पर लट्टू थे । उसे पालू के साथ प्रेम था । उसके मन की स्वच्छता, उसका भोलापन, उसकी निःस्वार्थता पर भोलानाथ तन-मन से न्योछावर था । जब तक पालू लखनवाल मे रहा, भोलानाथ ने सदैव उसकी सहायता की । वे दोनों जोहड के किनारे बैठते, धर्मशाला में जाकर खेलते, मन्दिर मे जाकर कथा सुनते । लोग देखते, तो कहते, कृष्ण-सुदामा की जोडी है । परन्तु कृष्ण के आदर-सत्कार करने पर भी जब सुदामा ने वन का रास्ता लिया, तब कृष्ण को बहुत दुःख हुआ । इसके पश्चात् उनको किसी ने खुलकर हँसते नही देखा ।

भोलानाथ ने पालू का पता लगाने की बड़ी चेष्टा की , परन्तु

जब यत्न करने पर भी सफलता न हुई, तब उसके पुत्र सुखदयाल की ओर ध्यान दिया। प्रायः बालकराम के घर चले जाते और सुखदयाल को गोद मे उठा लेते, चूमते, प्यार करते, पैसे देते। कभी-कभी उठाकर घर भी ले जाते। वहाँ उसे दूध पिलाते, मिठाई खिलाते और बाहर साथ ले जाते। लोगों से कहते—यह अनाथ है, इसे देखकर मेरा हृदय वश मे नही रहता। उनके पैरों की चाप सुनकर सुखदयाल के चेहरे पर रौनक आ जाती थी। उसके साथ चाचा-चाची घोर निर्दयता का व्यवहार करते थे। और भोलानाथ का उसे प्यार करना, तो उन्हे और भी बुरा लगता था। प्रायः कहा करते, कैसा निर्दयी आदमी है, हमारी कन्याओं के साथ बात भी नही करता, कैसी गोरी और सुंदर हैं, जैसे मक्खन के पेडे, देखने से भूख मिटती है; परन्तु उसको सुखदयाल के सिवा कोई पसन्द ही नहीं आता। पसन्द नहीं आता, तो न सही, परन्तु क्या यह भी नही हो सकता कि कभी-कभी उनके हाथ पर दो पैसे ही रख दे, जिससे सुखदयाल के साथ उसका व्यवहार देखकर उनका हृदय न मुर्झा जाय, पर यह बातें भोलानाथ के सामने कहने का उन्हे साहस न होता था। हाँ, उसका क्रोध बेचारे सुखदयाल पर उतरता था, जल नाचे की ओर बहता है। परिणाम यह हुआ कि सुखदयाल सदैव उदास रहने लगा। उसका मुख-कमल मुर्झा गया। प्रेम, जीवन की धूप है, वह उसे प्राप्त न था। जब कभी भोलानाथ आता, तब उसे पितृ-प्रेम के सुख का अनुभव होने लगता था।

लोहड़ी का दिन था, साँझ का समय। बालकराम के द्वार पर पुरुषों की भीड़ थी, आँगन मे स्त्रियों का जमघटा। कोई गाती थी, कोई हँसती थीं, कोई अग्नि मे चावल फेकती थीं, कोई चिडवे खाती थी। तीन कन्याओं के पश्चात् परमात्मा ने पुत्र दिया था। यह उसकी पहली लोहड़ी थी। बालकराम और उसकी स्त्री दोनों आनन्द से प्रफुल्लित थे। बडे समारोह से त्यौहार मनाया जा रहा था। दस रुपये की मक्की उड गई, चिडवे और रेवडी इसके अतिरिक्त, परन्तु सुखदयाल की ओर किसी का भी ध्यान न था। वह घर से बाहर दीवार के साथ खडा लोगों की ओर लुब्ध-दृष्टि से देख रहा था कि एकाएक भोलानाथ ने उसके कन्धों पर हाथ रखकर कहा—"सुक्खू!"

सूखे धानों मे पानी पड गया। सुखदयाल ने पुलकित होकर उत्तर दिया—"चाचा!"

"आज लोहड़ी है, तुम्हारी ताई ने तुम्हे क्या दिया?"

"मक्की"

"और क्या दिया?"

"और कुछ नही।"

"और तुम्हारी बहनों को?"

"मिठाई भी दी, संगतरे भी दिये, पैसे भी दिये।"

भोलानाथ के नेत्रों मे जल भर आया। भर्राये हुए स्वर से बोले—"हमारे घर चलोगे?"

"चलूँगा"

"कुछ खाओगे ?"

"हाँ खाऊँगा।"

घर पहुँचकर भोलानाथ ने पत्नी से कहा—इसे कुछ खाने को दो। भोलानाथ की तरह उनकी पत्नी भी सुखदयाल से बहुत प्यार करती थी। उसने बहुत-सी मिठाई उसके सम्मुख रख दी। सुखदयाल रुचि से खाने लगा। जब खा चुका, तो चलने को तैयार हुआ। भोलानाथ ने कहा—"ठहरो इतनी जल्दी काहे की है।"

"ताई मारेगी।"

"क्यों मारेगी ?"

"कहेगी, तू चाचा के घर क्यों गया था ?"

"तेरी बहनों को भी मार पड़ती है ?"

"नहीं। उन्हे प्यार करती है।"

भोलानाथ की स्त्री के नेत्र भर आये। भोलानाथ बोले—"जो मिठाई बची है, वह जेब में डाल ले।"

सुखदयाल ने तृषित नेत्रों से मिठाई की ओर देखा और उत्तर दिया—"न।"

"क्यों ?"

"ताई मारेगी और मिठाई छीन लेगी।"

"पहले भी कभी मारा है।"

"हाँ, मारा है।"

"कितनी बार मारा है ?"

"कई बार मारा है।"

"किस तरह मारा है ?"

"चिमटे से मारा है।"

भोलानाथ के हृदय पर जैसे किसी ने हथौड़ा मार दिया। उन्होंने ठण्डी साँस भरी और चुप हो गये। सुखदयाल धीरे-धीरे अपने घर की ओर रवाना हुआ, परन्तु उसकी बाते ताई के कानों तक उससे पहले जा पहुची थी। उसके क्रोध की कोई थाह नही थी। जब रात्रि अधिक चली गई और गली-मुहल्ले की स्त्रियाँ अपने-अपने घर चली गई, तो उसने सुखदयाल को पकड कर कहा—"क्यों बे कलमुंहे, चाचा से क्या कहता था ?"

सुखदयाल का कलेजा काँप गया। डरते-डरते बोला—"कुछ नही कहता था।"

"तू तो कहता था, ताई मुझे चिमटे से मारती है।"

बालकराम पास खडा था, आश्चर्य्य से बोला—"अच्छा, अब यह छोकरा हमारी मिट्टी उड़ाने पर उतर आया है।"

सुखदयाल ने आँखों-ही-आँखों ताऊ की ओर देखकर प्रार्थना की कि मुझे इस निर्दयी से बचाओ, परन्तु वहाँ क्रोध बैठा था। आशा ने निराशा का रूप धारण कर लिया। ताई ने कर्कश स्वर से डाँटकर पूछा—

"क्यों, बोलता क्यों नही ?"

"अब न कहूँगा"

"अब न कहूँगा। न मरता है, न पीछा छोड़ता है। खाने को देते जाओ, जैसे इसके बाप की जागीर पड़ी है।"

यह कहकर उसने पास पडा हुआ बेलन उठाया। उसे देख-कर सुखदयाल बिलबिला उठा, परन्तु अभी उसके शरीर पर पडा न था कि उसकी लडकी दौडती हुई आई और कहने लगी—"चाचा आया है।"

(६)

सुखदेवी का हृदय काँप गया। वह बैठी थी, खडी हो गई और बोली—"कौन-सा चाचा? गुजरातवाला?"

"नहीं पालू।"

सुखदेवी और वालकराम दोनों स्तम्भित रह गये। जिस प्रकार बिल्ली को सामने देखकर कबूतर सहम जाता है, उसी प्रकार दोनों सहम गये। आज से दो वर्ष पहले जब पालू साधू बनने के लिए बिदा होने आया था, तब सुखदेवी मन में प्रसन्न हुई थी, परन्तु उसने प्रकट ऐसा किया था, मानों उसका हृदय इस समाचार से टुकडे-टुकड़े हो गया है। इस समय उसके मन मे भय और व्याकुलता थी; परन्तु मुख पर प्रसन्नता की झलक थी। वह जल्दी से बाहर निकली और बोली—"पालू।"

परन्तु वहाँ पालू के स्थान में एक साधु महात्मा खडे थे, जिनके मुख-मण्डल से तेज की किरणें फूट-फूट कर निकल रही थी। सुखदेवी के मन को धीरज हुआ, परन्तु एकाएक खयाल आया, यह तो वही है, वही मुँह, वही आँखे, वही रङ्ग, वही रूप; परन्तु कितना परिवर्त्तन हो गया है। सुखदेवी ने मुसकराकर कहा—"स्वामीजी, नमस्कार करती हूँ।"

इतने में वालकराम अन्दर से निकला और रोता हुआ स्वामीजी से लिपट गया। स्वामीजी भी रोने लगे; परन्तु यह रोना दु:ख का नहीं, आनन्द का था। जब हृदय कुछ स्थिर हुआ तो बोले—"भाई, तनिक बाल-बच्चों को तो बुलाओ। देखने को जी तरस गया।"

सुखदेवी अन्दर को चली; परन्तु पाँव मन-मन के भारी हो गये। सोचती थी—यदि बालक सो गये होते, तो कैसा अच्छा होता। सब बातें ढकी रहतीं। अब क्या करूँ, इस बदमाश सुक्खू के वस्त्र इतने मैले हैं कि सामने करने का साहस नहीं पडता। आँखें कैसे मिलाऊँगी। रङ्ग में भङ्ग डालने के लिए इसे आज ही आना था। दो वर्ष बाद आया है। इतना भी न हुआ कि पहले पत्र ही लिख देता।

इतने में स्वामी विद्यानन्द अन्दर आ गये। पितृ-वात्सल्य ने लज्जा को दबा लिया था, परन्तु सुखदयाल और भतीजों के वस्त्र तथा उनके रूप-रङ्ग को देखा, तो खड़े-के-खड़े रह गये। भतीजियाँ ऐसी थीं, जैसे चमेली के फूल और सुक्खू, वही सुक्खू जो कभी मैना के समान चहकता फिरता था, जिसकी बातें सुनने के लिए राह जाते लोग खडे हो जाते थे, जिसकी नटखटी बातों पर प्यार आता था, अब उदासीनता की मूर्ति बना हुआ था। उसका मुँह इस प्रकार कुम्हलाया हुआ था, जिस प्रकार जल न मिलने से वृक्ष कुम्हला जाता है। उसके बाल रूखे थे, और मुँह पर दारिद्र्य बरसता था। उसके वस्त्र मैले-कुचैले थे, जैसे किसी

भिखारी का लडका हो। स्वामी विद्यानन्द के नेत्रों मे आँसू आ गये। सुखदेवी और बालकराम पर घडों पानी पड गया, खिसियाने-से होकर बोले—"कैसा शरारती है, दिन-रात धूल मे खेलता रहता है।"

स्वामी विद्यानन्द सब कुछ समझ गये, परन्तु उन्होंने कुछ प्रकट नहीं किया और बोले—"मैं आज अपने पुराने कमरे मे सोऊँगा, एक चारपाई डलवा दो।"

रात्रि का समय था। स्वामी विद्यानन्द सुक्खू को लिये हुए अपने कमरे मे पहुँचे। पुरानी बाते ज्यों-की-त्यों याद आ गई। यही कमरा था, जहाँ प्रेम के पांसे खेले थे। यहीं पर प्रेम के प्याले पिये थे। इसी स्थान पर बैठकर प्रेम का पाठ पढ़ा था। यही वाटिका थी, जिसमे प्रेम-पवन के मस्त झोंके चलते थे। कैसा आनन्द था, विचित्र काल था, अद्भुत वसन्त-ऋतु थी; जिसने शिशिर के झोंके कभी देखे ही न थे। आज वह वाटिका उजड चुकी थी, प्रेम का राज्य लुट चुका था। स्वामी विद्यानन्द के हृदय मे हलचल मच गई!

परन्तु सुक्खू का मुख इस प्रकार चमकता था, जैसे ग्रहण के पश्चात् चन्द्रमा। उसे देखकर स्वामी विद्यानन्द ने सोचा—"मैं कैसा मूर्ख हूँ, ताऊ और ताई जब इस पर सख्ती करते होंगे, जब अकारण इसको मारते-पीटते होंगे, जब इसके सामने अपनी कन्याओं से प्यार करते होंगे, उस समय यह क्या कहता होगा, इसके हृदय में क्या विचार उठते होंगे? यही कि मेरा पिता नहीं है, वह मर गया, नहीं तो मैं इस दशा में क्यों रहता। यह फूल

था जो आज धूल मे मिला हुआ है। इसके हृदय मे धडकन है, नेत्रों मे त्रास है, मुख पर उदासीनता है। वह चञ्चलता जो बच्चों का विशेष गुण है, इसमे नाम को नही। वह हठ जो बालकों की सुन्दरता है, इससे बिदा हो चुकी है। यह बाल्यावस्था ही मे वृद्धों की नाई गम्भीर बन गया है। इस अनर्थ का उत्तरदायित्व मेरे सिर है, जो इसे यहाँ छोड गया, नही तो इस दशा को क्यों पहुँचता।" इन्हा विचारों मे झपकी आ गई, तो क्या देखते है कि वही हृषीकेश का पर्वत है, वही कन्दरा। उसमे देवी की मूर्त्ति है और वे उसके सम्मुख खडे रो-रो कर कह रहे है—"माता, दो वर्ष व्यतीत हो गये, अभी तक शान्ति नही मिली। क्या यह जीवन रोने ही मे बीत जायगा?"

एकाएक ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पत्थर को मूर्त्ति के होंठ हिलते है। स्वामी विद्यानन्द ने अपने कान उधर लगा दिये। आवाज़ आई—"तू क्या माँगता है, यश?"

"नही, मुझे उसकी आवश्यकता नही।"

"तो फिर जगत्-दिखावा क्यों करता है?"

शान्ति चाहिए।"

"शान्ति के लिए सेवा-मार्ग की आवश्यकता है। पर्वत छोड और नगर मे जा। जहाँ दुःखी जन रहते है, उनके दुःख दूर कर। किसी के घाव पर फाहा रख, किसी के टूटे हुए मन को धीरज बँधा; परन्तु यह रास्ता भी तेरे लिए उपयुक्त नहीं। तेरा पुत्र है, तू उसकी सेवा कर। तेरे मन को शान्ति प्राप्त होगी।"

यह सुनते ही स्वामजी के नेत्रों से पर्दा हट गया। जागे तो वास्तविक भेद उन पर खुल चुका था कि मन की शान्ति कर्त्तव्य के पालन से मिलती है। उन्होंने सुखदयाल को जोर से गले लगाया और उसके रूखे मुँह को चूम लिया।

(२) अँधेरी दुनिया

(१)

झमे और तुममें वहुत भेद है। तुम सहस्रों दृश्य देखते हो, मै केवल आवाजे सुनती हूँ। पृथ्वी आकाश, बाग-बगीचे, बादल, चन्द्रमा, तारे यह मेरे लिए ऐसे रहस्य है, जो कभी न खुलेगे। पर्वत और खोह मे मेरे निकट एक ही भेद है और वह यह कि पर्वत के ऊपर चढते समय दम फूल जाता है, खोह मे उतरते समय गिरने का भय लगा रहता है। जब लोग कहते है, यह पर्वत कैसा सुन्दर है वह खोह कैसी भयानक है, तब मै इन दोनों के अर्थ नही समझ सकती। अपने मस्तिष्क पर आत्मा की पूरी शक्ति से जोर डालती हूँ, परन्तु मस्तिष्क काम नहीं करता और मैं सटपटाकर रह जाती हूँ। शस्यश्यामल खेतो की हरियाली, सुनील जल के स्रोतों की सुन्दरता, बच्चों की मनोहरता, पुरुप का सौन्दर्य, स्त्री का रूप-लावण्य, इन्द्र-धनुप का रङ्ग, काली घटा का जादू, चन्द्रमा की छटा, फूलों का निखार, यह समस्त शब्द मेरे निकट विस्तृत और

अन्धकार-मय वायु-मण्डल के भिन्न-भिन्न भागों के नाम है। इसके सिवा मै और कुछ न समझ सकती हूँ, न समझती हूँ। मै अन्धी हूँ, मेरा ससार एक अँधेरी लम्बी यात्रा है और शब्द उसके पडाव है। जिस प्रकार कहते है, समुद्र की तरगे उठती है और बैठ जाती है, उसी प्रकार मेरी इस अँधेरी दुनियाँ मे अनेक शब्द उठते है और मर जाते हैं। मैं शब्द को जानती हूँ, शब्द को पहचानती हूँ, और उन्ही की सहायता से सौन्दर्य, जीवन और आयु का अनुमान लगाती हूँ। जब मै किसी बालक की तोतली बाते सुनती हूँ और जब मेरा हृदय उन्हे पसन्द करता है, तब मै समझ लेती हूँ कि सुन्दरता इसी मीठो वाणी का नाम है। जब मै किसी पुरुप को बाते करते पाती हूँ और उसकी बातों मे मुझे वह वस्तु प्रतीत होती है, जो कभी चन्द्रमा की चाँदनी मे और कभी शीतकाल की धूप मे प्रतीत होती है, तब मै तुरन्त जान लेती हूँ कि जवानी इसी को कहते है। और जब मैं किसी काँपती हुई आवाज को और उसके अन्दर मर-मर जाते हुए शब्दों को सुनाती हूँ, तब मुझे विश्वास हो जाता है कि यह मनुष्य बूढा है और शनैः-शनैः अपने शब्दों की तरह काँप-काँपकर खुद भी मर रहा है। थोड़े ही दिनों मे अपने स्वर के समान स्वय भी मर जायगा और संसार के लोग जिस प्रकार उसके जीवनकाल मे उसकी आवाज की परवा नहीं करते थे, ठीक उसी प्रकार मरने के पश्चात् उसकी मृत्यु की परवा नहीं करेंगे। इतना ही नहीं, मै क्रोध और दुःख, भय और आनन्द, प्रेम और दया, आश्चर्य्य और विस्मय, सब

भावों को शब्द से ही पहचान लेती हूँ। मै अन्धी हूँ—मेरे कान ही मेरी आँखे है।

(२)

मै पंजाबिन हूँ, परन्तु मेरा नाम बगालिनों का-सा है। मैंने अपने सिवा किसी दूसरी पंजाबिन लड़की का नाम रजनी नहीं सुना। मेरे पिता उपन्यासों के बहुत शौकीन है। सुना है, दिन-रात पढते रहते है। उन्होंने बगला का उपन्यास 'रजनी' पढा और फिर मुझे भी रजनी के नाम से पुकारने लगे। इसके पश्चात् मेरा नाम यही प्रसिद्ध हो गया। वे धनवान है। उन्हे रुपये-पैसे की कमी नही, परन्तु मेरी ओर से प्राय चिन्तित रहते है। मैं भाग-वान के घर मे आई, परन्तु अभागिन बनकर। मेरे माता-पिता मुझे देखते ही ठण्डी साँस भरकर चुप हो जाते और देर तक बैठे रहते। मै जान लेती थी कि इस समय मेरे ससार का अन्धकार उनके हृदय के अन्दर समा गया है और उनकी आँखों के आसू उनके गलों पर बह रहे है। मै उनका दुःख दूर करना चाहती थी, परन्तु मेरे किये कुछ होता न था और मेरी बेबसी मेरे अधे मुख पर गरमी और लाली के रूप मे प्रगट हो जाती थी।

मै जवान हुई, तो मेरे माता-पिता की चिंता बढने लगी। पहले-पहल तो मुझे उनकी चिंता का कारण मालूम न था; परन्तु थोडे ही दिनों मे सब कुछ समझ गई। वह मेरे व्याह के लिये चिन्तित थे, सोचते थे—इस अन्धी लडकी से कौन व्याह करने को तैयार होगा। यह चिन्ता उन्हे अन्दर-ही-अन्दर खाये जाती

थी। सदैव उदास रहते थे। मुझे अपने दुर्भाग्य का पहली बार अनुभव हुआ। इससे पहले मुझे यह कल्पना तक न थी, कि विधाता ने मेरी आँखें छीनकर मुझपर कोई अत्याचार किया है। मै अपनी अँधेरी दुनिया मे प्रसन्न थी, परन्तु अब सोचती थी, क्या जो परमात्मा अन्धा कर सकता है, वह यह नही कर सकता कि अन्धे कभी जवान न हों, उनका शरीर कभी बढे-फूले। यदि यह हो जाय, तो अन्धे अपने जीवन की भयानकतर विपत्तियों से बच जायँ और उन्हे अपने दुर्भाग्य पर दुःख और क्रोध प्रकट करने की आवश्यकता कभी प्रतीत न हो। मैने अपने कमरे के दरवाजे बन्द करके, यह प्रार्थना, पता नहीं कितनी बार की, परन्तु उसे परमात्मा ने कभी स्वीकार न किया। यहाँ तक कि मैं परमात्मा और परमात्मा की दया दोनों से निराश होगई और मुझे विश्वास हो गया कि परमात्मा नहीं है, और यदि है, तो अत्याचारी, बेपरवा और निठुर है, परन्तु अब यह विचार बदल गये है।

मै सुन्दरी थी। मेरा मुख, मेरा रङ्ग, मेरा आकार—सब मन को मोह लेनेवाला था। यह मेरा नही, मेरी सहेलियो का विचार था। मै केवल यह जानती थी कि मेरे स्वर मे मिठास है। मै अन्धी हूँ, अपनी तारीफ अपने मुख से करना अच्छा नही लगता, परन्तु अपना स्वर सुनकर मै कभी-कभी स्वयं झूमने लग जाती थी। सुना है, हरिण अपनी कस्तूरी की सुगन्ध मे प्रमत्त होकर उसे ढूँढ़ता-फिरता है। मै भी अपने स्वर की सुन्दरता पर, यदि

उसे सुन्दर कहा जा सकता हो, मोहित थी। मैं उसे छूना, हाथों से पकडना, हृदय से लगाना चाहती थी; परन्तु मेरी यह मनो-कामना न पूरी हो सकती थी, न होती थी। मैं सुन्दरी थी। मेरा स्वर मीठा था। परन्तु अन्धी की सुन्दरता देखने वाला कोई न था। यह विचार मेरी अपेक्षा मेरे माता-पिता के लिये अधिक दु:खदायी था। जब कभी अकेले होते, मेरे दुर्भाग्य की चर्चा छिड जाती। कहते यह उत्पन्न ही क्यों हुई, और जो हुई थी, तो बचपन ही मे मर जाती। अब जवान हुई है, वर नहीं मिलता। रूप-रग देखकर भूख मिटती है, परन्तु आँखों के अभाव ने काम बिगाड़ दिया। अब क्या करे, परमात्मा ही है, जो बिगडी बन जाय। और तो कोई उपाय नही है।

यह बाते सुनकर मेरे कलेजे मे आग-सी लग जाती थी।

(३)

सायङ्काल था। मै अपने कमरे मे बैठी अपने कर्मों को रो रही थी। एकाएक ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई कमरे मे आ गया है। यह मेरे पिता न थे। न माँ थी, न नौकर। मै उन सबके पैरों की चाप को पहचानती थी। यह कदम मेरे कानों के लिये नये थे। मैने सिर का कपडा सँभालकर पूछा—

"कौन है ?"

किसी ने उत्तर दिया—"मै।"

मैं चौक पडी। मेरे शरीर मे एक सनसनी-सी दौड गई। यह लाला कर्त्ताराम बैरिस्टर के सुपुत्र लाला सीताराम थे। पहले

"बडे कठोर हो।"

कुछ उत्तर न मिला, मेरा कलेजा धड़कने लगा। खयाल आया, कहीं बुरा मान गये हों। मैने क्षमा माँगनी चाही; परन्तु किसी दैवी शक्ति ने जीभ पकड ली। उन्होंने थोडी देर ठहरकर कहा—"रजनी!"

मैंने यह शब्द उनके मुख से सैकड़ों बार सुना था, परन्तु जो बात इसमे आज थी, वह इससे पहले कभी न थी। स्वर काँप रहा था। जैसे सितार के तार हिल रहे हों। उनमे कैसी मिठास थी. कैसी मोहनी और उसके साथ मिली हुई विकलता और प्रेम। मेरी आत्मा पर मद-सा छा गया। एक क्षण के लिए मै भूल गई कि मै अन्धी हूँ। ऐसा जान पडता था कि मैं आकाश मे उडी जा रही हूँ और मेरे चारों ओर कोई मधुर सगीत अलाप रहा है। यह क्षण कैसा सुखद, कैसा अमोलक था, उसे मैं आज तक नहीं भूल सकी। आठ वर्ष बीत चुके है। इस सुदीर्घ काल मे कई अवसर ऐसे आये, जब मैंने यह अनुभव किया कि मेरी आत्मा इस आनन्द के बोझ को सहन न कर सकेगी, परन्तु यह अवसर उस एक क्षण के आनन्द के सामने तुच्छ है, जब मुझे यह ख्याल न रहा था कि मैं अन्धी हूँ, और मेरी आँखे दुनिया की बहार देखने से वंचित है। एकाएक मुझे स्थान, समय और अपनी अवस्था का अनुभव हुआ। मै अपनी लज्जा के बोझ-तले दब गई और आत्मा की पूरी शक्ति से केवल एक शब्द बोल सकी—

"क्यों?"

"तुम्हारा ब्याह होगा।"

मेरा मुँह लाल हो गया, जैसे किसी ने तमाचा मार दिया हो। फिर भी साहस से बोली—"मै अन्धी हूँ।"

"फिर?"

"मेरे साथ कौन ब्याह करेगा?"

अब सोचती हूँ कि उस समय ये शब्द कैसे कह दिये थे। परन्तु अन्धी के लिए साहस कोई बडी बात नही। लज्जा आँखों मे होती है। और वह न दूसरे को देख सकती है, न यह जान सकती है कि कोई दूसरा उसे देख रहा है। सीताराम कुछ देर चुप रहे। उनकी यह चुप्पी मेरे लिए ससार का सबसे बडा दण्ड था। ऐसा जान पडता था कि मेरे भाग्य की परीक्षा हो चुकी है और अब परिणाम निकलने को है। मेरे प्राण होठों तक आ गये। एकाएक वे आगे बढे और मेरे मस्तक पर धीरे से अपना हाथ रखकर बोले—"रजनी! तुम्हारे साथ मैं ब्याह करूँगा।"

मेरे सिर से बोझ उतर गया। मालूम होता है, हृदय के भाव मुख पर पढ़े जा सकते है, क्योंकि सीताराम ने दूसरे क्षण मे मुझे अपने बाहु-पाश मे ले लिया और मेरा मुँह प्रेम से बार-बार चूमने लगे।

उस रात मुझे नीद न आई। उसका स्थान आनन्द ने ले लिया था। ऐसे प्रतीत होता था, मानो मै अपनी अँधेरी दुनिया पर शासन कर रही हूँ, और ससार मेरे प्रेम के अमर सगीत से भरपूर हो चुका है।

एक मास भी न बीतने पाया कि हमारा ब्याह हो गया।

(४)

यह मेरे जीवन का दूसरा परिच्छेद था। इस समय तक मै शब्द-ससार मे बसती थी, अब प्रेम-पथ मे पॉव धरे। वे मुझे चाहते थे। मेरे बिना रह न सकते थे। मेरी पूजा करते थे। प्राय मेरा हाथ अपने हाथ मे ले लेते और मेरी प्रशसा के पुल बॉध देते थे। कहते—मैने सैकड़ों युवतियाँ देखी है; परन्तु तुम-सरीखी सुन्दरी आज तक न देखी है, न देखने की सम्भावना है। मै पहले-पहल ये बाते सुनकर अपना मुँह हाथों से छिपा लेती थी। परन्तु धीरे-धीरे यह झिझक दूर हो गई, जैसे प्रत्येक विवाहिता रमणी के लिए इस प्रकार की ठकुर-सुहातियां सुनना एक साधारण बात हो जाती है। वे मेरे लिए दर्पण का काम देते थे। मै अपनी ऑखो से नहीं, वरन अपने कानों से उनकी बातों मे, अ नी प्रशसा मे, अपना रूप-रग देखकर गर्व से झूमने लग जाती, और समझती कि मुझ-सी सौभाग्यवती स्त्रियॉ ससार मे अधिक न होंगी। इस सौभाग्य ने मेरी कइ सखियॉ बना दी। मेरा ऑगन हास-विलास से गूजता रहता था, परन्तु इस हास-विलास के अन्दर, इस मधुर-सङ्गीत के नीचे, कभी-कभी व्याकुलता का अनुभव होने लगता था, जैसे बिल्ली के गुदगुदे पैरो मे तीक्ष्ण नख छिपे रहते है। मैने अपनी एक-एक सखी से उसके जीवन के गुप्त रहस्य पूछे, और तब मैंने यह तत्त्व समझा कि ससार मे प्रत्येक वस्तु वह नहीं, जो (दिखाई नहीं प्रत्युत) सुनाई देती है। न ससार मे वह अभागा है जिसे प्राय· अभागा समझा जाता है।

उनकी बातों ने मेरे सुख-मय जीवन को और भी सुख-मय बना दिया। वे मुझसे कभी रुष्ट न होते थे, न कभी बुरा-भला कहते थे। वे इसे मनुष्यत्व से गिरा हुआ समझते थे। सोचते थे, यह मन मे क्या कहेगी। मेरे नेत्रों का अभाव मेरे लिये दैवी सुख का कारण बन गया, मेरा काम स्वयं करते थे। मै रोकती, तो कहते --इससे मुझे आनन्द मिलता है। तुम कुछ ख्याल न करो। ससार की समस्त स्त्रियाँ अपने पतियों को सेवा करती है। यदि एक पति अपनी स्त्री का थोडा-सा काम कर देगा, तो ससार मे प्रलय न आ जायगा। उनके पास रुपया था, कई नौकर रक्खे हुए थे; परन्तु वे जनाने मे न आ सकते थे। रोटी बनाने के लिए एक मिसरानी थी मेरा जी बहलाने के लिये एक और स्त्री, परन्तु फिर भी कई काम ऐसे होते हैं जो गृहिणी को स्वय करने पडते है। पर मै अन्धी थी, इसलिए ऐसे काम वे स्वय करते थे, और उस समय ऐसे प्रसन्न होते थे, जैसे बच्चे को बढ़िया खिलौने मिल गये हों। उनकी दिलजोइयो ने मुझे उनकी पुजारिन बना दिया। मै उनकी पूजा करने लगी। सोचती थी, ऐसे मनुष्य भी ससार मे थोडे होंगे। उन्हे मेरी क्या परवा है। चाहे, तो मुझ जैसी बीसियों खरीद ले। यह उनके लिए कुछ भी कठिन नही, परन्तु वे फिर भी मुझे चाहते है, मानो मैं किसी देश की राजकुमारी हूँ। मै पहले उनसे प्रेम करती थी, फिर उनकी पूजा करने लगी। प्रेम ने श्रद्धा का रूप धारण कर लिया। मेरा जीवन न था, सुख-मय स्वप्न था, जो भय, अधीरता, अशान्ति और दुःख से कभी नष्ट

नहीं हुआ था। उनके प्रेम ने दैवी त्रुटि पूरी कर दी। वह मेरी अन्धकारमय सृष्टि के प्रदीप थे, उनकी बात-चीत मेरे नीरस जीवन का सरस सङ्गीत। मै चाहती थी, वे मेरे पास से कही उठकर न जायँ। मै उनके एक-एक पल, एक-एक क्षण पर अधिकार जमाना चाहती थी। जब कभी वे आने मे थोड़ी-सी भी देर कर देते, तब मेरा दम घुटने लगता था, मानो कमरे से हवा निकाल दी गई हो। यह व्याकुलता कैसी जीवन-मय है, कैसी प्रेमपूर्ण? इसे साधारण लोग न समझेगे। इसको केवल वही जान सकते है, जिनके हृदय को प्रेम के अन्धे देवता भगवान् कामदेव ने पुष्पों के बाण मार-मारकर घायल कर दिया है।

इसी प्रकार पाँच वर्ष का समय, जिसे बेपरवाई और सुख के जीवन ने बहुत छोटा बना दिया था, बीत गया, और मै एक बच्चे की माँ बन गई। मेरे आनन्द का ठिकाना न था। यह बच्चा मेरी और उनकी परस्पर-प्रीति की जीवित-जाग्रत मूर्त्ति था, जिस पर हम दोनों जी-जान से निछावर थे। यह बच्चा—मैंने सुना—बहुत सुन्दर था। मेरी सखियाँ कहती थीं, तुम रजनी—रात्रि—हो, तुम्हारा बेटा सूरज है। इसका रूप मन को मोह लेता है। जो देखता है, प्रसन्न हो जाता है। मैं यह सुनकर फूली न समाती। हृदय मे हर्ष की तरगे उठने लगती, जिस तरह किसी ने बाजे पर हाथ रख दिया हो। फिर पूछती—इसकी आँखे कैसी है। वे उत्तर देतीं—बड़ी-बडी। हिरन का बच्चा मालूम होता है परमेश्वर ने माँ की कसर बच्चे की आँखों मे निकाल दी है।

स्त्री की कई स्थितियाँ है। वह बेटी है, बहन है, स्त्री है, परन्तु जो प्रेम उसमे माँ बनकर उत्पन्न होता है, उसकी उपमा इस नश्वर संसार मे न मिलेगी। मुझे माता-पिता से प्रेम था, पति पर श्रद्धा। उनको देखने के लिए मै कभी-कभी अधीर हो उठती थी ; परन्तु उस अधीरता की, इस नई अधीरता के साथ कोई तुलना न थी, जो अपने बच्चे का मुख चूमते समय, उसका आँखों पर हाथ फेरते समय, उसे हृदय से लगाते समय, मेरे नारी-हृदय मे उत्पन्न हो जाती थी, उस समय मै घबराकर खडी हो जाती, और परमात्मा के विरुद्ध सैकडों शब्द मुख से निकाल देती। मै चाहती थी, आह! नहीं बता सकती, कितना चाहती थी कि मेरी आँखे एक क्षण के लिए खुल जायँ, और मै अपने बच्चे को एक नजर देख लूँ ; परन्तु यह इच्छा पूरी न होती थी। मै अपने दुर्भाग्य को अब अनुभव करने लगी।

(५)

धीरे-धीरे मेरी व्याकुलता ने उन्हे भी उदास कर दिया, जिस तरह एक घर मे आग लग गई हो, तो धूआँ दूसरे घर मे भा पहुँच जाता है। प्राय: चिन्तित रहने लगे। वे मेरे भावा का समझ गये थे। अब उनके स्वर में वह मनोहरता न थी, न शब्दों मे वह सरसता थी। बात-चीत के ढग में भी अन्तर आ गया था। बोलते-बोलते चुप हो जाते। निस्सन्देह उस समय यदि मेरे नेत्रों से अन्धकार का पर्दा उठ जाता, तो मै उनके पलकों पर

आँसुओं की बूदों के सिवा और कुछ न देखती। एक दिन बाहर से आये तो घबराये हुए थे। आते ही बोले,—"रजनी।"

मैंने धीरे से उत्तर दिया—"जी।"

"तुम कब अन्धी हुई थीं? मेरा विचार है, तुम जन्म से अन्धी नहीं हो।"

"नहीं।"

"तो तुम्हारी आँखे खराब हुए कितना समय हुआ?"

"मै उस समय तीन वर्ष की थी।"

"तुम्हे अच्छी तरह याद है। तुम्हे विश्वास है?"

"हाँ, इसमे ज़रा भी सन्देह नहीं।"

उन्होंने मुझे खींचकर गले से लगा लिया और बोले—"परमात्मा को धन्यवाद है! एक बार अन्तिम प्रयत्न करूँगा।"

आवाज़ से मालूम होता था, जैसे उनके सिर से कोई बोझ उतर गया है। मैंने उनके मुख पर हाथ फेरते हुए पूछा—"बात क्या है?"

"मै चाहता हूँ, तुम्हारी आँखे खुल जायँ, तुम भी संसार के अन्य जीवों के समान देखने लगो। मेरे उस समय के आनन्द का कोई अनुमान नहीं लग सकता। आह! यदि ऐसा हो जाय, तो—"

यह कहते-कहते वे अपने काल्पनिक सुख मे निमग्न हो गये। थोड़ी देर के बाद फिर बोले—"डाक्टर कहते है कि जन्मान्ध के सिवा सबकी आँखे ठीक हो सकती है; परन्तु डाक्टर निपुण होना चाहिये। मेरा एक मित्र अमेरिका गया था। आँखें बनाने

सीख कर आया है। थोड़े ही समय मे उनकी नाम की दूर-दूर तक धूम मच गई है। आज उनसे भेट हुई। बडे प्रेम से मिले और बलात् खीचकर अपने मकान पर ले गये। वहाँ बात-चीत मे तुम्हारा जिक्र आ गया। बोले—"यदि जन्मान्ध नही, तो मै एक महीने मे ठीक कर दूंगा।"

मै कुछ देर चुप रही और बोली—"रहने दो, मै अच्छी होकर क्या करूँगी।"

"नही, अब मै अपनी ओर से पूरा-पूरा प्रयत्न करूँगा।"

"मुझे डर है कि मै—"

"यदि आँखे खुल गई, तो प्रसन्न हो जाओगी।"

"और यदि प्रयत्न निष्फल गया तो फिर ?"

"भगवान का नाम लो। उसी के हाथ मे सबकी लाज है। इस समय सौ से अधिक अन्धों का इलाज कर चुका है, परन्तु एक के सिवा सब उसके गुण गा रहे है।"

मैने धडकते हुए दिल की धडकन दबाकर कहा—'ऐसा योग्य है ?"

"योग्य क्या इस युग का धन्वन्तरि है।"

"तो तुम्हे आशा है, मैं देखने लगूँगी ?"

"आशा की क्या बात है। मुझे तो पूरा विश्वास है, कि अब मेरा भाग्य पलटने मे देर नहीं।"

मैने बेटे को हृदय से लगा लिया, और रोने लगी। हृदय में विचार-तरङ्गे उठने लगीं। अब वहाँ निराशा की शान्ति नहीं रही

थी, उसका स्थान आशामयी अशान्ति ने ले लिया था। मस्तिष्क मे सहस्रों विचार आ रहे थे। उनके, पुत्र के, पृथ्वी-आकाश के, फूलों के, सूरज के, चन्द्रमा-तारों के, रूप के विषय मे अनुमान के घोडे दौडा रही थी। सोचती थी, आँखे खुल जायँ, तो एक मन्दिर बनवा दूँ, तीर्थ-यात्रा करूँ और अनाथालयों के नाम चन्दा बाँध दूं। माता-पिता सुनेगे, तो दंग रह जायंगे, सहेलियाँ बधाई देने आयंगी, परन्तु इस खुशी मे एक बडा भोज देना आवश्यक हो जायगा। उनकी कितनी उत्कण्ठा है, कि शाम को मुझे साथ लेकर बग्घी पर निकले, परन्तु नेत्रों का दोष रास्ता रोक लेता है। यदि डाक्टर का परिश्रम सफल हो जाय, तो हाथों के कड़े उतार दूँ और उसकी पत्नी को बुलाकर रेशमी जोडा दूँ।

मै डाक्टर के आने की इस तरह प्रतीक्षा करने लगी, जैसे उसके आने के साथ ही मेरी आँखे खुल जायँगी। आशा ने मस्तिष्क को उलझन मे डाल दिया था। एकाएक दरवाजे पर किसी मोटर के आकर रुकने की आवाज़ आई। मेरी देह काँपने लगी। निराशा के विचार ने गला पकड़ लिया। इतने मे वे अन्दर आ गये और बोले—"डाक्टर साहब आ गये है।"

मैने साड़ी को सिर पर ठीक कर लिया और सँभलकर हो बैठी; परन्तु हृदय जोर-जोर से धडक रहा था। डाक्टर साहब मेरी आँखों को देखने लगे। कुछ देर सन्नाटा रहा और तब उन्होंने किलकारी मारकर कहा—"मुझे पूरा निश्चय है, कि तुम्हारी आँखे बन जायँगी।'

जितना सुख किसी भिखारी को यह सुनकर होता है, कि तुम्हे राज मिल जायगा, उससे अधिक सुख मुझे डाक्टर साहब के इस वचन से हुआ और मैने हठात् अपने स्थान से उठकर दोनों हाथ बाँधे और उमँड़ते हुए हार्दिक भावो से काँपती हुई आवाज़ मे कहा—

"डाक्टर साहब! आपका यह उपकार जन्म-भर न भूलेगा।"

उस समय मेरी आवाज़ मे प्रार्थना और प्रफुल्लता के वे अश मिले हुए थे, जो केवल अपराधियों की ही आवाज़ मे पाये जाते है। आँखों के खुल जाने की आशा ने वर्षो की शान्ति और सतोप को इस प्रकार उड़ा दिया था, जैसे किसी सेठ के आने से पहले-पहल मालिक-मकान अपने ग़रीब किरायेदार को निठुरता से बाहर निकाल देता है।

(६)

आपरेशन हुआ और बडी सफलता से हुआ। वे फूले न समाते थे। कहते थे, अब केवल थोडे दिनों की बात है, तुम ससार के प्रत्येक दृश्य को देख सकोगी। मेरा सुख पहले अधूरा था, अब पूरा होगा। मुझसे कहते—तुम्हे इस समय तक पता नहीं और यदि पता है, तो तुम पूर्ण रूप से अनुभव नहीं कर सकतीं, कि आंखों का न होना, तुमपर प्रकृति का कैसा अत्याचार था। तनिक यह पट्टी खुल जाने दो, फिर पूछूँगा। एक दिन के लिए आँखे दुखने लगें और अँधेरे में बैठना पड़े, तो कलेजा घबराने लगता है।

जी चाहता है, दरवाजे तोड़कर बाहर निकल जायँ, परन्तु तुम लगातार कई वर्षों से इसी अवस्था मे हो और फिर भी—"

मैने अपनी व्याकुलता से भरी हुई, प्रसन्नता को छिपाने की चेष्टा करते हुए कहा—"तो क्या मै देखने लगूँगी ? यह आपको निश्चय है ?"

"निस्सन्देह तेरह दिन के पश्चात।"

"बहुत प्रसन्न हो रहे होंगे ?"

"कुछ न पूछो। मेरा एक-एक क्षण साल-साल के बराबर बीत रहा है। मै झुँझला उठता हूँ, कि यह समय शीघ्र क्यों नहीं बीत जाता। मै तेरहवे दिन के लिये पागल हो रहा हूँ।"

"और यदि यह प्रसन्नता, यह आशा निर्मूल सिद्ध हुई, तो ?"

"यह नहीं हो सकता,। यह असम्भव है।"

"आशा प्रायः धोखे दिया करती है।"

"परन्तु यह आशा नहीं है।"

सचमुच यह आशा नही थी। स्वय मुझे भी निश्चय था, कि यह आशा नही है। फिर भी मैने उनके हृदय की थाह लेने और अपने विश्वास को और दृढ़ करने के विचार से पूछा—"क्यों ?"

"डाक्टर ने कहा है।"

"परन्तु डाक्टर परमात्मा नही है।"

थोड़ी देर के लिये वे चुप हो गये, जैसे आनन्द की कल्पना मे किसी दुःख का विचार आ जाय, और फिर मेरे दोनों हाथों को

अपने हाथों मे दबाकर बोले—"डाक्टर अपनी विद्या मे अद्वितीय है। उसका वचन झूठा नहीं हो सकता। मै इस समय ऐसा प्रसन्न हूँ, जैसे किसी राजा ने इम्पीरियल बैङ्क के नाम चेक दे दिया हो। अब रुपया मिल जाने मे कोई सन्देह नहीं है। केवल तेरहवे दिन की प्रतीक्षा है। न राजा दीवालिया हो सकता है, न डाक्टर का वचन झूठा हो सकता है। तुम यों ही अपने सन्देह से मेरे हृदय को विकल कर रही हो।"

बारह दिन बीत गये। अब केवल एक दिन शेष था। सोचती थी, कल क्या होगा? कभी आशा हृदय की कली खिला देती थी, कभी निराशा हृदय मे हलचल मचा देती थी। मैने आँखों पर पट्टी बाँधकर बारह दिन बिता दिये थे, अब एक दिन बिताना कठिन हो गया। जैसे यात्री पड़ाव के निकट पहुँचकर घबरा जाता है। उस समय उसके हृदय मे कैसी उद्विग्नता होती है, कैसी अधीरता। वह घण्टों की राह मिनटों मे तय करना चाहता है। बार-बार झुँझला उठता है, जैसे किसी ने काँटे चुभो दिये हों। यही दशा मेरी थी। मै चाहती थी, यह दिन एक क्षण बनकर उड़ जाय और मैं पट्टी आँखों से उतारकर फेक दूँ; परन्तु प्रकृति के अटल नियम को किसने बदला है। समय ने उसी प्रकार धीरे-धीरे अपने मिनटों के पैरों से चलना जारी रक्खा। उसे मेरी क्या परवा थी?

सायङ्काल था। वे कचहरी से वापस आ गये और सूरजपाल को (यह मेरे बेटे का नाम है) उठाये हुए कमरे के अन्दर आये और मेरे पास बैठकर बोले—"कल इस समय क्या होगा?"

मैने हाथ बाँधकर ऊपर की ओर सिर उठाया और कहा—

"परमात्मा दया करे।"

"और वह अवश्य करेगा।"

जैसे ढोलक पर हाथ मारने से गूँज उत्पन्न होती है, उसी प्रकार इस वाक्य से मेरे हृदय मे गूँज उत्पन्न हुई। यह गूँज कैसी प्यारी थी, कैसी आनन्ददायक! इसमे दूर के ढोल का सुहावनापन था, स्वप्न-सङ्गीत का जादू। सोचने लगी—क्या यह सम्मोहिनी निकट पहुँचकर भी ऐसी ही बनी रहेगी, क्या यह जादू जागने के पश्चात् भी स्थिर रहेगा? एकाएक उन्होंने कहा—"कैसी गरमी है। बैठना कठिन हो गया।"

मैने पंखे की रस्सी पकड ली और कहा—"पखा करूँ?"

कमरे मे गरमी कोई इतनी अधिक न थी, परन्तु वे बाहर से आये थे, इस लिए उनका दम घुटने लगा। क्रोध से बोले—"पंखा-कुली कहाँ गया। मै मार-मारकर उसका दम निकाल दूँगा।"

"चलो, जाने दो, बेचारा सारा दिन पखा खीचता रहता है। थककर जरा बाहर चला गया होगा। खिडकी क्यों न खोल दूँ, सूरज भी घबरा रहा है।"

यह सुनकर वह उछल पडे, जैसे किसी गठकतरे ने उनकी जेब मे हाथ डाल दिया हो, बोले—"क्या कहती हो, खिड़की खोल दूँ। तुम्हे मालूम नहीं कि डाक्टर ने कितना सावधान रहने को कहा है।"

"परन्तु अब तो सायकाल हो चुका है। कितने बजे होंगे?"

"साढ़े छ. बज चुके है।"

'तो अब क्या हर्ज है ? थोडी-सी खिड़की खोल दो, मेरी आँखों पर पट्टी बँधी है।

उन्होंने बहुत कहा , पर मैंने एक न सुनी और उठकर खिड़की खोल दी। सूरज ने तालियाँ बजाईं और खिलखिलाकर हँसने लगा। उसकी हँसी देखने के लिए मैं अधीर हो गई, परन्तु आँखों पर पट्टी बँधी थी।

इतने मे सूरज खिड़की पर चढ गया और खेलने लगा। वह इस समय बहुत ही प्रसन्न था। पक्षियों की नाईं चहकता था। उसे कोई विचार, कोई भय, कोई चिन्ता न थी।

"सूरज, शीशा छोड़ दो, टूट जायगा।"

परन्तु सूरज ने अनसुना कर दिया और शीशे के सामने खडा होकर अपना मुँह देखने लगा। एकाएक उसने (मैंने पीछे सुना था) शीशे मे इस तरह मुँह बनाकर देखा कि वे सहसा चिल्ला उठे—"जरा देखना।"

मुझे अपनी अवस्था का विचार न रहा। मै भूल गई कि यह समय बडा विकट है मै अन्धी हूँ, मुझे एक दिन के लिए सन्तोष करना चाहिए। इस समय की थोडी-सी असावधानी मेरे सारे जीवन को नाश कर देगी और फिर मेरी आँखों को कोई शक्ति किसी उपाय से भी न खोल सकेगी, यह विचार न रहा मै पागल हो गई। मेरी ऐसी अवस्था आज तक कभी न हुई थी। मेरे हाथ मेरे बस में न रहे। उन्होंने पट्टी को उतारकर भूमि पर फेंक दिया और मैंने आँखे खोलीं।

मैं देख सकती थी। मैंने एक ही दृष्टि मे उनको, बेटे को और खिड़की में से दिखाई देनेवाले बाहर के बाग़ के एक भाग को देखा, और खुशी से चिल्ला उठी—"मैने तुमको देख लिया।"

उन्होंने आश्चर्य, भय और प्रसन्नता की मिली-जुली दृष्टि से मेरी ओर देखा; परन्तु अभी मेरी आखे उनकी आँखों से मिलने न पाई थी, कि चारों ओर फिर अन्धकार छा गया और मेरी अँधेरी दुनिया ने उनकी प्यारी-प्यारी सूरतों को फिर अपने अन्दर छिपा लिया। मैंने ठण्डी आह भरी और पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बैंक से रुपया मिल गया था और समय से पहले; परन्तु मेरी असावधानी ने उसे पानी मे गिरा गिरा दिया।

अब मेरे लिए कोई आशा न थी। मैने उसके द्वार अपने हाथों से बन्द कर लिए थे। कई दिन तक रोती रही। वे मुझे धीरज देते ते। कहते थे, न सही, तुम जीती रहो, इसी प्रकार निभ जायगी, परन्तु इन धीरज की बातों से मुझको संतोष न होता था, उलटा मेरे घावों पर नोन छिडक जाता था। मेरा विचार था कि एक बार आँखे खुल जाने से मै प्रसन्न हो जाऊँगी, यह झूठ सिद्ध हुआ। एक क्षण की दृष्टि से अपने दुर्भाग्य का दुःखमय अनुभव हो जाता है। इसका अनुमोदन हो गया।

(७)

कहते है, प्रत्येक काली घटा के गिर्द सफेदधारी होती है। मेरी विपत्ति अपने साथ एक ज्योति लाई। यह आशा की ज्योति न थी, जो कभी बढती है, कभो घट जाती है। यह नैराश्य

विश्वास की ज्योति थी, जो सदा बढती है, घटती नहीं। मै पति और पुत्र दोनों को देख चुकी थी। सुना है, फूल सुन्दर होते है। यदि यह सच है, तो मै कह सकती हूँ कि मैने क्षण-मात्र की दृष्टि मे दो अति सुन्दर फूल देखे है और उनसे अच्छी वस्तु देखना मेरे लिए सम्भव नही। वे आज भी मेरी अन्धकार-मयी सृष्टि मे उसी प्रकार हरे-भरे और प्रफुल्लित है। उनकी सूरते मेरे हृदय-पट पर अङ्कित हो चुकी है और संसार की कोई शक्ति, कोई वस्तु, कोई सत्ता उन्हे न मिटाती है। यदि मै अधिक मनुष्य देख लेती, तो कदाचित् मुझे कभी-कभी उनका विचार आ जाता और वे भी मेरे हृदय की चित्रशाला मे थोडे-से स्थान पर अङ्कित हो जाते। अथवा उनके चेहरों पर मेरे पति और पुत्र के चेहरों की रूप रेखाएँ अस्त-व्यस्त हो जाती; परन्तु अब यह आशङ्का नही रही। मैंने बाहर की ओर से आँख बन्द करके उन दो सुन्दर मूर्त्तियों को अपने हृदय मे अमर जीवन दे दिया है।

कुछ समय के बाद नगर मे चेचक फूट पडी। सूरजपाल रोके न रुकता था। दौड-दौडकर बाहर चला जाता था। वे कहते थे, इसे बाहर न निकलने दो, यह मेरे जीवन का आधार है, यदि इसे कुछ हो गया, तो मेरा जीवन नष्ट हो जायगा, परन्तु बच्चे के पैरों मे जजीर किसने डाली है। वह नौकरों की आँखे बचाकर निकल जाता और कई-कई घण्टे लडकों के साथ खेलता रहता था। अन्त मे उसे भी इस रोग ने जकड लिया। वे घबरा गये, जैसे उन पर विपत्ति का पहाड टूट पड़ा हो। दिन-रात पास बैठे

रहते। उन्होंने कचहरी जाना छोड दिया था। कहते थे—परमात्मा करे, मैं इस मुकदमे मे जीत जाऊँ। मै और कुछ नही चाहता, मेरा बच्चा बच जाय। जिस प्रकार हिरन अपने बच्चे को बचाने के लिये स्वयं अपने आप को मृत्यु के मुँह मे दे देता है, उसी प्रकार उन्होंने सूरजपाल की खातिर अपना जीवन खतरे मे डाल दिया। हर समय उसके साथ लेटे रहते थे। परिणाम यह हुआ कि सूरज पाल की सेवा-सुश्रषा करते-करते आप भी बीमार हो गये। अब मेरे व्याकुल हृदय मे तूफान उठने लगे। मेरे पास केवल फूल थे। और उन दोनों को, प्रकृति का निर्दयी हाथ, तोडने के पीछे पडा था, परन्तु मैंने अपनी जान लड़ा दी, और अपने दिखाई देनेवाले समान दिन-रात को उनकी सेवा मे एक कर दिया। और परमात्मा ने मुझ अबला के परिश्रम को सफल किया—दोनों नीरोग हो गये।

मेरे आनन्द का ठिकाना न था। आँगन मे उछलती फिरती थी, जैसे किसी का डूबा हुआ धन मिल जाय। उन्होंने आकर कृतज्ञता के भाव से मेरा हाथ अपने निर्बल हाथ मे लिया और धीरे से कहा—"तुमने हमे मृत्यु के मुख से खींचा है, नही तो।"

मैंने उनके मुँह पर हाथ रख दिया और कहा—"बस, इसके आगे एक शब्द भी न कहो। मेरे कान यह सुनने की शक्ति नही रखते।"

वे चुप हो गये, परन्तु थोड़ी देर के बाद मुझे मालूम हुआ कि वे रो रहे है। मेरे हाथ पर पानी की दो गरम बूँदे टपकी।

"क्यों, रोते क्यों हो? अब तो कोई खतरा नहीं।"

यह सुनकर वह सिसकियाँ भर-भरकर रोने लगे। मै उनके गले से लिपट गई, जिस प्रकार सूरजपाल मेरे गले से लिपट जाया करता है। मैंने पूछा—"तुम बताओ, तुम क्यों रो रहे हो? मेरा कलेजा फट जायगा।"

उन्होंने उत्तर देने की चेष्टा की, परन्तु उनके प्रत्येक शब्द को उनकी लगातार सिसकियों ने इस प्रकार निगल लिया, जिस प्रकार किसी अन्धी लड़की की नेत्र-कल्पनाओं को व्याकुलता निगल जाती है। वे रो रहे थे। जब दु ख का बोझ हलका हुआ और उनकी जिह्वा को बोलने की शक्ति प्राप्त हुई, तब उन्होंने मेरा हाथ अपने मुँह पर रख लिया और रुक-रुककर कहा—"यदि तुम देख सकतीं, तो तुम्हे ऐसा दृश्य दिखाई देता कि तुम मूर्च्छित हो जाती।"

मै कुछ समझ न सकी, मस्तिष्क पर जोर देते हुए बोली—"तुम्हारा क्या अभिप्राय है। साफ-साफ कहो।"

"मेरी और तुम्हारे सूरजपाल की सूरत ऐसी बदल गई है कि देखकर डर लगता है।"

यह कहकर वह चुप हो गये।

मै बैठी थी, खडी हो गई और चिल्लाकर बोली—"परन्तु मेरी आँखों मे जो तुम्हारी सूरतें समा चुकी है, उन्हे कौन बदल सकता है। ससार की आँखों में तुम बदल जाओ, परन्तु मेरी आँखों मे तुम सदा वैसे ही सुन्दर, वैसे ही मनोहर हो। मैं सोचती थी, परमात्मा ने दूसरी बार मेरी आँखे छीनकर मुझ पर

अन्याय किया है; परन्तु आज मालूम हुआ कि इस अन्याय के परदे मे उसकी अपार दया छिपी थी।"

यह कहकर मैने उनके गले मे भुजाएँ डाल दीं और उनके बालो मे धीरे-धीरे अपनी अँगुलियाँ फेरने लगी।

इस समय मेरे अँधेरी दुनियाँ मे ऐसा प्रकाश था, जो बयान नही किया जा सकता।

३—पं० चतुरसेन शास्त्री

आप देहली के निवासी हैं। आपकी रचनाये अधिकतर गद्य-काव्य-मयी होती हैं, माधुर्य मे डूबी हुई। मनोभावों का विश्लेषण करने मे आप सिद्ध-हस्त है। आपकी भाषा बहुत परिमार्जित और भाव शृङ्गार-मय होते है। 'अन्तस्तल' आपका एक गद्य-काव्य है। "हृदय की प्यास" नाम का रोचक उपन्यास भी आपने लिखा है।

दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी

(१)
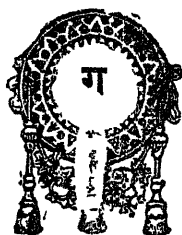
र्मी के दिन थे। बादशाह ने उसी फागुन मे सलीमा से नई शादी की थी। सल्तनत के सब झंझटों से दूर रहकर नई दुलहिन के साथ प्रेम और आनन्द की कलोल करने वह सलीमा को लेकर काश्मीर के दौलतखाने मे चले आए थे।

रात दूध मे नहा रही थी। दूर के पहाडों की चोटियाँ बर्फ से सफेद होकर चाँदनी मे बहार दिख रही थी आरामबाग़ के महलों के नीचे पहाडी नदी, बल खाकर वह रही थी।

मोतीमहल के एक कमरे मे शमादान जल रहा था, और उसकी खुली खिडकी के पास बैठी सलीमा रात का सौदर्य निहार रही थी। खुले हुए बाल उसकी फीरोज़ी रग की ओढनी पर खेल रहे थे. चिकन के काम से सजी और मोतियों से गुँथी हुई उस फरोज़ी रग की ओढनो पर, कसी हुई कमखाब की कुरती और पन्नों की कमरपेटी पर, अगूर के बराबर बडे मोतियों की माला

झूम रही थी। सलीमा का रंग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। संगमर्मर के समान पैरों मे ज़री के काम के जूते पड़े थे, जिन पर दो हीरे धक्-धक् चमक रहे थे।

कमरे मे एक कीमती ईरानी कालीन का फर्श बिछा हुआ था, जो पैर रखते ही हाथ-भर नीचे धँस जाता था। सुगन्धित मसालों से बने हुए शमादान जल रहे थे। कमरे मे चार पूरे कद के आईने लगे थे। संगमर्मर के आधारों पर, सोने-चाँदी के फूलदानों मे, ताजे फूलों के गुलदस्ते रक्खे थे। दीवारों और दरवाजों पर चतुराई से गूथी हुई नागकेसर और चम्पे की मालाये झूम रही थी, जिनकी सुगन्ध से कमरा महक रहा था। कमरे मे अनगिनत बहुमूल्य कारीगरी की देश-विदेश की बस्तुएँ करीने से सजी हुई थीं।

बादशाह दो दिन से शिकार को गये थे। आज इतनी रात गई, अभी तक नहीं आये। सलीमा चाँदनी दूर तक आँखे बिछाये सवारों की गर्द देखती रही। आखिर उससे स्थिर न रहा गया। वह खिड़की से उठकर, अनमनी-सी होकर मसनद पर आ बैठी। उम्र और चिन्ता की गर्मी जब उससे सहन न हुई, तब उसने अपनी चिकन की ओढ़नी भी उतार फेकी और आप-ही-आप झुँझलाकर बोली—"कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अब क्या करू ?" इसके बाद उसने पास रक्खी बीन उठा ली। दो-चार अँगुली चलाई ; मगर स्वर न मिला। उसने भुनभुनाकर कहा—"मर्दों की तरह यह भी मेरे वश मे नहीं है।" सलीमा ने उकताकर उसे रखकर दस्तक दी। एक बाँदी दस्तबस्ता आ हाज़िर हुई।

बाँदी अत्यन्त सुन्दरी और कमसिन थी। उसके सौंदर्य मे एक गहरे विषाद की रेखा और नेत्रों मे नैराश्य की स्याही थी। उसे पास बैठने का हुक्म देकर सलीमा ने कहा—"साकी, तुझे बीन अच्छी लगती है या बाँसुरी ?"

बाँदी ने नम्रता से कहा—"हुजूर जिसमे खुश हो।।"

सलीमा ने कहा—"तू किस मे खुश है ?"

बाँदी ने कम्पित स्वर मे कहा—"सरकार! बाँदियों की खुशी ही क्या ?"

क्षण भर सलीमा ने बाँदी के मुँह की तरफ देखा—वैसा ही विषाद, निराशा और व्याकुलता का मिश्रण हो रहा था!

सलीमा ने कहा—"मै क्या तुझे बाँदी की नज़र से देखती हूँ ?"

"नहीं, हज़रत की तो लौडी पर खास मेहरबानी है।"

"तब तू इतनी उदास झिझकी हुई और एकान्त मे क्यों रहती है ? जब से तू नौकर हुई है, ऐसी ही देखती हूँ! अपनी तकलीफ मुझ से तो कह प्यारी साकी!"

इतना कहकर सलीमा ने उसके पास खिसककर उसका हाथ पकड लिया।

बाँदी काँप गई, पर बोली नहीं।

सलीमा ने कहा—"कसमिया! तू अपना दर्द मुझसे कह, तू इतनी उदास क्यों रहती है ?"

बाँदी ने कम्पित स्वर से कहा—"हूजूर क्यों इतनी उदास रहती है ?"

सलीमा ने कहा—"इधर जहाँपनाह कुछ कम आने लगे हैं। इसी से तबीयत जरा उदास रहती है।"

बाँदी—"सरकार! प्यारी चीज न मिलने से इंसान को उदासी आ ही जाती है। अमीर और गरीब, सभी का दिल तो दिल ही है।"

सलीमा हँसी। उसने कहा—"समझी, तब तू किसी को चाहती है? मुझे उसका नाम बता, मैं उसके साथ तेरी शादी करा दूँगी"

साकी का सिर घूम गया। एकाएक उसने बेगम की आँखों से आँख मिलाकर कहा—"मैं आपको चाहती हूँ!"

सलीमा हँसते-हँसते लोट गई। उस मदमाती हँसी के वेग में उसने बाँदी का कम्पन नहीं देखा। बाँदी ने वंशी लेकर कहा—"क्या सुनाऊँ?"

बेगम ने कहा—"ठहर" कमरा बहुत गर्म मालूम देता है। इसके तमाम दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दे। चिरागों को बुझा दे, चटखती चाँदनी का लुत्फ उठाने दे, और वे फूल मालाएँ मेरे पास रख दे।"

बाँदी उठी। सलीमा बोली—"सुन, पहले एक ग्लास शरबत दे, बहुत प्यासी हूँ।"

बाँदी ने सोने के ग्लास में खुशबूदार शरबत बेगम के सामने ला धरा। बेगम ने कहा—"उफ् यह तो बहुत गर्म है। क्या इसमे गुलाब नहीं दिया?"

बाँदी ने नम्रता से कहा—"दिया तो है सरकार!"

"अच्छा इसमे थोडा सा इस्तम्बोल और मिला।"

साकी ग्लास लेकर दूसरे कमरे मे चली गई। इस्तम्बोल मिलाया, और भी एक चीज मिलाई। फिर वह सुवासित मदिरा का पात्र बेगम के सामने ला धरा।

एक ही सांस मे उसे पीकर बेगम ने कहा—"अच्छा, अब सुना। तूने कहा था कि तू मुझे प्यार करती है, सुना, कोई प्यार का गाना सुना।"

इतना कह और ग्लास को गलीचे पर लुढकाकर मदमाती सलीमा उस कोमल मखमली मसनद पर खुद भी लुढक गई, और रस-भरे नेत्रो से साकी की ओर देखने लगी। साकी ने वशी का सुर मिलाकर गाना शुरू किया—

"दुखवा मै कासे कहूँ मोरी सजनी..."

बहुत देर तक साकी की वशी और कण्ठ-ध्वनि कमरे मे घूम-घूमकर रोती रही। धीरे-धीरे साकी खुद रोने लगी। साकी मदिरा और यौवन के नशे मे चूर होकर झूमने लगी।

गीत खतम करके साकी ने देखा, सलीमा बेसुध पडी है। शराब की तेजी से उसके गाल एकदम सुर्ख हो गये है, और ताम्बूल-राग-रञ्जित होंठ रह-रहकर फड़क रहे है। साँस की सुगन्ध से कमरा महक रहा है। जैसे मन्द-पवन से कोमल पत्ती काँपने लगती है, उसी प्रकार सलीमा का वक्षःस्थल धीरे-धीरे काँप रहा है। प्रस्वेद की बूँदे ललाट पर दीपक के उज्ज्वल प्रकाश मे, मोतियों की तरह चमक रही हैं।

वशी रखकर साकी क्षण-भर बेगम के पास आकर खड़ी हुई। उसका शरीर काँपा, आँखें जलने लगी, कण्ठ सूख गया। वह घुटने के बल बैठकर बहुत धीरे-धीरे अपने आँचल से बेगम के मुख का पसीना पोंछने लगी। इसके बाद उसने झुककर बेगम का मुँह चूम लिया।

इसके बाद ज्योंही उसने अचानक आँख उठाकर देखा, खुद दीन-दुनिया के मालिक शाहजहाँ खड़े उसकी यह करतूत अचरज और क्रोध से देख रहे हैं।

साकी को साँप डस गया। वह हत-बुद्धि की तरह बादशाह का मुँह ताकने लगी। बादशाह ने कहा—"तू कौन है? और यह क्या कर रही थी?"

साकी चुप खड़ी रही। बादशाह ने कहा—"जवाब दे।"

साकी ने धीमे स्वर में कहा—"जहाँपनाह! कनीज़ अगर कुछ जवाब न दे, तो?"

बादशाह सन्नाटे में आ गये। बाँदी की इतनी स्पर्धा!

उन्होंने कहा—"मेरी बात का जवाब नहीं? अच्छा तुझे नंगी करके कोड़े लगाए जाँयगे!"

साकी ने कम्पित स्वर में कहा—"मैं मर्द हूँ!"

बादशाह की आँखों में सरसों फूल उठी, उन्होंने अग्नि-मय नत्रों से सलीमा की ओर देखा। वह बेसुध पड़ी सो रही थी। उसी तरह उसका भरा यौवन खुला पड़ा था। उनके मुँह से निकला—"उफ फाहशा!" और तत्काल उनका हाथ तलवार की मूठ पर

गया। फिर नीचे को उन्होंने घूमकर कहा—"दोज़ख के कुत्ते! तेरी यह मजाल!"

फिर कठोर स्वर से पुकारा—"मादूम!"

क्षण-भर मे एक भयकर रूपवाली तातारी औरत बादशाह के सामने अदब से आ खडी हुई। बादशाह ने हुक्म दिया—"इस मर्दूद को तहखाने मे डाल दे, ताकि बिना खाए-पिए मर जाय।"

मादूम ने अपने कर्कश हाथो मे युवक का हाथ पकडा, और ले चली। थोडी देर मे दोनों एक लोहे के मज़बूत दरवाज़े के पास आ खड़े हुए। तातारी बाँदी ने चाभी निकाल दरवाजा खोला, और कैदी को भीतर ढकेल दिया। कोठरी की गच कैदी का बोझ ऊपर पडते ही काँपती हुई नीचे को धसकने लगी!

(२)

प्रभात हुआ। सलीमा की बेहोशी दूर हुई। चौंककर उठ बैठी। बाल संवारे, ओढ़नी ठीक की, और चोली के बटन कसने को आईने के सामने जा खडी हुई। खिडकियाँ बन्द थी। सलीमा ने पुकारा—"साकी! प्यारी साकी! बडी गर्मी है, ज़रा खिडकी तो खोल दो। निगोडी नींद ने तो आज ग़ज़ब ढा दिया। शराब कुछ तेज़ थी।"

किसी ने सलीमा की बात न सुनी। सलीमा ने ज़रा ज़ोर से पुकारा—"साकी!"

जवाब न पाकर सलीमा हैरान हुई। वह खुद खिड़की खोलने

लगी। मगर खिडकियाँ बाहर से बन्द थी। सलीमा ने विस्मय से मन-ही-मन कहा—"क्या बात है ? लौडियाँ सब क्या हुई ?"

वह द्वार की तरफ चली। देखा, एक तातारी बाँदी नगी तलवार लिए पहरे पर मुस्तैद खडी है। बेगम को देखते ही उसने सिर झुका लिया।

सलीमा ने क्रोध से कहा—"तुम लोग यहाँ क्यों हो ?"

"बादशाह के हुक्म से।"

"क्या बादशाह आ गये ?"

"जी हाँ।"

"मुझे इत्तिला क्यों नही की ?"

"हुक्म नही था।"

"बादशाह कहाँ है ?"

"जीनतमहल के दौलतखाने मे।"

सलीमा के मन मे अभिमान हुआ। उसने कहा—

"ठीक है, खुबसूरती की हाट मे जिनका कारबार है, वे मुहब्बत को क्या समझेंगे ? तो अब जीनतमहल की किस्मत खुली ?"

तातारी स्त्री चुपचाप खडी रही। सलीमा फिर बोली—"मेरी साकी कहाँ है ?"

"कैद मे।"

"क्यों ?"

"जहाँपनाह का हुक्म।"

"उसका कुसूर क्या था !"

"मै अर्ज नहीं कर सकती।"

"कैदखाने की चाभी मुझे दे, मै अभी उसे छुडाती हूँ।"

"आपको अपने कमरे से बाहर जाने का हुक्म नहीं है।"

"तब क्या मैं भी कैद हूँ ?"

"जी हाँ।"

सलीमा की आँखों मे आँसू भर आए। वह लौटकर मसनद पर पड गई, और फूट-फूट कर रोने लगी, कुछ ठहरकर उसने एक खत लिखा—

"हुजूर! मेरा कुसूर माफ फर्मावे। दिन भर की थकी होने से ऐसी बेसुध सो गई कि हुजूर के इस्तकबाल मे हाजिर न रह सकी। और, मेरी उस प्यारी लौंड़ी की भी जॉ-बख्शी की जाय। उसने हुजूर के दौलतखाने मे लौट आने की इत्तिला मुझे वाजिबी तौर पर न देकर बेशक भारी कुसूर किया है, मगर वह नई, कमसिन, गरीब और दुखिया है।

कनीज

सलीमा"

चिट्ठी बादशाह के पास भेज दी गई। बादशाह की तबीयत बहुत ही नासाज थी। तमाम हिन्दुस्तान के बादशाह की औरत फाहशा निकले! बादशाह अपनी आँखों से परपुरुष को उसका मुँह चूमते देख चुके थे! वह गुस्से से तलमला रहे थे, और ग़म गलत करने को अन्धाधुन्ध शराब पी रहे थे। जीनतमहल मौका

देखकर सौतिया डाह का बुखार निकाल रही थी। तातारी बाँदी को देखकर बादशाह ने आग होकर कहा—"क्या लाई है ?"

बाँदी ने दस्तबस्ता अर्ज की—"खुदाबंद ! सलीमा बीबी की अर्जी है।"

इतना कहकर उसने सामने खत रख दिया।

बादशाह ने गुस्से से होंठ चबाकर कहा—"उससे कह दे कि मरजाय।" इसके बाद खत में एक ठोकर मारकर उन्होंने उधर से मुँह फेर लिया।

बाँदी लौट आई। बादशाह का जवाब सुनकर सलीमा धरती पर बैठ गई। उसने बाँदी को बाहर जाने का हुक्म दिया, और दरवाजा बन्द करके फूट-फूट कर रोई घंटों बीत गए, दिन छिपने लगा। सलीमा ने कहा—"हाय ! बादशाहों की बेगम होना भी क्या बदनसीबी है ! इन्तजारी करते-करते आँख फूट जायँ, मिन्नतें करते-करते ज़बान घिस जाय, अदब करते-करते जिस्म टुकड़े-टुकड़े हो जाय, फिर भी इतनी-सी बात पर कि मैं ज़रा सो गई, उनके आने पर जाग न सकी, इतनी सजा ? इतनी बेइज्ज़ती ?

तब मैं बेगम क्या हुई ? ज़ीनत और बाँदियाँ सुनेंगी, तो क्या कहेंगी ? इस बेइज्ज़ती के बाद मुँह दिखाने लायक कहाँ रही ? अब तो मरना ही ठीक है। अफसोस ! मैं किसी ग़रीब किसान की औरत क्यों न हुई !"

धीरे-धीरे स्त्रीत्व का तेज उसकी आत्मा में उदय हुआ। गर्व

और दृढ़ प्रतिज्ञा के चिह्न उसके नेत्रों मे छा गए। वह साँपिन की तरह चपेट खाकर उठ खडी हुई। उसने एक और खत लिखा—

"दुनिया के मालिक! आपकी बीबी और कनीज़ होने की वजह से मै आपके हुक्म को मानकर मरती हूँ। इतनी बेइज्ज़ती पाकर एक मलिका का मरना ही मुनासिब भी है। मगर इतने बडे बादशाह को औरतों को इस कदर नाचीज़ तो न समझना चाहिए कि एक अदना सी बेवकूफी की इतनी बडी सज़ा दी जाय। मेरा कुसुर सिर्फ इतना ही था कि मै बेखबर सो गई थी। खैर, सिर्फ एक बार हुज़ूर को देखने की ख्वाहिश लेकर मरती हूँ। मैं उस पाक परवरदिगार के पास जाकर अर्ज़ करूँगी कि वह मेरे शौहर को सलामत रक्खे।

सलीमा"

खत को इत्र से सुवासित करके ताजे फूलों के एक गुलदस्ते मे इस तरह रख दिया कि जिससे किसी की उस पर फौरन ही नज़र पड जाय। इसके बाद उसने जवाहरात की पेटी से एक बहुमूल्य अँगूठी निकाली, और कुछ देर तक आँख गडा-गडाकर उसे देखती रही। फिर उसे चाट गई!

(३)

बादशाह शाम की हवाख़ोरी को नज़र-बाग मे टहल रहे थे। दो-तीन खोजे घबराए हुए आए, और चिट्ठी पेश करके अर्ज की—"हुज़ूर, ग़ज़ब हो गया! सलीमा बीबी ने ज़हर खा लिया है, और वह मर रही है।"

क्षण-भर मे बादशाह ने खत पढ लिया। झपटे हुए सलीमा के महल मे पहुँचे। प्यारी दुलहिन सलीमा ज़मीन मे पड़ी है। आँखे ललाट पर चढ गई है। रग कोयले के समान हो गया है। बादशाह से रहा न गया। उन्होंने घबराकर कहा—'हकीम' हकीम को बुलाओ ! कई आदमी दौडे।"

बादशाह का शब्द सुनकर सलीमा ने उनकी तरफ देखा, और धीमे स्वर मे कहा—"जहे किस्मत !"

बादशाह ने नज़दीक बैठकर कहा—"सलीमा ! बादशाह की बेगम होकर क्या तुम्हे यही लाजिम था ?"

सलीमा ने कष्ट से कहा—"हुजूर मेरा कुसूर बहुत मामूली था"

बादशाह ने कडे स्वर मे कहा—"बदनसीब ! शाही जनानखाने में मर्द को भेष बदलकर रखना मामूली कुसूर समझती है ? कानों पर यकीन कभी न करता, मगर आँखों देखो को भी झूठ मान लूँ ?"

जैसे हजारों बिच्छुओं के एक साथ डक मारने से आदमी तड़पता है, उसी तरह तडपकर सलीमा ने कहा—"क्या ?"

बादशाह डरकर पीछे हट गए। उन्होंने कहा—"सच कहो, इस वक्त तुम खुदा की राह पर हो, यह जवान कौन था ?"

सलीमा ने अकचकाकर पूछा—"कौन जवान ?"

बादशाह ने गुस्से से कहा—"जिसे तुमने साकी बनाकर पास रक्खा था ?"

सलीमा ने घबराकर कहा—"हैं ! हैं क्या वह मर्द है ?"

बादशाह—"तो क्या तुम सचमुच यह बात नहीं जानतीं ?"

सलीमा के मुँह से निकला—"या खुदा !"

फिर उसके नेत्रों से आँसू बहने लगे। वह सब मामला समझ गई। कुछ देर बाद बोली—"खाविन्द ! तब तो कुछ शिकायत ही नहीं ; इस कुसूर की तो यही सजा मुनासिब थी। मेरी बदगुमानी माफ फरमाई जाय। मैं अल्लाह के नाम पर पड़ी कहती हूँ, मुझे इस बात का कुछ भी पता नही है।"

बादशाह का गला भर आया। उन्होंने कहा—"तो प्यारी सलीमा ! तुम बेकुसूर ही चली ?" बादशाह रोने लगे।

सलीमा ने उनका हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रखकर कहा—"मालिक मेरे ! जिसकी उम्मीद न थी, मरते वक्त वह मजा मिल गया। कहा-सुना माफ हो, और एक अर्ज लौंडी की मंजूर हो।"

बादशाह ने कहा—"जल्दी कहो सलीमा !"

सलीमा ने साहस से कहा—"उस जवान को माफ कर देना।"

इसके बाद सलीमा की आंखों से आँसू बह चले, और थोड़ी ही देर मे वह ठंडी हो गई !

बादशाह ने घुटनों के बल बैठकर उसका ललाट चूमा, और फिर बालक की तरह रोने लगे।

(४)

गजब के अँधेरे और सर्दी मे युवक भूखा-प्यासा पड़ा था। एकाएक घोर चीत्कार करके किवाडे खुले। प्रकाश के साथ ही

एक गम्भीर शब्द तहखाने मे भर गया—"बदनसीब नौजवान ! क्या होश-हवास मे है ?"

युवक ने तीव्र स्वर मे पूछा—"कौन ?"

जवाब मिला—"बादशाह"

युवक ने कुछ भी अदब किये बिना कहा—"यह जगह बादशाहों के लायक नहीं है—क्यों तशरीफ लाये है ?"

"तुम्हारी कैफियत नही सुनी थी, उसे सुनने आया हूँ।"

कुछ देर चुप रहकर युवक ने कहा—"सिर्फ सलीमा को झूठी बदनामी से बचाने के लिये कैफीय देता हूँ, सुनिए—सलीमा जब बच्ची थी, मै उसके बाप का नौकर था। तभी से मै उसे प्यार करता था। सलीमा भी प्यार करती थी, पर वह बचपन का प्यार था। उम्र होने पर सलीमा परदे मे रहने लगी, और फिर वह शाहंशाह की बेगम हुई। मगर मैं उसे भूल न सका। पाँच साल तक पागल की तरह भटकता रहा। अन्त मे भेप बदलकर बाँदी की नौकरी कर ली। सिर्फ उसे देखते रहने और खिदमत करके दिन गुजार देने का इरादा था। उस दिन उज्ज्वल चाँदनी, सुगन्धित पुष्पराशि, शराब की उत्तेजना और एकान्त ने मुझे बेबस कर दिया। उसके बाद मैने आँचल से उसके मुख का पसीना पोंछा, और मुँह चूम लिया। मै इतना ही खतावार हूँ। सलीमा इसकी बाबत कुछ नहीं जानती।"

बादशाह कुछ देर चुप-चाप खड़े रहे। इसके बाद वह बिना ही दरवाज़ा बन्द किए धीरे-धीरे चले गए।

(५)

सलीमा की मृत्यु को दस दिन बीत गए। बादशाह सलीमा के कमरे में ही दिन-रात रहते हैं। सामने नदी के उस पार, पेड़ों के झुरमुट में सलीमा की सफ़ेद कब्र बनी है। जिस खिड़की के पास सलीमा बैठी उस रात को बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थी, उसी खिड़की में, उसी चौकी पर बैठे हुए बादशाह उसी तरह सलीमा की कब्र दिन-रात देखा करते हैं। किसी को पास आने का हुक्म नहीं। जब आधी रात हो जाती है, तो उस गम्भीर रात्रि के सन्नाटे में एक मर्म-भेदिनी गीत-ध्वनि उठ खड़ी होती है। बादशाह साफ़ साफ़ सुनते हैं, कोई करुण-कोमल स्वर में गा रहा है—

"दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी ?"

———

४—श्रीप्रेमचन्द

आप काशी के रहने वाले है। आपने कानपुर के उर्दू-पत्र "ज़माना" मे लेख लिखना शुरू किया। आपकी "प्रेम-पच्चीसी" और "सोज़ेवतन" यह दोनों प्रथम ज़माना ही से प्रकाशित हुई। सन् १९१४ से आप हिन्दी मे लिख रहे है। आपके कई उपन्यास "सेवा-सदन", "वरदान", "काया-कल्प", "प्रेमाश्रम", "रग-भूमि", "प्रतिज्ञा" तथा "गबन" आदि प्रसिद्ध हो चुके है। आपकी कहानियों के कई सग्रह निकल चुके हैं—"प्रेम-प्रतिमा", "प्रेम-पूर्णिमा", "प्रेम-पच्चीसी", "प्रेम-प्रसून", "प्रेमतीर्थ" "सप्त-सरोज", "नव-निधि" "पाँच फूल", "सप्त सुमन", "प्रेम कुज" आदि। आपकी दो-चार गल्पों के अनुवाद जापानी तथा अग्रेजी भाषा मे भी निकल चुके है। आप 'माधुरी' के सयुक्तसम्पादक तो वर्षों रहे ही है, इधर 'हस' का सम्पादन भी बडी ही योग्यता से कर रहे है। (रामदासगौड)

(१) शतरंज के खिलाड़ी

(१)

जिद्‌अली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रग मे डूबा हुआ था। छोटे-बडे, अमीर-गरीब सभी विलासिता मे डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफीम की पीनक ही के मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग मे, साहित्य-क्षेत्र मे, सामाजिक व्यवस्था मे, कला-कौशल मे, उद्योग-धन्धों मे, आहार-व्यवहार मे सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राज-कर्मचारी विषय-वासना मे, कवि-गण प्रेम और विरह के वर्णन मे, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने मे, व्यवसायी सुरमे, इत्र, मिस्सी और उबटन का रोजगार करने मे, लिप्त थे। सभी की आँखों मे विलासिता का मद छाया हुआ था। ससार मे क्या हो रहा है, इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड रहे है, तीतरों की लडाई के लिये पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी हुई है; पौ-बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरज

चाकर तक नित्य द्वेष-पूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे—बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। खुदा न करे, किसी को इसकी चाट पडे, आदमी दीन दुनिया किसी के काम का नही रहता। न घर का न घाट का। बुरा रोग है। यहाँ तक कि मिरज़ा की बेगम साहब को इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज-खोज कर पति को लताड़ती थी; पर उन्हे इसका अवसर मुश्किल से मिलता था। वह सोती ही रहती थी, तब तक उधर बाज़ी बिछ जाती थी। और रात को जब सो जाती थी, तब कही मिरज़ाजी घर मे आते थे। हाँ नौकरों पर वह अपना गुस्सा उतारती रहती थी—क्या पान माँगे है? कह दो आकर ले जायँ। खाने की फ़ुरसत नही है? ले जाकर खाना सिर पर पटक दो, खायें चाहे कुत्ते को खिलावें। पर दूबदू वह भी कुछ न कह सकती थीं। उनको अपने पति से उतना मलाल न था, जितना मीरसाहब से। उन्होंने उनका नाम मीर बिगाड़ू रख छोडा था। शायद मिरज़ाजी अपनी सफाई देने के लिए सारा इलज़ाम मीरसाहब ही के सिर थोप देते थे।

एक दिन बेगम साहबा के सिर मे दर्द होने लगा। उन्होंने लौंडी से कहा—जाकर मिरज़ासाहब को बुला ला। किसी हकीम के यहाँ से दवा लावे। दौड़ जल्दी कर। लौंडी गई, तो मिरज़ाजी ने कहा—चल अभी आते है। बेगम साहबा का मिज़ाज गरम था। इतनी ताब कहाँ कि उनके सिर मे दर्द हो, और पति शतरज खेलता रहे। चेहरा सुर्ख हो गया। लौंडी से कहा—जाकर

कह, अभी चलिए, नहीं तो वह आपही हकीम के यहाँ चली जायँगी।

मिरजाजी बडी दिल-चस्पी बाजी खेल रहे थे, दो ही किस्तों मे मिरसाहब को मात हुई जाती थी। झुँझलाकर बोले—क्या ऐसे दम लबों पर है? जरा सब्र नही होता?

मीर—अरे तो जाकर सुन ही आइए न। औरते नाजुक-मिजाज होती ही है।

मिरजा—जी हॉ, चला क्यो न जाऊ! दो किस्तो मे आपको मात होती है।

मीर—जनाब इस भरोसे न रहियेगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहे और मात हो जाय; पर जाइये सुन आइए। क्यों खामख्वाह उनका दिल दुखाइएगा?

मिरजा—इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर—मै खोलूगा ही नही। आप जाकर सुन आइए।

मिरजा—अरे यार, जाना पडेगा हकीम के यहाँ। सिर-दर्द खाक नही है; मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर—कुछ ही हो, उनकी खातिर तो करनी ही पड़ेगी।

मिरजा—अच्छा, एक चाल और चल लूँ।

मीर—हरगिज नही, जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरे मे हाथ ही न लगाऊँगा।

मीरजा साहब मजबूर होकर अन्दर गये, तो बेगम साहबा ने त्यौरियाँ बदल कर; लेकिन कराहते हुए कहा—तुम्हे निगोड़ी शत-

रज इतनी प्यारी है! चाहे कोई मर ही जाय, पर उठने का नाम नहीं लेते! नौज कोई तुम-जैसा आदमी हो!

मिरजा—क्या कहूँ, मीरसाहब मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से पीछा छुडाकर आया हूँ।

बेगम—क्या जैसे वह खुद निखट्टू है, वैसे ही सबको समझते है? उनके भी तो बाल-बच्चे है, या सबका सफाया कर डाला?

मिरजा—बड़ा लती आदमी है। जब आ जाता है, तब मजबूर होकर मुझे भी खेलना ही पडता है।

बेगम—दुत्कार क्यों नहीं देते?

मिरजा—बराबर के आदमी है, उम्र मे, दर्जे मे मुझसे दो अङ्गुल ऊँचे। मुलाहिजा करना ही पडता है।

बेगम—तो मै ही दुत्कारे देती हूँ। नाराज हो जायँगे, हो जायँ। कौन किसी की रोटियाँ चला देता है। रानी रूठेगी, अपना सुहाग लेगी।—हिरिया, जा, बाहर से शतरंज उठा ला। मीर साहब से कहना, मियाँ अब न खेलेगे, आप तशरीफ ले जाइये।

मिरजा—हाँ हाँ, कहीं ऐसा ग़जब भी न करना! जलील कराना चाहती हो क्या!—ठहर हिरिया, कहाँ जाती है।

बेगम—जाने क्यों नहीं देते! मेरा ही खून पिये, जो उसे रोके। अच्छा, उसे रोका, मुझे रोको तो जानूँ!

यह कहकर बेगम साहबा झल्लाई हुई दीवानखाने की तरफ चलीं। मिरजा बेचारे का रग उड गया। बीवी की मिन्नते करने लगे—खुदा के लिए, तुम्हे हजरत हुसेन की कसम है। मेरी ही

मैयत देखे, जो उधर जाय; लेकिन बेगम ने एक न मानी। दीवानख़ाने के द्वार तक गईं, पर एकाएक पर पुरुष के सामने जाते हुए पाँव बँध-से गये। भीतर झाँका। सयोग से कमरा ख़ाली था। मीरसाहब ने दो-एक मुहरे इधर-उधर कर दिए थे, और अपनी सफाई जताने के लिए बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, बेगम ने अन्दर पहुँचकर बाज़ी उलट दी, मुहरे कुछ तख्त के नीचे फेंक दिए, कुछ बाहर और किवाडे अन्दर से बन्द करके कुडी लगा दी। मीरसाहब दरवाजे पर थे ही, मुहरे बाहर फेंके जाते देखे, चूडियों की झनक कान मे पडी। फिर दरवाजा बन्द हुआ, तो समझ गए, बेगम साहबा बिगड गईं। चुपके से घर की राह ली।

मिरजा ने कहा—तुमने ग़ज़ब किया!

बेगम—अब मीरसाहब इधर आये, तो खड़े-खड़े निकलवा दूँगी। इतनी लौ खुदा से लगाते, तो वली हो जाते। आप तो शतरंज खेलें, और मैं यहाँ चूल्हे-चक्की की फिक्र मे सिर खपाऊँ! ले जाते हो हकीम साहब के यहाँ कि अब भी ताम्मुल है?

मिरजा घर से निकले, तो हकीम के घर जाने के बदले मीर साहब के घर पहुँचे, और सारा वृत्तान्त कहा। मीरसाहब बोले—मैंने तो जब मुहरे बाहर आते देखे, तभी ताड़ गया। फौरन् भागा। बडी गुस्सेवर मालूम होती है; मगर आपने उन्हे यों सिर चढ़ा रक्खा है, यह मुनासिब नहीं। उन्हें इससे क्या मतलब कि आप बाहर क्या करते हैं। इन्तज़ाम करना उनका काम है, दूसरी बातों से उन्हे क्या सरोकार?

मिरजा—खैर, यह तो बताइए, अब कहाँ जमाव होगा ?

मीर—इसका क्या गम है। इतना बडा घर पड़ा हुआ है। बस, यही जमे।

मिरजा—लेकिन बेगम साहबा को कैसे मनाऊँगा ? जब घर पर बैठा रहता था, तब तो वह इतना बिगडती थी, यहाँ बैठक होगी, तो शायद जिन्दा न छोड़ेगी।

मीर—अजी बकने भी दीजिए, दो-चार रोज मे आप ही ठीक हो जायँगी। हाँ, आप इतना कीजिए कि आज से जरा तन जाइए।

(२)

मीरसाहब की बेगम किसी अज्ञात कारण से मीरसाहब का घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थी, इसलिए वह उनके शतरज-प्रेम की कभी आलोचना न करती थीं; बल्कि कभी-कभी मीरसाहब को देर हो जाती, तो याद दिला देती थी। इन कारणों से मीरसाहब को भ्रम हो गया था, कि मेरी स्त्री अत्यत विनयशील और गम्भीर है, लेकिन जब दीवानखाने मे बिसात बिछने लगी, और मीरसाहब दिन-भर घर मे रहने लगे, तो बेगम साहबा को बडा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता मे बाधा पड गई। दिन-भर दरवाजे पर झाँकने को तरस जातीं।

उधर नौकरों मे भी कानाफूसी होने लगी। अब तक दिन-भर पड़े-पड़े मक्खियाँ मारा करते थे। घर मे कोई आवे, कोई जाय, उनसे कुछ मतलब न था। अब आठों पहर की धौंस हो गई।

कभी पान लाने का हुक्म होता। कभी मिठाई का। और, हुक्का तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति जलता ही रहता था। वे बेगम साहबा से जा-जाकर कहते—हुजूर, मियाँ की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई! दिन-भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गये। यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे तो शाम कर दी! घड़ी-आध-घड़ी दिल-बहलाव के लिए खेल लेना बहुत है। खैर, हमें तो कोई शिकायत नहीं, हुजूर के गुलाम हैं, जो हुक्म होगा, बजा ही लावेंगे, मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलनेवाला कभी पनपता नहीं, घर पर कोई न कोई आफ़त ज़रूर आती है। यहाँ तक कि एक के पीछे महल्ले के महल्ले तबाह होते देखे गये हैं। सारे महल्ले में यही चरचा होती रहती है। हुजूर का नमक खाते हैं, अपने आका की बुराई सुन-सुनकर रंज होता है, मगर क्या करें। इस पर बेगम साहबा कहतीं—मैं तो खुद इसको पसन्द नहीं करती, पर वह किसी की सुनते ही नहीं, तो क्या किया जाय।

महल्ले में भी जो दो-चार पुराने ज़माने के लोग थे, वे आपस में भाँति-भाँति के अमङ्गल की कल्पनाएँ करने लगे—अब खैरियत नहीं है। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का खुदा ही हाफ़िज़ है। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी। आसार बुरे हैं।

राज्य में हाहाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन-दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फरियाद सुननेवाला न था। देहातों की सारी

दौलत लखनऊ मे खिची आती थी, और वह वेश्याओं मे, भाँडों मे, और विलासिता के अन्य अङ्गों की पूर्ति मे उड जाती थी। अँगरेज़-कम्पनी का ऋण दिन-दिन बढ़ता जाता था। कमली दिन-दिन भीगकर भारी होती जाती थी। देश मैं सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था। रेजीडेंट बार-बार चेतावनी देता था, पर यहाँ तो लोग विलासिता के नशे मे चूर थे, किसी के कानों पर जूँ न रेगती थी।

खैर, मीरसाहब के दीवानखाने मे शतरज होते कई महीने गुजर गये। नये-नये नक्शे हल किये जाते, नये-नये किले बनाये जाते, नित्य नई व्यूह-रचना होती, कभी-कभी खेलते-खेलते झोड हो जाती, तू-तू मैं-मैं तक की नौबत आ जाती, पर शीघ्र ही दोनों मित्रों मे मेल हो जाता। कभी-कभी ऐसा भी होता, कि बाज़ी उठा दी जाती, मिरजा जी रूठकर अपने घर चले आते। मीरसाहब अपने घर मे जा बैठते, पर रात-भर की निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शान्त हो जाता था। प्रातःकाल दोनों मित्र दीवानखाने मे आ पहुँचते थे।

एक दिन दोनों मित्र बैठे हुए शतरज के दल-दल मे गोते खा रहे थे कि इतने मे घोडे पर सवार एक बादशाही फौज का अफसर मीरसाहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा! मीरसाहब के होश उड गये! यह क्या बला सिर पर आई! यह तलबी किस लिए हुई है! अब खैरियत नहीं नज़र आती! घर के दरवाज़े बन्द कर लिये। नौकरों से बोले—कह दो, घर मे नहीं हैं।

सवार—घर मे नहीं, तो कहाँ है ?

नौकर—यह मै नही जानता। क्या काम है ?

सवार—काम तुझे क्या बतलाऊँ ? हुजूर मे तलबी है—शायद फौज के लिए कुछ सिपाही माँगे गये है। जागीरदार है कि दिल्लगी ! मोरचे पर जाना पडेगा, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा !

नौकर—अच्छा, तो जाइए, कह दिया जायगा।

सवार—कहने की बात नही है। मै कल खुद आऊँगा, साथ ले जाने का हुक्म हुआ है।

सवार चला गया। मीरसाहब की आत्मा काँप उठी। मिरजाजी से बोले—कहिए जनाब अब क्या होगा ?

मिरजा—बडी मुसीबत है कही मेरी तलबी भी न हो।

मीर—कम्बख्त कल फिर आने को कह गया है।

मिरजा—आफत है और क्या ! कही मोरचे पर जाना पडा तो बे-मौत मरे।

मीर—बस, यही एक तदबीर है कि घर पर मिलो ही नही। कल से गोमती पर कहीं वीराने मे नक्शा जमे। वहाँ किसे ख़बर होगी। हज़रत आकर आप लौट जाँयगे।

मिरजा—वल्लाह, आपको खूब सूझी ! इसके सिवा और कोई तदबीर ही नही है।

इधर मीरसाहब की बेगम उस सवार से कह रही थीं, तुमने खूब धता बताई। उसने जवाब दिया—ऐसे गावदियों को तो

चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अक्ल और हिम्मत तो शतरज ने चर ली। अब भूलकर भी घर पर न रहेंगे।

(३)

दूसरे दिन से दोनों मित्र मुँह-अँधेरे घर से निकल खडे होते। बग़ल मे एक छोटी-सी दरी दबाये, डिब्बे मे गिलौरियाँ भरे, गोमती-पार की एक पुरानी वीरान मसजिद मे चले जाते, जिसे शायद नवाब आसफउद्दौला ने बनवाया था। रास्ते मे तम्बाकू, चिलम और मदरिया ले लेते और मसजिद मे पहुँच, दरी बिछा, हुक्का भरकर शतरज खेलने बैठ जाते थे। फिर उन्हे दीन-दुनिया की फ़िक्र न रहती थी। किश्त, शह आदि दो-एक शब्दों के सिवा उनके मुँह से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि मे इतना एकाग्र न होता होगा। दोपहर को जब भूख मालूम होती, तो दोनों मित्र किसी नानबाई की दूकान पर जाकर खाना खा आते, और एक चिलम हुक्का पीकर फिर सग्राम-क्षेत्र मे डट जाते। कभी-कभी तो उन्हे भोजन का भी ख्याल न रहता था।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। कम्पनी की फौजे लखनऊ की तरफ बढी चली आती थी। शहर मे हल-चल मची हुई थी। लोग बाल-बच्चों को ले-लेकर देहातों मे भाग रहे थे; पर हमारे दोनों खिलाडियों को इसकी ज़रा भी फ़िक्र न थी। वे घर से आते, तो गलियों में होकर। डर था, कि कहीं किसी बादशाही मुलाज़िम की निगाह न पड़ जाय, जो

बेगार मे पकड जायँ। हज़ारों रुपये सालाना की जागीर मुफ्त ही मे हज़म करना चाहते थे।

एक दिन दोनों मित्र मसजिद के खँडहर मे बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे। मिरजा की बाज़ी कुछ कमज़ोर थी। मीरसाहब उन्हें किश्त-पर-किश्त दे रहे थे। इतने मे कम्पनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिये। यह गोरों की फौज थी, जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिये आ रही थी।

मीरसाहब बोले—अँगरेज़ी फौज आ रही है, खुदा खैर करे।

मिरजा—आने दीजिये, किश्त बचाइये। यह किश्त!

मीर—ज़रा देखना चाहिए, यही आड मे खडे हो जायें।

मिरजा—देख लीजियेगा, जल्दी क्या है, किश्त!

मीर—तोपखाना भी है। कोई पॉच हज़ार आदमी होंगे। कैसे-कैसे जवान है! लाल बन्दरों के-से मुँह। सूरत देखकर ख़ौफ मालूम होता है।

मिरजा—जनाब, हीले न कीजिये। ये चकमे किसी और को दीजियेगा, यह किश्त!

मीर—आप भी अजीब आदमी है। यहॉ तो शहर पर आफत आई हुई है, और आपको किश्त की सूझी है! कुछ इसकी भी ख़बर है, कि शहर घिर गया, तो घर कैसे चलेंगे?

मिरजा—जब घर चलने का वक्त आएगा, तो देखी जायगी—यह किश्त! बस, अबकी शह मे मात है।

फौज निकल गई। दस बजे का समय था। फिर बाज़ी बिछ गई।

मिरजा बोले—आज खाने की कैसे ठहरेगी ?

मीर—अजी, आज तो रोजा है। क्या आपको ज्यादा भूख मालूम होती है ?

मिरजा—जी नहीं। शहर मे न-जाने क्या हो रहा है।

मीर—शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना-खा-कर आराम से सो रहे होंगे। हुजूर नवाबसाहब भी ऐशगाह मे होंगे।

दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे, तो तीन बज गये। अबकी मिरजाजी की बाजी कमजोर थी। चार का गजर बज ही रहा था कि फौज का वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली पकड लिए गये थे, और सेना उन्हे किसी अज्ञात स्थान को लिये जा रही थी। शहर मे न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूँद भी खून नहीं गिरा था। आजतक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शान्ति से, इस तरह खून बहे बिना, न हुई होगी। यह वह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं यह वह कायरपन था, जिस पर बडे-से-बडे कायर भी आँसू बहाते है। अवध के विशाल देश का नवाब बन्दी बना चला जाता था, और लखनऊ ऐश की नीद मे मस्त था। यह राजनीतिक अध:पतन की चरम सीमा थी।

मिरजा ने कहा—हुजूर नवाबसाहब को जालिमों ने कैद कर लिया है।

मीर—होगा, यह लीजिये शह !

मिरजा—जनाब, जरा ठहरिए। इस वक्त इधर तबीयत

नहीं लगती। बेचारे नवाबसाहब इस वक्त खून के आँसू रो रहे होंगे।

मीर—रोया ही चाहे। यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा—यह किश्त!

मिरजा—किसी के दिन बराबर नहीं जाते। कितनी दर्दनाक हालत है।

मीर—हाँ सो तो है ही—यह लो फिर किश्त! बस, अबकी किश्त मे मात है, बच नही सकते।

मिरजा—खुदा की कसम, आप बडे बेदर्द है। इतना बड़ा हादसा देखकर भी आपको दुःख नहीं होता। हाय, ग़रीब वाजिदअली शाह!

मीर—पहले अपने बादशाह को तो बचाइए, फिर नवाब-साहब का मातम कीजिएगा। यह किश्त और मात! लाना हाथ!

बादशाह को लिये हुए सेना सामने से निकल गई! उनके जाते ही मिरजा ने फिर बाजी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा—आइये, नवाबसाहब के मातम में एक मरसिया कह डाले, लेकिन मिरजा की राज-भक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिये अधीर हो रहे थे।

(४)

शाम हो गई। खँडहर में चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया।

अबाबीले आ आकर अपने-अपने घोसलों मे चिमटी। पर दोनों खिलाडी डटे हुए थे, मानों दो खून के प्यासे सूरमा आपस मे लड़ रहे हों। मिरजा जी तीन बाजियाँ लगातार हार चुके थे; इस चौथी बाज़ी का रग भी अच्छा न था। वह बार-बार जीतने का दृढ निश्चय करके सँभालकर खेलते थे, लेकिन एक-न-एक चाल ऐसी बेढब आ पडती थी, जिससे बाजी खराब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और भी उग्र होती जाती थी। उधर मीर साहब मारे उमग के गज़ले गाते थे, चुटकियाँ लेते थे, मानो कोई गुप्त धन पा गये हों। मिरजाजी सुन-सुनकर झुँझलाते और हार की झेंप मिटाने के लिए उनकी दाद देते थे; पर ज्यों-ज्यों बाज़ी कमज़ोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकला जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुँझलाने लगे—जनाब, आप चाल न बदला कीजिए। यह क्या कि एक चाल चले, और फिर उसे बदल दिया। जो कुछ चलना हो, एक बार चल लीजिए। यह आप मुहरे पर हाथ क्यों रखे रहते है? मुहरे को छोड़ दीजिए। जब तक आपको चाल न सूझे, मुहरा छूइए ही नही। आप एक-एक चाल आध-आध घटे मे चलते है। इसकी सनद नही। जिसे एक चाल चलने मे पाँच मिनट से ज्यादा लगे, उसको मात समझी जाय। फिर आपने चाल बदली! चुपके से मुहरा वही रख दीजिए।

मीर साहब का फरजी पिटता था। बोले—मैंने चाल चली ही कब थी?

मिरज़ा—आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहीं रख दीजिए—उसी घर मे।

मीर—उस घर मे क्यों रक्खूँ? मैने हाथ से मुहरा छोडा ही कब था?

मिरज़ा—मुहरा आप क़यामत तक न छोडे, तो क्या चाल ही न होगी? फ़रज़ी पिटते देखा, तो धाँधली करने लगे।

मीर—धाँधली आप करते है। हार-जीत तक़दीर से होती है, धाँधली करने से कोई नही जीतता?

मिरज़ा—तो इस बाजी मे आपको मात हो गई।

मीर—मुझे क्यों मात होने लगी?

मिरज़ा—तो आप मुहरा उसी घर मे रख दीजिए, जहाँ पहले रक्खा था।

मीर—वहाँ क्यों रक्खूँ? नही रखता।

मिरज़ा—क्यों न रखिएगा? आपको रखना होगा।

तकरार बढने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अडे थे। न यह दबता था, न वह। अप्रासगिक बाते होने लगीं। मिरज़ा बोले—किसी ने खानदान मे शतरज खेली होती, तब तो इसके कायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किये आप शतरंज क्या खेलिएगा। रियासत और ही चीज़ है। जागीर मिल जाने से ही कोई रईस नहीं हो जाता।

मीर—क्या! घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे। यहाँ तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आ रहे है।

मिरजा—अजी, जाइए भी, गाजिउद्दीन हैदर के यहाँ बावरची का काम करते-करते उम्र गुजर गई, आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नही है।

मीर—क्यों अपने बुजर्गों के मुँह कालिख लगाते हो—वे ही बावरची का काम करते होंगे। यहाँ तो हमेशा बादशाह के दस्तरख्वान पर खाना खाते चले आये है।

मिरजा—अरे चल चरकटे, बहुत बढ-बढ़कर बाते न कर।

मीर—जबान सभालिये, वरना बुरा होगा। मै ऐसी बाते सुनने का आदी नहीं हूँ। यहाँ तो किसी ने आँखे दिखाई कि उसकी आँखे निकालीं। है हौसला ?

मिरजा—आप मेरा हौसला देखना चाहते है, तो फिर आइए, आज दो-दो हाथ हो जाय, इधर या उधर।

मीर—तो यहाँ तुमसे दबनेवाला कौन है ?

दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारे निकाल लीं। नवाबी जमाना था, सभी तलवार, पेशकब्ज, कटार वगैरह बाँधते थे। दोनों विलासी थे, पर कायर न थे। उनमे राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था—बादशाह के लिए, बादशाहत के लिए क्यों मरे, पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों ने पैतरे बदले, तलवारे चमकीं, छपाछप की आवाजे आई। दोनों जख्म खाकर गिरे, और दोनों ने वहीं तड़प-तड़प कर जाने दे दीं। अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखों से एक बूँद आँसू न निकला, उन्हीं दोनों प्राणियों ने शतरज के वजीर की रक्षा मे प्राण दे दिये।

अँधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे हुए मानो इन दोनों वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे।

चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। खंडहर की टूटी हुई मेहराबें, गिरी हुई दीवारें और धूल-धूसरित मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थीं।

(२) कामना-तरु

---

(१)

जा इद्रनाथ का देहान्त हो जाने के बाद, कुँअर राजनाथ को शत्रुओं ने चारों ओर से ऐसा दबाया, कि उन्हे अपने प्राण लेकर एक पुराने सेवक की शरण जाना पड़ा, जो एक छोटे-से गाँव का जागीरदार था। कुँअर स्वभाव ही से शांति-प्रिय, रसिक, हँस-खेलकर समय काटनेवाले युवक थे। रण-क्षेत्र की अपेक्षा कवित्व के क्षेत्र मे अपना चमत्कार दिखाना उन्हे अधिक प्रिय था। रसिकजनों के साथ, किसी वृक्ष के नीचे बैठे हुए, काव्य-चरचा करने मे उन्हे जो आनन्द मिलता था, वह शिकार या राज-दरबार में नहीं। इस पर्वत-मालाओं से घिरे हुए गाँव में आकर, उन्हे जिस शांति और आनन्द का अनुभव हुआ, उसके बदले मे वह ऐसे-ऐसे कई राज त्याग कर सकते थे। यह पर्वत-मालाओं की मनोहर छटा, यह नेत्र-रंजक हरियाली, यह जल-प्रवाह की मधुर वीणा, यह पक्षियों की मीठी बोलियाँ, यह मृग-शावकों की छलाँग, यह बछड़ों की कुलेलें, यह ग्राम-निवा-

सियों की बालोचित सरलता, यह रमणियों की सकोच-मय चपलता, ये सभी बाते उनके लिये नई थीं, पर इन सबों से बढकर जो वस्तु उनको आकर्षित करती थी, वह जागीरदार की युवती कन्या चन्दा थी।

चन्दा घर का सारा काम-काज आप ही करती थी। उसको माता की गोद मे खेलना नसीब ही न हुआ था। पिता की सेवा ही मे रत रहती थी। उसका विवाह इसी साल होनेवाला था, कि इसी बीच मे कुँअरजी ने आकर उसके जीवन मे नवीन भावनाओं और नवीन आशाओं को अकुरित कर दिया। उसने अपने पति का जो चित्र मन मे खीच रक्खा था, वही मानों रूप धारण करके उसके सम्मुख आ गया। कुँअर की आदर्श रमणी भी चन्दा ही के रूप मे अवतरित हो गई, लेकिन कुँअर समझते थे, मेरे ऐसे भाग्य कहाँ? चन्दा भी समझती थी, कहाँ यह और कहाँ मै!

(२)

दोपहर का समय था और जेठ का महीना। खपरैल का घर भट्टी की भाँति तपने लगा। खस की टट्टियों और तहखानों मे रहनेवाले राजकुमार का चित्त गरमी से इतना बेचैन हुआ, कि वह बाहर निकल आये और सामने के बाग़ मे जाकर एक घने वृक्ष के छाँह मे बैठ गये। सहसा उन्होंने देखा—चन्दा नदी से जल की गागर लिये चली आ रही है। नीचे जलती हुई रेत थी, ऊपर जलता हुआ सूर्य। लू से देह झुलसी जाती थी। कदाचित् इस समय प्यास से तडपते हुए आदमी की भी नदी तक जाने का

हिम्मत न पडती थी। चन्दा क्यों जल लेने गई थी? घर मे पानी भरा हुआ है। फिर इस समय वह क्यों पानी लेने निकली?

कुँअर दौड़कर उसके पास जा पहुँचे और उसके हाथ से गागर छीन लेने की चेष्टा करते हुए बोले—मुझे दे दो और भागकर छाँह मे चली जाओ। इस समय पानी का क्या काम था?

चन्दा ने गागर न छोडी। सिर से खिसका हुआ अंचल सँभाल कर बोली—तुम इस समय कैसे आ गये? शायद मारे गरमी के अन्दर न रह सके!

कुँअर—मुझे दे दो, नही मै छीन लूँगा।

चन्दा ने मुस्कुराकर कहा—राजकुमारों को गागर लेकर चलना शोभा नही देता।

कुँअर ने गागर का मुँह पकडकर कहा—इस अपराध का बहुत दण्ड सह चुका हूँ। चन्दा, अब तो अपने को राजकुमार कहने मे भी लज्जा आती है।

चन्दा—देखो धूप मे खुद हैरान होते हो और मुझे भी हैरान करते हो। गागर छोड़ दो। सच कहती हूँ, पूजा का जल है।

कुँअर—क्या मेरे ले जाने से, पूजा का जल अपवित्र हो जायगा?

चन्दा—अच्छा भाई नही जानते, तो तुम्ही ले चलो। हाँ नही तो!

कुँअर गागर लेकर आगे-आगे चले। चन्दा पीछे हो ली। बगीचे मे पहुँचे, तो चन्दा एक छोटे-से पौधे के पास रुक कर

बोली—इसी देवता की पूजा करनी है, गागर रख दो। कुँअर ने आश्चर्य से पूछा—यहाँ कौन देवता है चन्दा ? मुझे तो नहीं नजर आता।

चन्दा ने पौधे को सींचते हुए कहा—यही तो मेरा देवता है!

पानी पाकर पौधे की मुरझाई हुई पत्तियाँ हरी हो गईं, मानो उनकी आँखे खुल गई हों।

कुँअर ने पूछा—यह पौधा क्या तुमने लगाया है चन्दा ?

चन्दा ने पौधे को एक सीधी लकड़ी से बाँधते हुए कहा—हाँ, उसी दिन तो, जब तुम यहाँ आए। यहाँ पहले मेरी गुड़ियों का घरौंदा था। मैंने गुड़ियों पर छाँह करने के लिए एक अमोल लगा दिया था। फिर मुझे इसकी याद नहीं रही। घर के काम-धन्धे में भूल गई। जिस दिन तुम यहाँ आये, मुझे न-जाने क्यों इस पौधे की याद आ गई। मैंने आकर देखा, तो यह सूख गया था। मैंने तुरन्त पानी लाकर इसे सींचा, तो कुछ-कुछ ताज़ा होने लगा। तब से रोज़ इसे सींचती हूँ। देखो कितना हरा-भरा हो गया है!

यह कहते-कहते उसने सिर उठाकर कुँअर की ओर ताकते हुए कहा—और सब काम भूल जाऊँ, पर इस पौधे को पानी देना नहीं भूलती। तुम्ही इसके प्राण-दाता हो। यह तुम्हीं ने आकर इसे जिला दिया, नहीं तो बेचारा सूख गया होता। यह तुम्हारे शुभागमन का स्मृति-चिह्न है। जरा इसे देखो। मालूम होता है, हँस रहा है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, कि यह मुझसे बोलता है।

सच कहती हूँ, कभी यह रोता है, कभी हँसता है, कभी रूठता है, आज तुम्हारा लाया हुआ पानी पाकर यह फूला नहीं समाता। एक-एक पत्ता तुम्हे धन्यवाद दे रहा है।

कुँअर को ऐसा जान पडा, मानों वह पौधा कोई नन्हा-सा क्रीडा-शील बालक है। जैसे चुम्बन से प्रसन्न होकर बालक गोद मे चढने के लिए दोनों हाथ फैला देता है, उसी भाँति यह पौधा भी हाथ फैलाए जान पड़ा। उसके एक-एक अणु मे चन्दा का प्रेम झलक रहा था।

चन्दा के घर मे खेती के सभी औजार थे। कुँअर एक फावड़ा उठा लाए और पौधे का एक थाला बनाकर चारों ओर ऊँची मेड़ उठा दी। फिर खुरपी लेकर अन्दर की मिट्टी को गोड दिया। पौधा और भी लहलहा उठा।

चन्दा बोली—कुछ सुनते हो, क्या कह रहा है?

कुँअर ने मुस्कुराकर कहा—हाँ! कहता है अम्माँ की गोद मे बैठूँगा।

चन्दा—नही, कह रहा है, इतना प्रेम करके फिर भूल न जाना।

(३)

मगर कुँअर को अभी राजपुत्र होने का दण्ड भोगना बाकी था। शत्रुओं को न-जाने कैसे उनकी टोह मिल गई इधर तो हित-चिन्तकों के आग्रह से विवश होकर बूढा कुबेरसिंह चन्दा और कुँअर के विवाह की तैयारियाँ कर रहा था, उधर शत्रुओं का एक

दल सिर पर आ पहुँचा। कुँअर ने उस पौधे के आस-पास फूल-पत्ते लगाकर एक फुलवाडी-सी बना दी थी। पौधे को सींचना अब उनका काम था। प्रात.काल वह कन्धे पर काँवर रक्खे नदी से पानी ला रहे थे कि दस-बारह आदमियों ने उन्हे रास्ते मे घेर लिया। कुबेर सिंह तलवार लेकर दौडा, लेकिन शत्रुओं ने उसे मार गिराया। अकेला, शस्त्र-हीन कुँअर क्या करता। कन्धे पर कांवर रक्खे हुए बोला—अब क्यों मेरे पीछे पड़े हो भाई? मैंने तो सब कुछ छोड़ दिया।

सरदार बोला— हमे आपको पकड ले जाने का हुक्म है।

"तुम्हारा स्वामी मुझे इस दशा मे भी नहीं देख सकता? खैर, अगर धर्म समझो, तो कुबेरसिंह की तलवार मुझे दे दो। अपनी स्वाधीनता के लिए लडकर प्राण दूँ।"

इसका उत्तर यही मिला कि सिपाहियों ने कुँअर को पकडकर मुश्के कस दी और उन्हे एक घोड़े पर बिठाकर घोडे को भगा दिया काँवर वहीं पडी रह गई।

उसी समय चन्दा घर मे से निकली। देखा, काँवर पडी हुई है और कुँअर को लोग घोड़े पर बिठाए लिए जा रहे है। चोट खाए हुए पक्षी की भाँति वह कई कदम दौडी, फिर गिर पडी। उसकी आँखों मे अँधेरा छा गया।

सहसा उसकी दृष्टि पिता की लाश पर पड़ी। वह घबड़ाकर उठी और लाश के पास जा पहुँची। कुबेर अभी मरा न था। प्राण आँखों में अटके हुए थे।

चन्दा को देखते ही क्षीण स्वर मे बोला—बेटी.. कुँअर !...इसके आगे वह कुछ न कह सका। प्राण निकल गए, पर इस एक शब्द—"कुँअर"—ने उसका आशय प्रगट कर दिया।

(४)

बीस वर्ष बीत गए ! कुँअर कैद से न छूट सके।

यह एक पहाड़ी किला था। जहाँ तक निगाह जाती, पहाड़ियाँ ही नजर आती। किले मे उन्हें कोई कष्ट न था। नौकर-चाकर, भोजन-वस्त्र, सैर-शिकार, किसी बात की कमी न था, पर उस वियोगाग्नि को कौन शान्ति करता, जो नित्य कुँवर के हृदय मे जला करती थी। जीवन मे अब उनके लिए कोई आशा न थी, कोई प्रकाश न था। अगर कोई इच्छा थी, तो यही कि एक बार उस प्रेम-तीर्थ की यात्रा कर ले, जहाँ उन्हें वह सब कुछ मिला जो मनुष्य को मिल सकता है। हाँ, उनके मन मे एक-मात्र यही अभिलाषा थी कि उस पवित्र-स्मृतियों से रंजित भूमि के दर्शन करके जीवन का उसी नदी के तट पर अन्त कर दे। वही नदी का किनारा, वही वृक्षों का कुञ्ज, वही चन्दा का छोटा-सा सुन्दर घर, उसकी आँख मे फिरा करता, और वह पौधा, जिसे उन दोनों ने मिलकर सींचा था, उसमे तो मानो उसके प्राण ही बसते थे। क्या वह दिन भी आएगा, जब वह उस पौधे को हरी-हरी पत्तियों से लदा हुआ देखेगा। कौन जाने वह अब है भी या सूख गया। कौन अब उसको सींचता होगा ! चन्दा इतने दिनों अविवाहिता थोड़े ही बैठी होगी। ऐसा सभव भी तो नहीं। उसे अब मेरी सुधि भी न

होगी। हाँ शायद कभी अपने घर की याद खीच लाती हो, तो पौधे कोदे खकर उसे मेरी याद आ जाती हो। मुझ-जैसे अभागे के लिए इससे अधिक वह और कर ही क्या सकती है। उस भूमि को एक बार देखने के लिए वह अपना जीवन दे सकता था, पर यह अभिलाषा पूरी न होती थी।

आह! एक युग बीत गया, शोक और नैराश्य ने उठती जवानी को कुचल दिया। न आँखों मे ज्योति रही, न पैरों मे शक्ति। जीवन क्या था, एक दु:खदायी स्वप्न था। उस सघन अंधकार मे उसे कुछ न सूझता था, बस जीवन का आधार एक अभिलाषा थी, एक सुखद स्वप्न जो जीवन मे न-जाने कब उसने देखा था, एक बार फिर वही स्वप्न देखना चाहता था। फिर, उसकी अभिलाषाओं का अन्त हो जायगा, उसे कोई इच्छा न रहेगी। सारा अनन्त भविष्य, सारी अनन्त चिन्ताएँ, इसी एक स्वप्न मे लीन हो जाती थीं।

उसके रक्षकों को अब उसकी ओर से कोई शका न थी। उन्हे उस पर दया आती थी। रात को पहरे पर केवल कोई एक आदमी रह जाता था और लोग मीठी नींद सोते थे। कुँअर भाग जा सकता है, इसकी कोई सभावना, कोई शका न थी। यहाँ तक कि एक दिन यह एक सिपाही भी निश्शक होकर बन्दूक लिए लेट रहा। निद्रा किसी हिंसक पशु की भाँति ताक लगाए बैठी थी। लेटते ही टूट पडी। कुँअर ने सिपाही की नाक की आवाज सुनी। उनका हृदय बडे वेग से उछलने लगा। यह अवसर आज कितने

दिनों के बाद मिला था। वह उठे, मगर पाँव थरथर काँप रहे थे। बरामदे के नीचे उतरने का साहस न हो सका। कहीं इसकी नींद खुल गई तो? हिम्मा उनकी सहायता कर सकती थी। सिपाही की बगल में उसकी तलवार पड़ी थी, पर प्रेम को हिंसा से वैर है। कुँअर ने सिपाही को जगा दिया। वह चौंककर उठ बैठा। रहा-सहा संशय भी उसके दिल से निकल गया। दूसरी बार जो सोया तो खर्राटे लेने लगा।

प्रातःकाल जब उसकी निद्रा टूटी, तो उसने लपककर कुँअर के कमरे में झाँका। कुँअर का पता न था।

कुँअर इस समय हवा के घोड़ों पर सवार, कल्पना की द्रुतगति से, भागा जा रहा था—उस स्थान को, जहाँ उसने सुख-स्वप्न देखा था।

किले में चारों ओर तलाश हुई, नायक ने सवार दौड़ाये, पर कहीं पता न चला।

(५)

पहाड़ी रास्तों का काटना कठिन, उस पर अज्ञातवास की कैद, मृत्यु के दूत पीछे लगे हुए, जिनसे बचना मुश्किल। कुँअर को कामना-तीर्थ में महीनों लग गये। जब यात्रा पूरी हुई, तो कुँअर में एक कामना के सिवा और कुछ शेष न था। दिन-भर की कठिन यात्रा के बाद जब वह उस स्थान पर पहुँचे, तो संध्या हो गई थी। वहाँ बस्ती का नाम भी न था। दो-चार टूटे-फूटे झोंपड़े उस बस्ती के चिह्न-स्वरूप शेष रह गये थे। वह झोंपड़ा, जिसमें कभी प्रेम का

प्रकाश था, जिसके नीचे उन्होंने जीवन के सुखमय दिन काटे थे, जो उनकी कामनाओं का आगार और उनकी उपासना का मन्दिर था, अब उनकी अभिलापाओं की भाँति भग्न हो गया था। झोंपडे की भग्नावस्था मूक-भाषा मे अपनी करुण-कथा सुना रही थी। कुँअर उसे देखते ही "चन्दा-चन्दा!" पुकारता हुआ दौडा। उसने उस रज को माथे पर मला, मानो किसी देवता की विभूति हो और उसकी टूटी हुई दीवारों से चिमटकर बडी देर तक रोता रहा। हाय रे अभिलापा! यह रोने ही के लिये इतनी दूर से आया था? रोने ही की अभिलापा इतने दिनों से उसे विकल कर रही थी, पर इस रोदन मे कितना स्वर्गीय आनन्द था। क्या समस्त ससार का सुख इन आँसुओं की तुलना कर सकता था?

तब वह झोंपडे से निकला। सामने मैदान मे एक वृक्ष हरे-हरे नवीन पल्लवों को गोद मे लिये, मानो उसका स्वागत करने को खडा था। यह वही पौधा है, जिसे आज से बीस वर्ष पहले दोनों ने आरोपित किया था। कुँअर उन्मत्त की भाँति दौडा और जाकर उस वृक्ष से लिपट गया, मानो कोई पिता अपने मातृ-हीन पुत्र को छाती से लगाये हुए हो। यह उसी प्रेम की निशानी है, उसी अक्षय प्रेम की, जो इतने दिनों के बाद आज इतना विशाल हो गया है। कुँअर का हृदय ऐसा फूल उठा, मानो इस वृक्ष को अपने अन्दर रख लेगा, जिसमे उसे हवा का झोंका भी न लगे। उसके एक-एक पल्लव पर चन्दा की स्मृति बैठी हुई थी। पक्षियों का इतना रम्य सगीत क्या कभी उसने सुना था! उसके हाथों मे

दम न था, मारी देह भूख-प्यास और थकन से शिथिल हो रही थी। पर, वह उस वृक्ष पर चढ गया, इतनी फुर्ती मे चढा कि बन्दर भी न चढता। सबसे ऊँची फुनगी पर बैठकर उसने चारों ओर गर्व-पूर्ण दृष्टि डाली। यही उसकी कामनाओं का स्वर्ग था। सारा दृश्य चदामय हो रहा था। दूर की नीली पर्वत-श्रेणियो पर चन्दा बैठी गा रही थी, आकाश मे तैरनेवाली लालिमा-मयी नौकाओं पर चन्दा ही उडी जाती थी। सूर्य की श्वेत-पीत प्रकाश की रेखाओं पर चन्दा ही बैठी हँस रही थी। कुँअर के मन में आया, पक्षी होता तो इन्हीं डालियों पर बैठा हुआ जीवन के दिन पूरे करता।

जब अँधेरा हो गया, तो कुँअर नीचे उतरा और उसी वृक्ष के नीचे थोडी-सी भूमि झाडकर, पत्तियों की शय्या बनाई और लेटा। यही उसके जीवन का स्वर्ण-स्वप्न था, आह यही वैराग्य! अब वह इस वृक्ष की शरण छोडकर कहीं न जायगा। दिल्ली के तख्त के लिए भी वह इस आश्रम को न छोडेगा।

(६)

उसी स्निग्ध अमल चाँदनी मे सहसा एक पक्षी आकर उस वृक्ष पर बैठा और दर्द मे डूबे हुए स्वरों मे गाने लगा। ऐसा जान पडा, मानो वह वृक्ष सिर धुन रहा है। वह नीरव रात्रि उस वेदना-मय संगीत से हिल उठी, कुँअर का हृदय इस तरह ऐंठने लगा, मानो वह फट जायगा। उस स्वर मे करुणा और वियोग के तीर-से भरे हुए थे। आह! पक्षी, तेरा जोड़ा भी अवश्य बिछुड़

गया है, नहीं तेरे राग मे इतनी व्यथा, इतना विषाद, इतना रुदन कहाँ से आता ! कुँअर के हृदय के टुकडे हुए जाते थे, एक-एक स्वर तीर की भाँति दिल को छेदे डालता था। वहाँ बैठे न रह सके। उठकर एक आत्म-विस्मृत की दशा मे दौडे हुए झोंपडे मे गये, वहाँ से फिर वृक्ष के नीचे आए। उस पक्षी को कैसे पाएँ। कही दिखाई नहीं देता।

पक्षी का गाना बन्द हुआ, तो कुँअर को नींद आ गई। उन्हे स्वप्न मे ऐसा जान पडा कि वही पक्षी उनके समीप आया। कुअर ने ध्यान से देखा, तो वह पक्षी न था, चन्दा थी, प्रत्यक्ष चन्दा थी।

कुँअर ने पूछा—चन्दा यह पक्षी यहाँ कहाँ ?

चन्दा ने कहा—मै ही तो वह पक्षी हूँ।

कुअर—तुम पक्षी हो ! क्या तुम्ही गा रही थी ?

चन्दा—हाँ प्रियतम, मै ही गा रही थी। इसी तरह रोते एक युग बीत गया।

कुँअर—तुम्हारा घोंसला कहाँ है ?

चन्दा—उसी झोंपडे मे, जहाँ तुम्हारी खाट थी। उसी खाट के बान से मैने अपना घोंसला बनाया है।

कुँअर—और तुम्हारा जोडा कहाँ है ?

चन्दा—मै अकेली हूँ। चन्दा को अपने प्रियतम के स्मरण करने मे, उसके लिए रोने मे, जो सुख है वह जोडे मे नही, मै इसी तरह अकेली रहूँगी और अकेली मरूँगी।

कुअर—मै क्या पक्षी नही हो सकता ?

चन्दा चली गई। कुँअर की नींद खुल गई। ऊषा की लालिमा आकाश पर छाई हुई थी और वह चिड़िया, कुँअर की शय्या के समीप एक डाल पर बैठी चहक रही थी। अब उस संगीत में करुणा न थी, विलाप न था, उसमें आनन्द था, चापल्य था, सारल्य था। वह वियोग का करुण-क्रन्दन न हो, मिलन का मधुर संगीत था।

कुँवर सोचने लगे—इस स्वप्न का क्या रहस्य है?

(७)

कुंवर ने शय्या से उठते ही एक झाड़ू बनाया और उस झोंपड़े को साफ़ करने लगे। उनके जीते-जी इसकी यह भग्न-दशा नहीं रह सकती। वह इसकी दीवारें उठाएँगे, इस पर छप्पर डालेंगे, इसे लीपेंगे। इनमें उनकी चन्दा स्मृति वास करती है। झोंपड़े के एक कोने में वह काँवर रक्खी हुई थी, जिस पर पानी ला-लाकर वह इस वृक्ष को सींचते थे। उन्होंने काँवर उठा ली और पानी लाने लगे। दो दिन से कुछ भोजन न किया था। रात को भूख लगी हुई थी; पर इस समय भोजन की बिलकुल इच्छा न थी। देह में एक अद्भुत स्फूर्ति का अनुभव होता था। उन्होंने नदी से पानी ला-ला मिट्टी भिगोना शुरु किया। दौड़े जाते थे और दौड़े आते थे। इतनी शक्ति उनमें कभी न थी।

एक ही दिन में इतनी दीवार उठ गई, जितनी चार मजदूर भी न उठा सकते थे। और कितनी सीधी, चिकनी दीवार थी कि कारीगर भी देखकर लज्जित हो जाता। प्रेम की शक्ति अपार है।

सन्ध्या हो गई। चिड़ियों ने बसेरा लिया। वृक्षों ने भी आँखे बन्द की, मगर कुँवर को आराम कहाँ। तारों के मलिन प्रकाश मे मिट्टी के ढ़े रक्खे जाते थे। हाय रे कामना! क्या तू इस बेचारे के प्राण ही लेकर छोड़ेगी?

वृक्ष पर पक्षी का मधुर स्वर सुनाई दिया। कुँवर के हाथ से घडा छूट पडा। हाथ और पैरों मे मिट्टी लपेटे वह वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गए। उस स्वर मे कितना लालित्य था, कितना उल्लास, कितनी ज्योति! मानव-सगीत इसके सामने बेसुरा आलाप था। उसमे यह जागृति, यह अमृत, यह जीवक कहाँ? सगीत के आनन्द मे विस्मृति है, पर वह विस्मृति कितनी स्मृति-मय होती है, अतीत को जीवन और प्रकाश से रञ्जित करके प्रत्यक्ष कर देने की शक्ति, सगीत के सिवा और कहाँ है? कुँवर के हृदय-नेत्रों के सामने वह दृश्य आ खडा हुआ, जब चन्दा इसी पौधे को नदी से जल ला-लाकर सींचती थी। हाय, क्या वे दिन फिर आ सकते है!

सहसा एक बटोही आकर खडा हो गया और कुँअर को देखकर प्रश्न करने लगा, जो साधारणत. दो अपरिचित प्राणियों मे हुआ करते है—कौन हो, कहाँ से आते हो कहाँ जाओगे? पहले वह भी इसी गाँव मे रहता था; पर जब गाँव उजड़ गया, तो समीप के एक दूसरे गाँव मे जा बसा था। अब भी उसके खेत यहाँ थे। रात को जङ्गली पशुओं से अपने खेतों की रक्षा करने के लिए वह यही आकर सोता था।

कुँवर ने पूछा—तुम्हे मालूम है, इस गाँव मे एक कुबेरसिंह ठाकुर रहते थे ?

किसान ने बडी उत्सुकता से कहा—हाँ-हाँ भाई, जानता क्यो नहीं ! बेचारे यही तो मारे गये। तुमसे क्या उसकी जान-पहचान थी ?

कुँअर—हाँ, उन दिनों कभी-कभी आया करता था। मै भी राजा की सेना मे नौकर था। उनके घर मे और कोई न था ?

किसान—अरे भाई कुछ न पूछो, बडी करुण-कथा है। उसकी स्त्री तो पहले ही मर चुकी थी। केवल लड़की बच रही थी। आह ! कैसी सुशीला, कैसी सुघड वह लडकी थी ! उसे देखकर आँखों मे ज्योति आ जाती थी। बिलकुल स्वर्ग की देवी जान पड़ती थी। जब कुबेरसिंह जीता था, तभी कुँअर इन्द्रनाथ यहाँ भाग कर आये थे और उसके यहाँ रहे थे। उस लडकी की कुँअर से कही बात-चीत हो गई। जब कुँवर को शत्रुओं ने पकड़ लिया, तो चन्दा घर मे अकेली रह गई। गाँववालों ने वहुत चाहा, कि उसका विवाह हो जाय। उसके लिए वरों का तोड़ा न था भाई, ऐसा कौन था, जो उसे पाकर अपने को धन्य न मानता, पर वह किसी से विवाह करने पर राज़ी न हुई। यह पेड़ जो तुम देख रहे हो, तब छोटा-सा पौधा था। इसके आस-पास फूलों की कई और क्यारियाँ थी। इन्ही को गोडने, निराने, सींचने मे उसका दिन कटता था। बस, यह कहती, कि हमारे कुँअर साहब आते होंगे।

कुँअर की आँखों से आँसू की वर्षा होने लगी। मुसाफिर ने

ज़रा दम लेकर कहा—दिन-दिन घुलती जाती थी। तुम्हे विश्वास न आयेगा भाई, उसने दस साल इसी तरह काट दिये। इतनी दुर्बल हो गई थी, कि पहचानी न जाती थी, पर अब भी उसे कुँअर साहब के आने की आशा बनी हुई थी। आखिर एक दिन इसी वृक्ष के नीचे उसकी लाश मिली। ऐसा प्रेम कौन करेगा भाई! कुँअर न जाने मरे कि जिए, कभी उन्हे इस विरहिणी की याद भी आती है, कि नही, पर उसने तो प्रेम को ऐसा निभाया जैसा चाहिए।

कुँअर को ऐसा जान पडा, मानों हृदय फटा जा रहा है। वह कलेजा थामकर बैठ गए। मुसाफिर के हाथ मे एक सुलगता हुआ उपला था। उसने चिलम भरी और दो-चार दम लगाकर बोला—उसके मरने के बाद यह घर गिर गया। गॉव पहले ही उजाड था। अब तो और भी सुनसान हो गया। दो-चार असामी यहॉ आ बैठते थे। अब तो चिड़िए का पूत भी यहाँ नहीं आता। उसके मरने के कई महीने के बाद, यही चिडिया इस पेड़ पर बोलती हुई सुनाई दी। तब से बराबर इसे यहॉ बोलते सुनता हूँ। रात को सभी चिड़ियाँ सो जाती है; पर यह रात भर बोलती रहती है। उसका जोड़ा कभी नही दिखाई दिया। बस, बस, फुट्टैल है। दिन-भर उसी झोंपड़े मे पड़ी रहती है। रात को इस पेड़ पर आ बैठती है; मगर इस समय इसके गाने मे कुछ और ही बात है, नहीं तो सुन-कर रोना आता है। ऐसा जान पडता है, मानो कोई कलेजे को मसोस रहा हो। मैं तो कभी-कभी पड़े-पड़े रो दिया करता हूँ।

सब लोग कहते है कि यह वही चन्दा है। अब भी कुँअर के वियोग मे विलाप कर रही है। मुझे भी ऐसा ही जान पडता है। आज न-जाने क्यों मगन है।

किसान तम्बाकू पीकर सो गया। कुँअर कुछ देर तक खोया हुआ-सा खडा रहा। फिर धीरे से बोला—चन्दा, क्या सचमुच तुम्हीं हो ? मेरे पास क्यों नहीं आती ?

एक क्षण मे चिड़िया आकर उसके हाथ पर बैठ गई। चन्द्रमा के प्रकाश मे कुँअर ने चिडिया को देखा। ऐसा जान पडा, मानो उनकी आँखे खुल गई हों, मानों आँखों के सामने से कोई आवरण हट गया हो। पक्षी के रूप मे भी चन्दा की मुखाकृति अंकित थी।

दूसरे दिन किसान सोकर उठा, तो कुँअर की लाश पडी हुई थी।

(८)

कुँअर अब नहीं है, किन्तु इनके झोंपड़े की दीवारे बन गई हैं, ऊपर फूस का नया छप्पर पड गया है और झोंपडे के द्वार पर फूलों की कई क्यारियाँ लगी हुई है। गॉव के किसान इससे अधिक और क्या कर सकते थे।

उस झोंपडे मे अब पक्षियों के एक जोड़े ने अपना घोंसला बनाया है। दोनों साथ-साथ दान-चारे की खोज मे जाते हैं, साथ-साथ आते हैं। रात को दोनों उसी वृक्ष की डाल पर बैठे दिखाई देते है। उनका सुरम्य संगीत, रात की नीरवता मे दूर तक सुनाई

देता है। बन के जीव-जन्तु वह स्वर्गीय गान सुनकर मुग्ध हो जाते है।

यह पक्षियों का जोडा कुँअर और चन्दा का जोडा है, इसमें किसी को सन्देह नहीं है।

एक बार एक व्याध ने इन पक्षियो को फँसाना चाहा, पर गाँववालों ने उसे मारकर भगा दिया।

(३) रानी सारन्धा
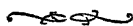
(१)

धेरी रात के सन्नाटे मे धसान नदी चट्टानों से टकराती हुई ऐसी सुहावनी मालूम होती थी जैसे घुमुर-घुमुर करती हुई चक्कियाँ। नदी के दाहने तट पर एक टीला है। उस पर एक पुराना दुर्ग बना हुआ है, जिसको जङ्गली वृक्षों ने घेर रक्खा है। टीले के पूर्व की ओर एक छोटा-सा गाँव है। यह गढ़ी और गाँव दोनों एक बुन्देला सरदार के कीर्ति-चिह्न है। शताब्दियाँ व्यतीत हो गई, बुन्देलखण्ड मे कितने ही राज्यों का उदय और अस्त हुआ, मुसलमान आये और गये, बुन्देला राजा उठे और गिरे, कोई गाँव, कोई इलाका, ऐसा न था, जो इस दुर्व्यवस्थाओं से पीडित न हो, मगर इस दुर्ग पर किसी शत्रु की विजय-पताका न लहराई और इस गाँव मे किसी विद्रोह का भी पदार्पण न हुआ। यह उसका सौभाग्य था।

अनिरुद्धसिंह वीर राजपूत था। वह जमाना ही ऐसा था, जब मनुष्य-मात्र को अपने बाहु-बल और पराक्रम ही का भरोसा था।

एक ओर मुसलमान सेनाए पैर जमाये खडी रहती थी, दूसरी ओर बलवान् राजा अपने निर्बल भाइयों का गला घोटने पर तत्पर रहते थे। अनिरुद्धसिंह के पास सवारों और पियादों का एक छोटा-सा, मगर सजीव, दल था। इससे वह अपने कुल और मर्य्यादा की रक्षा किया करता था। उसे कभी चैन से बैठना नसीब न होता था। तीन वर्ष पहले उसका विवाह शीतलादेवी से हुआ, मगर अनिरुद्ध विहार के दिन और विलास की राते पहाडों मे काटता था और शीतला उसकी जान की खैर मनाने मे। वह कितनी बार पति से अनुरोध कर चुकी थी, कितनी बार उसके पैरों पर गिरकर रोई थी, कि तुम मेरी आँखों से दूर न हो, मुझे हरिद्वार ले चलो मुझे तुम्हार साथ बन-वास अच्छा है, यह वियोग अब नहीं सहा जाता। उसने प्यार से कहा, जिद से कहा, विनय की, मगर अनिरुद्ध बुन्देला था। शीतला अपने किसी हथियार से उसे परास्त न कर सकी।

(२)

अँधेरी रात थी। सारी दुनिया सोती थी, मगर तारे आकाश मे भागते थे। शीतलादेवी पलङ्ग पर पडी करवटे बदल रही थी और उसकी ननद सारन्धा फर्श पर बैठी हुई मधुर स्वर से गाती थी—

बिन रघुबीर कटत नहीं रैन।

शीतला ने कहा—जी न जलाओ। क्या तुम्हे भी नींद नहीं आती?

सारन्धा—तुम्हे लोरी सुना रही हूँ।

शीतला—मेरी आँखों से तो नीद लोप हो गई।

सारन्धा—किसी को ढूँढने गई होगी।

इतने में द्वार खुला और एक गठे हुए बदन के रूपवान् पुरुष ने भीतर प्रवेश किया। यह अनिरुद्ध था। उसके कपडे भीगे हुए थे, और बदन पर कोई हथियार न था। शीतला चारपाई से उतर कर जमीन पर बैठ गई।

सारन्धा ने पूछा—भैया, यह कपड़े भीगे क्यों है?

अनिरुद्ध—नदी पैरकर आया हूँ।

सारन्धा—हथियार क्या हुए?

अनिरुद्ध—छिन गये।

सारन्धा—और साथ के आदमी?

अनिरुद्ध—सबने वीर गति पाई।

शीतला ने दबी जबान से कहा—"ईश्वर ने ही कुशल किया..." मगर सारन्धा के तीवरों पर बल पड़ गये और मुखमण्डल गर्व से सतेज हो गया। बोली "भैया, तुमने कुल की मर्यादा खो दी। ऐसा कभी न हुआ था।"

सारन्धा भाई पर जान देती थी। उसके मुंह से वह धिक्कार सुनकर अनिरुद्ध लज्जा और खेद से विकल होगया। वह वीराग्नि जिसे क्षण भर के लिये अनुराग ने दबा दिया था, फिर ज्वलन्त हो गई। वह उल्टे पॉव लौटा और यह कहकर बाहर चला गया कि "सारन्धा, तुमने मुझे सदैव के लिये सचेत कर दिया। यह बात मुझे कभी न भुलेगी।"

अँधेरी रात थी। आकाश मण्डल मे तारों का प्रकाश बहुत

दिया और अपने बाहुबल से राज्य-विस्तार करने लगा। मुसलमानों की सेनाये बार-बार उस पर हमले करती थी , पर हार कर लौट जाती थी ।

यही समय था, जब अनिरुद्ध ने सारन्धा का चम्पतराय से विवाह कर दिया। सारन्धा ने मुँहमाँगी मुराद पाई। उसकी यह अभिलाषा कि मेरा पति बुँदेला जाति का कुल-तिलक हो, पूरी हुई। यद्यपि राजा के रनिवास मे पॉच रानियॉ थी, मगर उन्हे शीघ्र ही मालूम हो गया कि वह देवी जो हृदय मे मेरी पूजा करती है, सारन्धा है।

परन्तु कुछ ऐसी घटनाये हुई कि चम्पतराय को मुगल-बादशाह का आश्रित होना पडा। वह अपना राज्य अपने भाई पहाड़सिंह को सौपकर आप देहली को चला गया। यह शाहजहाँ के शासन-काल का अन्तिम भाग था। शाहजादा दारा शिकोह राजकीय-कार्यों को सँभालते थे। युवराज की ऑखों मे शील था और चित्त मे उदारता। उन्होंने चम्पतराय की वीरता की कथाये सुनी थी, इसलिए उसका बहुत आदर-सम्मान किया, और कालपी की बहुमूल्य जागीर उसके भेंट की, जिसकी आमदनी नौ लाख थी। यह पहला अवसर था कि चम्पतराय को आये-दिन की लडाई-झगडे से निवृत्ति मिली और उसके साथ ही भोग-विलास का प्राबल्य हुआ। रात-दिन आमोद-प्रमोद की चर्चा रहने लगी। राजा विलास मे डूबे, रानियाँ जडाऊ गहनों पर रीझी। मगर सारन्धा इन दिनों बहुत उदास और संकुचित रहती। वह इन रहस्यों से दूर-दूर रहती, ये नृत्य और गान की सभाये से सूनी प्रतीत होतीं।

एक दिन चम्पतराय ने सारन्धा से कहा—सारन, तुम उदास क्यों रहती हो ? मैं तुम्हे कभी हँसते नही देखता। क्या मुझसे नाराज हो ?

सारन्धा की आँखों मे जल भर आया। बोली—स्वामी जी ! आप क्यों ऐसा विचार करते है ? जहाँ आप प्रसन्न है, वहाँ मै भी खुश हूँ।

चम्पतराय—मै जब से यहाँ आया हूँ मैने तुम्हारे मुख-कमल पर कभी मनोहारिणी मुसकिराहट नही देखी। तुमने कभी अपने हाथों से मुझे बीडा नहीं खिलाया। कभी मेरी पाग नही सँवारी कभी मेरे शरीर पर शस्त्र नहीं सजाये। कहीं प्रेमलता मुरझाने तो नही लगी ?

सारन्धा—प्राणनाथ ! आप मुझसे ऐसी बाते पूछते है, जिसका उत्तर मेरे पास नहीं है ! यथार्थ मे इन दिनों मेरा चित्त कुछ उदास रहता है। मै बहुत चाहती हूँ कि खुश रहूँ , मगर एक बोझा-सा हृदय पर धरा रहता है।

चम्पतराय स्वयं आनन्द मे मग्न थे। इसलिये उनके विचार मे सारन्धा को असन्तुष्ट रहने का कोई उचित कारण नही हो सकता था। वे भौहे सिकोडकर बोले—मुझे तुम्हे उदास रहने का कोई विशेष कारण नही मालूम होता। ओरछे मे कौन सा सुख था, जो यहाँ नहीं है ? सारन्धा का चेहरा लाल हो गया। बोली—मैं कुछ कहूँ, आप नाराज तो न होंगे ?

चम्पतराय—नहीं, शौक से कहो।

सारन्धा—ओरछा मे मै एक राजा की रानी थी। यहाँ मै एक जागीरदार की चेरी हूँ। ओरछा मे मै वह थी जो अवध मे कौशल्या थी, परन्तु यहाँ मै बादशाह के एक सेवक की स्त्री हूँ। जिस बादशाह के सामने आज आप आदर से सिर झुकाते है वह कल आपके नाम से काँपता था। रानी से चेरी होकर भी प्रसन्न-चित्त होना मेरे वश मे नहीं है। आपने यह पद और ये विलास की सामग्रियाँ बडे महँगे दामों मे मोल ली है।

चम्पतरायके नेत्रो से एक पर्दा-सा हट गया। वे अब तक सारन्धा की आत्मिक उच्चता को न जानते थे। जैसे बे माँ-बाप का बालक माँ की चर्चा सुनकर रोने लगता है, उसी तरह ओरछा की याद से चम्पतराय की आँखे सजल हो गई। उन्होंने आदर-युक्त अनुराग के साथ सारन्धा को हृदय से लगा लिया।

आज से उन्हे फिर उसी उजडी बस्ती की फिक्र हुई, जहाँ से धन और कीर्ति की अभिलाषाये खीच लाई थी।

(४)

माँ अपने खोये हुए बालक को पाकर निहाल हो जाती है। चम्पतराय के आने से बुन्देलखण्ड निहाल हो गया। ओरछा के भाग जागे। नौबते झडने लगी, और फिर सारन्धा के कमल-नेत्रों मे जातीय अभिमान का आभास दिखाई देने लगा।

यहाँ रहते कई महीने बीत गये। इसी बीच मे शाहजहाँ बीमार पडा। शाहजादाओं मे पहले से ईर्षा की अग्नि दहक रही थी। यह खबर सुनते ही ज्वाला प्रचण्ड हुई। संग्राम की तैयारियाँ

होने लगीं। शाहज़ादा मुराद और मुहीउद्दीन अपने-अपने दल सजाकर दक्खिन से चले। वर्षा के दिन थे। उर्वरा भूमि रंग-बिरंग के रूप भरकर अपने सौन्दर्य्य को दिखाती थी।

मुराद और मुहीउद्दीन उमंगों से भरे हुए कदम बढ़ाते चले आते थे। यहाँ तक कि वे धौलपुर के निकट चम्बल के तट पर आ पहुँचे, परन्तु यहाँ उन्होंने बादशाही सेना को अपने शुभागमन के निमित्त तैयार पाया।

शाहज़ादे अब बड़ी चिन्ता मे पडे। सामने अगम्य नदी लहर मार रही थी, लोभ से भी अधिक विस्तारवाली। घाट पर लोहे की दीवार खड़ी थी, किसी योगी के त्याग के सदृश सुदृढ। विवश होकर चम्पतराय के पास सँदेशा भेजा कि खुदा के लिए आकर हमारी डूबती हुई नाव को पार लगाइये।

राजा ने भवन मे जाकर सारन्धा से पूछा—इसका क्या उत्तर दूँ।

सारन्धा—आपको मदद करनी होगी।

चम्पतराय—उनकी मदद करना दाराशिकोह से बैर लेना है।

सारन्धा—यह सत्य है, परन्तु हाथ फैलाने की मर्य्यादा भी तो निभानी चाहिये।

चम्पतराय—प्रिये! तुमने सोचकर जवाब नही दिया।

सारन्धा—प्राणनाथ! मै अच्छी तरह जानती हूँ कि यह मार्ग कठिन है और हमें अपने योद्धाओं का रक्त पानी के समान बहाना पड़ेगा; परन्तु हम अपना रक्त बहायेंगे, और चम्बल की लहरों

को लाल कर देगे। विश्वास रखिए कि जब तक नदी की धारा बहती रहेगी, वह हमारे वीरों की कीर्ति-गान करती रहेगी। जब तक बुन्देलों का एक भी नाम-लेवा रहेगा, यह रक्त-विन्दु उसके माथे पर केशर का तिलक बनकर चमकेगा।

वायु-मण्डल मे मेघराज की सेनाये उमड रही थी। ओरछे के किले से बुन्देलों की एक काली घटा उठी और वेग के साथ चम्बल की तरफ चली। प्रत्येक सिपाही वीर-रस से झूम रहा था। सारन्धा ने दोनों राजकुमारों को गले से लगा लिया और राजा को पान का बीडा देकर कहा—बुन्देलों की लाज अब तुम्हारे हाथ है।

आज उसका एक-एक अग मुसकिरा रहा है और हृदय हुलसित है। बुन्देलों की यह सेना देखकर शाहजादे फूले न समाये। राजा वहाँ की अगुल-अंगुल-भूमि से परिचित थे। उन्होंने बुन्देलों को तो एक आड मे छिपा दिया और वे शाहजादों की फौज को सजाकर नदी के किनारे-किनारे पच्छिम की ओर चले। दाराशिकोह को भ्रम हुआ, कि शत्रु किसी अन्य घाट से नदी उतरना चाहता है। उन्होंने घाट पर से मोर्चे हटा लिये। घाट मे बैठे हुए बुन्देले इसी ताक में थे। बाहर निकल पडे और उन्होंने तुरन्त ही नदी मे घोडे डाल दिये। चम्पतराय ने शाहजादा दाराशिकोह को भुलावा देकर अपनी फौज घुमा दी और वह बुन्देलों के पीछे चलता हुआ उसे पार उतार लाया। इस कठिन चालमे सात घटों का विलम्ब हुआ, परन्तु जाकर देखा, तो सात सौ बुन्देला योद्धाओं की लाशे फडक रही थी।

राजा को देखते ही बुन्देलो की हिम्मत बँध गई। शाहजादा की सेना ने भी 'अल्लाहो-अकबर' की ध्वनि के साथ धावा किया। बादशाही सेना मे हलचल पड गई। उनकी पंक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो गई, हाथों-हाथ लड़ाई होने लगी, यहाँ तक कि शाम हो गई। रण-भूमि रुधिर से लाल हो गई और आकाश मे अँधेरा हो गया। घमसान की मार हो रही। बादशाही सेना शाहजादों को दबाये आती थी। अकस्मात् पच्छिम से फिर बुन्देलों की एक लहर उठी और इस वेग से बादशाही-सेना की पुश्त पर टकराई कि उसके कदम उखड गये। जीता हुआ मैदान हाथ से निकल गया। लोगों को कौतूहल था कि यह दैवी सहायता कहाँ से आई। सरल-स्वभाव के लोगों की धारणा थी कि यह शतह के फरिश्ते हैं, शाहजादों की मदद के लिए आये है, परन्तु जब राजा चम्पतराय निकट गये, तो सारन्धा ने घोडे से उतरकर उनके पद पर सिर झुका दिया। राजा को असीम आनन्द हुआ। यह सारन्धा थी।

समर-भूमि का दृश्य इस समय अत्यन्त दु:खमय था। थोडी देर पहले जहाँ सजे हुए वीरों के दल थे, वहाँ अब बे-जान लाशे फड़क रही थी। मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिये आदि से ही भाइयों की हत्या की है।

अब विजयी सेना लूट पर टूटी। पहले मर्द-मर्दों से लडते थे अब वे मुर्दों से लड़ रहे थे। वह वीरता और पराक्रम का चित्र था, यह नीचता और दुर्बलता की ग्लानि-प्रद तसवीर थी। उस समय मनुष्य पशु बना हुआ था, अब वह पशु से भी बढ़ गया था।

इस नोच-खसोट में लोगों को बादशाही-सेना के सेनापति वली-बहादुरखाँ की लाश दिखाई दी। उसके निकट उसका घोडा खडा हुआ अपनी दुम से मक्खियाँ उड़ा रहा था। राजा को घोड़ों का शौक़ था। देखते ही वह उस पर मोहित हो गया। यह एराक़ी जाति का अति सुन्दर घोडा था। एक-एक अग साँचे मे ढला हुआ सिंहकी-सी छाती, चीतेकी-सी कमर, उसका यह प्रेम और स्वामि-भक्ति देखकर लोगो को बडा कौतूहल हुआ। राजा ने हुक्म दिया—"खबरदार! इस प्रेमी पर कोई हथियार न चलाये, इसे जीता पकड ले, यह मेरे अस्तबल की शोभा बढ़ायेगा। जो इसे मेरे पास लायेगा—उसे धन से निहाल कर दूँगा।"

योद्धागण चारों ओर से लपके, परन्तु किसी को साहस न होता था कि उसके निकट जा सके। कोई चुमकारता था, कोई फन्दे मे फँसाने की फ़िक्र मे था; पर कोई उपाय सफल न होता था। वहाँ सिपाहियों का एक मेला-सा लगा हुआ था।

तब सारन्धा अपने खेमे से निकली और निर्भय होकर घोडे के पास चली गई। उसकी आँखों मे प्रेम का प्रकाश था, छल का नही। घोडे ने सिर झुका दिया। रानी ने उसकी गर्दन पर हाथ रक्खा, और वह उसकी पीठ सुहलाने लगी। घोडे ने उसके अञ्चल मे मुँह छिपा लिया। रानी उसकी रास पकड़कर खेमे की ओर चली। घोड़ा इस तरह चुपचाप उसके पीछे चला, मानो सदैव से उसका सेवक है।

पर बहुत अच्छा होता कि घोड़े ने सारन्धा से भी निष्ठुर

की होती। यह सुन्दर घोडा आगे चलकर इस राज्य-परिवार के निमित्त रत्न-जटित मृग प्रतीत हुआ।

(५)

ससार एक रण-क्षेत्र है। इस मैदान मे उसी सेनापति को विजय लाभ होता है, जो अवसर को पहचानता है। वह अवसर देखकर जितने उत्साह से आगे बढता है, उतने ही उत्साह से आपत्ति के समय पर पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुप राष्ट्र का निर्माता होता है, और इतिहास उसके नाम पर यश के फूलों की वर्षा करता है।

पर इस मैदान मे कभी-कभी ऐसे सिपाही भी आ जाते है, जो अवसर पर कदम बढाना जानते हैं, लेकिन सकट मे पीछे हटना नहीं जानते। यह रणधीर पुरुप विजय को नीति भेट कर देता है। वह अपनी सेना का नाम मिटा देगा, किन्तु जहाँ पर एक बार पहुँच गया है, वहाँ से कदम पीछे न हटायेगा। उनमे कोई बिरला ही ससार-क्षेत्र मे विजय प्राप्त करता है, किन्तु प्राय: उसकी हार विजय से भी गौरवात्मक होती है। अगर वह अनुभवशील सेना-पति राष्ट्रों की नीव डालता है, तो यह आप पर जान देनेवाला, यह मुँह न मोड़नेवाला सिपाही राष्ट्र के भावों को उच्च करता है, और उसके हृदय पर नैतिक गौरव को अकित कर देता है। उसे इस कार्य-क्षेत्र मे चाहे सफलता न हो, किन्तु जब किसी वाक्य या सभा मे उसका नाम जबान पर आ जाता है, तो श्रोता-गण एक

स्वर से उसके कीर्ति गौरव को प्रतिध्वनित कर देते है। सारन्धा इन्ही 'आन पर जान देनेवालों' मे थी।

शाहजादा मुहीउद्दीन चम्बल के किनारे से आगरे की ओर चला, तो सौभाग्य उसके सिर पर मोर्छल हिलाता था। जब वह आगरे पहुँचा तो विजयदेवी ने उसके लिये सिंहासन सजा दिया।

औरगजेब गुणज्ञ था। उसने बादशाही सरदारों के अपराध क्षमा कर दिये, उनके राज्य-पद लौटा दिये और राजा चम्पतराय को उसके बहुमूल्य कृत्यों के उपलक्ष मे 'बारह हजारी मन्सब' प्रदान किया। ओरछा से बनारस और बनारस से यमुना तक उसकी जागीर नियत की गई। बुदेला राजा फिर राज्य-सेवक बना, वह फिर सुख-विलास मे डूबा, और रानी सारन्धा फिर पराधीनता के शोक से घुलने लगी।

वली-बहादुरखाँ बड़ा वाक्यचतुर मनुष्य था। उसकी मृदुलता ने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगीर का विश्वास-पात्र बना दिया। उस पर राज-सभा मे सम्मान की दृष्टि पडने लगी।

खाँसाहब के मनमे अपने घोडे के हाथ से निकल जाने का बडा शोक था। एक दिन कुवर छत्रसाल उसी घोड़े पर सवार होकर सैर को गया था। वह खाँसाहब के महल के तरफ जा निकला। वली-बहादुर ऐसे ही अवसर की ताक मे था। उसने तुरत अपने सेवकों को इशारा किया। राजकुमार अकेला क्या करता! पाँव पाँव घर आया, और उसने सारन्धा से सब समाचार बयान किया। रानी का चेहरा तमतमा गया। बोली—"मुझे इसका शोक नही कि

घोडा हाथ से गया ; शोक इसका है कि तू उसे खोकर जीता क्यों लौटा , क्या तेरे शरीर मे बुन्देलों का रक्त नहीं है ? घोडा न मिलता न सही , किन्तु तुझे दिखा देना चाहिए था कि एक बुँदेला-बालक मे उसका घोडा छीन लेना हँसी नही है ।"

यह कहकर उसने अपने पच्चीस योद्धाओं को तैयार होने की आज्ञा दी, स्वय अस्त्र धारण किये और योद्धाओं के साथ वली-बहादुरखाँ के निवास-स्थान पर जा पहुँची । खाँसाहब उसी घोडे पर सवार होकर दरबार चले गये थे । सारन्धा दरबार की तरफ चली, और एक क्षण मे किसी वेगवती नदी के सदृश बादशाही दर-बार के सामने जा पहुँची । यह कैफियत देखते ही दरबार मे हलचल मच गई । अधिकारी- वर्ग इधर-उधर से आकर जमा हो गये । आलमगीर भी सहन से निकल आये । लोग अपनी-अपनी तलवारे सँभालने लगे और चारों तरफ शोर मच गया । कितने ही नेत्रों ने इसी दरबार मे अमरसिंह की तलवार की चमक देखी थी । उन्हे वही घटना फिर याद आ गई ।

सारन्धा ने उच्च स्वर से कहा—"खाँसाहब ! बडी लज्जा की बात है । कि आपने वह वीरता जो, चम्बल के तट पर दिखानी चाहिए थी, आज एक अबोध बालक के सम्मुख दिखाई है । क्या यह उचित था कि आप उससे घोड़ा छीन लेते ?"

वली-बहादुरखाँ की आँखों से अग्नि-ज्वाला निकल रही थी । वे कड़ी आवाज़ से बोले—"किसी गैर को क्या मजाज़ है कि मेरी चीज अपने काम मे लाये ?"

रानी—वह आपकी चीज़ नहीं, मेरी है। मैंने उसे रण-भूमि मे पाया है और उस पर मेरा अधिकार है। क्या रणनीति की इतनी मोटी वात भी आप नहीं जानते ?

खाँसाहब—वह घोडा मै नही दे सकता, उसके बदले मे सारा अस्तबल आपको नजर है।

रानी—मै अपना घोडा लूँगी।

खाँसाहब—मै उसके बराबर जवाहरात दे सकता हूँ; परन्तु घोडा नहीं दे सकता।

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवरों से होगा।

बुन्देला-योद्धाओ ने तलवारे सौंत लीं और निकट था कि दरबार की भूमि रक्त से प्लावित हो जाय कि बादशाह आलमगीर ने बीच मे आकर कहा—'रानी साहबा! आप सिपाहियों को रोके। घोड़ा आपको मिल जायगा, परन्तु उसका मूल्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मै उसके लिये अपना सर्वस्व त्याग ने पर तैयार हूँ।

बादशाह—जागीर और मन्सब भी ?

रानी—जागीर और मन्सब कोई चीज नहीं।

बादशाह—अपना राज्य भी ?

रानी—हाँ राज्य भी।

बादशाह—एक घोडे के लिये ?

रानी—नही उस पदार्थ के लिये, जो संसार में सबसे अधिक मूल्यवान् है।

बादशाह—वह क्या है ?

रानी—अपनी आन।

इस भाँति रानी ने एक घोडे के लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज्यपद और राज-सम्मान सब हाथ से खोया और केवल इतना ही नही, भविष्य के लिए काँटे बोये। इस घड़ी से अन्त दशा तक चम्पतराय को शान्ति न मिली।

(६)

राजा चम्पतराय ने फिर ओरछे के किले मे पदार्पण किया। उन्हे मन्सब और जागीर के हाथ से निकल जाने का अत्यन्त शोक हुआ, किन्तु उन्होंने अपने मुँह से शिकायत का एक शब्द भी नही निकाला। वे सारन्धा के स्वभाव को भली-भाँति जानते थे। शिकायत इस समय उसके आत्म-गौरव पर कुठार का काम करता। कुछ दिन यहाँ शान्ति पूर्वक व्यतीत हुए; लेकिन बादशाह सारन्धा की कठोर बाते भूला न था। वह क्षमा करना जानता ही न था। ज्यों ही भाइयों की ओर से निश्चिन्त हुआ, उसने एक बड़ी सेना चम्पतराय का गर्व पूर्ण करने के निमित्त भेजी और बाईस अनुभवशील सरदार इस मुहाम पर नियुक्त किये। शुभकरण बुँदेला बादशाह का सूबेदार था। वह चम्पतराय का बचपन का मित्र और सहपाठी था। उसने चम्पतराय को परास्त करने का बीड़ा उठाया। और भी कितने बुँदेला ही सरदार राजा से विमुख होकर बादशाही सूबेदार से आ मिले। एक घोर सग्राम हुआ। भाइयों की तलवारे रक्त से लाल हुई। यद्यपि इस समर में राजा को विजय प्राप्त हुई; लेकिन उनकी शक्ति सदा के लिए क्षीण हो

गई। निकटवर्ती बुँदेला राजा, जो चम्पतराय के बाहु-बल थे, बाद-शाह के कृपाकांक्षी बन बैठे। साथियों में कुछ तो काम आये, कुछ दगाकर गये यहाँ तक कि निज सम्बन्धियों ने भी आँखें चुरा ली; परन्तु इन कठिनाइयों में भी चम्पतराय ने हिम्मत नहीं हारी। धीरज को न छोड़ा। उन्होंने ओरछा छोड़ दिया और तीन वर्ष तक बुँदेलखण्ड के सघन पर्वतों पर छिपे फिरते रहे। बादशाही सेनाएँ शिकारी जानवरों की भाँति सारे देश में मँडरा रही थीं। आये-दिन राजा का किसी-न-किसी से सामना हो जाता था। सारन्धा सदैव उनके साथ रहती और उनका साहस बढ़ाया करती। बड़ी-बड़ी आपत्तियों में भी, जब कि धैर्य्य लुप्त हो जाता—और आशा साथ छोड़ देती—आत्मरक्षा का धर्म्म उसे सँभाले रहता था। तीन साल के बाद अन्त में बादशाह के सूब-दारों ने आलमगीर को सूचना दी, कि इस शेर का शिकार आपके सिवाय और किसी से न होगा। उत्तर आया, कि सेना को हटा लो और घेरा उठा लो। राजा ने समझा, सङ्कट से निवृत्ति हुई, पर यह बात शीघ्र ही भ्रमात्मक सिद्ध हो गई।

(७)

तीन सप्ताह से बादशाही सेना ने ओरछा घेर रक्खा है। जिस तरह कठोर वचन हृदय को छेद डालते हैं, उसी तरह तोपों के गोलों ने दीवारों को छेद डाला है। किले में २० हजार आदमी घिरे हुए हैं; लेकिन उनमें आधे से अधिक स्त्रियाँ और उनसे कुछ ही कम बालक हैं। मर्दों की संख्या दिनोदिन न्यून होती जाती

है, आने-जाने के मार्ग चारों तरफ से बन्द है। हवा का भी गुजर नही। रसद का सामान बहुत कम रह गया है। स्त्रियाँ, पुरुषों और बालकों को जीवित रखने के लिये आप उपवास करती है। लोग बहुत हताश हो रहे है। औरते सूर्य्यनारायण की ओर हाथ उठा-उठाकर शत्रु को कोसती है। बालकवृन्द मारे क्रोध के दीवारों की आड़ से उन पर पत्थर फेकते है, जो मुश्किल मे दीवार के उस पार जाते है। राजा चम्पतराय स्वयम् ज्वर से पीड़ित है। उन्होंने कई दिन से चारपाई नही छोडी। उन्हे देखकर लोगों को कुछ ढारस होता था, लेकिन उनकी बीमारी से सारे किले मे नैराश्य छाया हुआ है।

राजा ने सारन्धा से कहा—आज शत्रु जरूर किले मे घुस आयेंगे।

सारन्धा—ईश्वर न करे कि इन आँखों से वह दिन देखना पड़े।

राजा—मुझे बड़ी चिन्ता इन अनाथ स्त्रियों और बालकों की है। गेहूँ के साथ यह घुन भी पिस जायेंगे।

सारन्धा—हम लोग यहाँ से निकल जायें, तो कैसा ?

राजा—इन अनाथों को छोडकर ?

सारन्धा—इस समय इन्हे छोड देने ही मे कुशल है। हम न होंगे, तो शत्रु इन पर कुछ दया अवश्य ही करेंगे।

राजा—नही, यह लोग मुझसे न छोड़े जायेंगे। जिन मर्दों ने अपनी जान हमारी सेवा मे अर्पण कर दी है, उनकी स्त्रियों और बच्चों को मैं यों कदापि नहीं छोड़ सकता।

सारन्धा—लेकिन यहाँ रहकर हम उनकी कुछ मदद भी तो नहीं कर सकते।

"राजा उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं? मैं उनकी रक्षा में अपनी जान लड़ा दूँगा। उनके लिये बादशाही सेना की खुशामद करूँगा। कारावास की कठिनाइयाँ सहूँगा, किन्तु इस संकट में उन्हें छोड़ नहीं सकता।"

सारन्धा ने लज्जित होकर सिर झुका लिया और सोचने लगी—निस्सन्देह अपने प्रिय साथियों को आग की आँच में छोड़कर अपनी जान बचाना घोर नीचता है। मैं ऐसी स्वार्थान्ध क्यों होगई हूँ, लेकिन फिर एकाएक विचार उत्पन्न हुआ। बोली—यदि आपको विश्वास हो जाय, कि इन आदमियों के साथ कोई अन्याय न किया जायगा, तबतो आपको चलने में कोई बाधा न होगी?

राजा—(सोचकर) कौन विश्वास दिलायेगा?

सारन्धा—बादशाह के सेनापति का प्रतिज्ञापत्र।

राजा—हाँ, तब मैं सानन्द चलूंगा।

सारन्धा विचार-सागर में डूबी। बादशाह के सेनापति से क्योंकर यह प्रतिज्ञा कराऊँ? कौन यह प्रस्ताव लेकर वहाँ जायगा और वे निर्दयी ऐसी प्रतिज्ञा करने ही क्यों लगे। उन्हें तो अपनी विजय की पूरी आशा है। मेरे यहाँ ऐसा नीति-कुशल, वाक्पटु, चतुर कौन है, जो इस दुस्तर कार्य्य को सिद्ध करे। छत्रसाल चाहे तो कर सकता है। उसमें ये सब गुण मौजूद हैं।

इस तरह मन में निश्चित करके रानी छत्रसाल को बुलाया

यह उसके चारों पुत्रों मे सबसे बुद्धिमान् और साहसी था। रानी उसे सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छत्रसाल ने आकर रानी को प्रणाम किया, तो उसके कमलनेत्र सजल हो गये और हृदय से दीर्घ नि:श्वास निकल आया।

छत्रसाल—माता, मेरे लिये क्या आज्ञा है ?

रानी—आज लडाई का क्या ढग है ?

छत्रसाल—हमारे पचास योद्धा अब तक काम आ चुके है।

रानी—बुँदेलों की लाज अब ईश्वर के हाथ है।

छत्रसाल—हम आज रात को छापा मारेगे।

रानी ने सक्षेप मे अपना प्रस्ताव छत्रसाल के सामने उपस्थित किया और कहा—"यह काम किसको सौपा जाये ?

छत्रसाल—मुझको।

"तुम इसे पूराकर दिखाओगे ?".

"हॉ, मुझे पूर्ण विश्वास है।"

"अच्छा जाओ, परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूरा करे।"

छत्रसाल जब चला, तो रानी ने उसे हृदय से लगा लिया और तब आकाश की ओर दोनों हाथ उठाकर कहा—दयानिधे, मैंने अपना तरुण और होनहार पुत्र बुँदेलों की आन के आगे भेटकर दिया। अब इस आन को निभाना तुम्हारा काम है। मैने बड़ी मूल्यवान् वस्तु अर्पित की है। इसे स्वीकार करो।

(८)

दूसरे दिन प्रात:काल सारन्धा स्नान करके थाल में पूजा की

सामग्री लिये मन्दिर को चली। उसका चेहरा पीला पड़ गया था और आँखों-तले अँधेरा छाया जाता था। वह मन्दिर के द्वार पर पहुँची थी, कि उसके थाल मे बाहर से आकर एक तीर गिरा। तीर की नोक पर एक कागज का पुर्जा लिपटा हुआ था। सारन्धा ने थाल मन्दिर के चबूतरे पर रख दिया और पुर्जे को खोलकर देखा, तो आनन्द से चेहरा खिल गया, लेकिन यह आनन्द क्षण-भर का मेहमान था। हाय ! इस पुर्जे के लिये मैंने अपना प्रिय पुत्र हाथ से खो दिया है। कागज के टुकडे को इतने महँगे दामों किसने लिया होगा ?

मन्दिर से लौटकर सारन्धा राजा चम्पतराय के पास गई और बोली—प्राणनाथ ! आपने जो वचन दिया था, उसे पूरा कीजिये। राजा ने चौंककर पूछा—तुमने अपना वादा पूरा कर लिया ? रानी ने वह प्रतिज्ञा-पत्र राजा को दे दिया। चम्पतराय ने उसे गौरव से देखा, फिर बोले—अब मै चलूँगा और ईश्वर ने चाहा, तो एक बेर फिर शत्रुओं की खबर लूँगा, लेकिन सारन ! सच बताओ, इस पत्र के लिये क्या देना पडा ?

रानी ने कुण्ठित स्वर से कहा—बहुत कुछ।

राजा—सुनूँ ?

रानी—एक जवान पुत्र।

राजा को बाण-सा लगा। पूछा—कौन ? अंगदराय ?

रानी—नही।

राजा रतनसाह ?

रानी—नहीं।

राजा—छत्रसाल ?

रानी—हाँ।

जैसे कोई पक्षी गोली खाकर परों को फड़फड़ाता है और तब बेदम होकर गिर पड़ता है, उसी भाँति चम्पतराय पलँग से उछले और फिर अचेत होकर गिर पड़े। छत्रसाल उनका परमप्रिय पुत्र था। उनके भविष्य की सारी कामनाएं उसी पर अवलम्बित थीं। जब चेत हुआ तो बोले—सारन, तुमने बुरा किया, अगर छत्रसाल मारा गया, तो बुँदेला-वंश का नाश हो जायगा।

अँधेरी रात थी। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार चम्पतराय को पालकी में बैठाये किले के गुप्त मार्ग से निकली जाती थी। आज से बहुत काल पहले जब एक दिन ऐसी ही अँधेरी, दुःखमय रात्रि थी, तब सारन्धा ने शीतलादेवी को कुछ कठोर वचन कहे थे। शीतलादेवी ने उस समय जो भविष्यद्वाणी की थी, वह आज पूरी हुई। क्या सारन्धा ने उसका जो उत्तर दिया था, वह भी पूरा होकर रहेगा ?

(९)

मध्याह्न था। सूर्यनारायण सिर पर आकर अग्नि की वर्षा कर रहे थे। शरीर को झुलसानेवाली प्रचण्ड, प्रखर वायु, बन और पर्वतों में आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था, मानो अग्निदेव की समस्त सेना गरजती हुई चली आ रही है। गगन-मण्डल इस भय से काँप रहा था। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार,

चम्पतराय को लिये, पच्छिम की तरफ चली जाती थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट चुका था, और प्रतिक्षण यह अनुमान स्थिर होता जाता कि अब हम भय के क्षेत्र से बाहर निकल आये। राजा पालकी मे अचेत पडे हुए थे और कहार पसीने मे शराबोर थे। पालकी के पीछे पाँच सवार घोडा बढाये चले आते थे, प्यास के मारे सबका बुरा हाल था। तालू सूखा जाता था। किसी वृक्ष की छाँह और कुएँ की तलाश मे आँखे चारो ओर दौड़ रही थी।

अचानक सारन्धा ने पीछे की तरफ फिरकर देखा, तो उसे सवारो का एक दल आता हुआ दिखाई दिया। उसका माथा ठनका कि अब कुशल नही है। ये लोग अवश्य हमारे शत्रु हैं। फिर विचार हुआ कि शायद मेरे राजकुमार अपने आदमियों को लिए हमारी सहायता को आ रहे है। नैराश्य मे भी आशा साथ नही छोडती। कई मिनट तक वह इसी आशा और भय की अवस्था मे रही। यहाँ तक कि वह दल निकट आ गया और सिपाहियों के वस्त्र साफ नजर आने लगे। रानी ने एक ठण्ढी साँस ली, उसका शरीर तृणवत काँपने लगा। यह बादशाही सेना के लोग थे।

सारन्धा ने कहारों से कहा—डोली रोक लो। बुँदेला सिपाहियों ने भी तलवारे खीच लीं। राजा की अवस्था बहुत शोचनीय थी; किन्तु जैसे दबी हुई आग हवा लगते ही प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार इस सकट का ज्ञान होते ही उनके सर्जर शरीर मे वीरात्मा चमक उठी। वे पालकी का पर्दा उठाकर बाहर निकल आये। धनुष-बाण हाथ मे ले लिया; किन्तु वह धनुष, जो उनके हाथ में

इन्द्र का वज्र बन जाता था, इस समय जरा भी न झुका। सिर मे चक्कर आया, पैर थर्राये और वे धरती पर गिर पडे। भावी अमगल की सूचना मिल गई, उस पख-रहित पक्षी के सदृश, जो साँप को अपनी तरफ आते देखकर ऊपर को उचकता और फिर गिर पडता है। राजा चम्पतराय फिर सँभल कर उठे और फिर गिर पडे। सारन्धा ने सँभालकर बैठाया, और रोकर बोलने की चेष्टा की, परन्तु मुँह से केवल इतना निकला—प्राणनाथ!— इसके आगे उसके मुँह से एक शब्द भी न निकल सका। आनपर मरनेवाली सारन्धा इस समय साधारण स्त्रियों की भाँति शक्तिहीन हो गई, लेकिन एक अक तक यह निर्बलता स्त्री जाति की शोभा है।

चम्पतराय बोले—सारन! देखो हमारा एक और वीर ज़मीन पर गिरा। शोक! जिस आपत्ति से यावज्जीवत डरता रहा, उसने इस अन्तिम समय आ घेरा। मेरी आँखों के सामने शत्रु तुम्हारे कोमल शरीर मे हाथ लगायेंगे, और मै जगह से हिल भी न सकूँगा। हाय! मृत्यु तू कब आयगी! यह कहते-कहते उन्हे एक विचार आया। तलवार की तरफ हाथ बढाया, मगर हाथों में दम न था। तब सारन्धा से बोले—प्रिये! तुमने कितने ही अवसरों पर मेरी आन निभाई है।

इतना सुनते ही सारन्धा के मुरझाये हुये मुखपर लाली दौड गई, आँसू सूख गये। इस आशा ने कि मै अब भी पति के कुछ काम आ सकती हूँ, उसके हृदय मे बल का सचार कर दिया। वह

राजा की ओर विश्वासोत्पादकभाव से देखकर बोली—ईश्वर ने चाहा, तो मरते दमतक निवाहूँगी।

रानी ने समझा, राजा मुझे प्राण दे देने का संकेत कर रहे हैं

चम्पयराम—तुमने मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारन्धा—मरते दम तक न टालूँगी।

राजा—यह मेरी अन्तिम याचना है। इसे अस्वीकार न करना।

सारन्धा ने तलवार को निकाल कर अपने वक्षस्थल पर रख लिया और कहा—यह आप की आज्ञा नहीं है, मेरी हार्दिक अभिभाषा है कि मरूँ, तो यह मस्तक आप के पदकमलों पर हो।

चम्पतराय—तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। क्या तुम मुझे इसलिये शत्रुओं के हाथ में छोड जाओगी कि मै बेडियाँ पहने हुए दिल्ली की गलियों मे निन्दा का पात्र बनूँ?

रानी ने जिज्ञासा-दृष्टि से राजा को देखा। वह उनका मतलब न समझी।

राजा—मैं तुमसे एक वरदान माँगता हूँ।

रानी—सहर्ष माँगिये।

राजा—यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूँगा, करोगी?

रानी—सिर के बल करूँगी।

राजा—देखो, तुमने वचन दिया है। इनकार न करना।

रानी—(काँपकर) आपके कहने की देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छाती मे चुभा दो।

रानी के हृदय पर वज्रपात-सा हो गया। बोली—जीवन-

नाथ!—इसके आगे वह और कुछ न बोल सकी—आँखों मे नैराश्य छा गया।

राजा—मै बेडियाँ पहनने के लिये जीवित रहना नही चाहता।

रानी—हाय मुझसे यह कैसे होगा।

पाँचवाँ और अन्तिम सिपाही धरती पर गिरा। राजा ने झुँझलाकर कहा—इसी जीवट पर आन निभाने का गर्व था?

बादशाह के सिपाही राजा की तरफ लपके। राजा ने नैराश्य-पूर्ण भाव से रानी की ओर देखा। रानी क्षण भर अनिश्चित-रूप से खडी रही, लेकिन सकट मे हमारी निश्चयात्मक शक्ति बल-वान् हो जाती है। निकट था कि सिपाही लोग राजा को पकड लें कि सारन्धा ने दामिनी की भाँति लपक कर अपनी तलवार राजा के हृदय मे चुभा दी!

प्रेम की नाव प्रेम के सागर मे डूब गई। राजा के हृदय से रुधिर की धारा निकल रही थी, पर चेहरे पर शान्ति छाई हुई थी, कैसा करुण दृश्य है! वह स्त्री जो अपने पति पर प्राण देती थी, आज उसकी प्राणघातिका है। जिस हृदय से अलिङ्गित होकर उसने यौवन-सुख लूटा, जो हृदय उसकी अभिलाषाओं का केन्द्र था, जो हृदय उसके अभिमान का पोपक था, उसी हृदय को आज सारन्धा की तलवार छेद रही है। किस स्त्री की तलवार से ऐसा काम हुआ है!

आह! आत्मभिमान का कैसा विषादमय अन्त है। उदयपुर और मारवाड़ के इतिहास मे भी आत्म-गौरव की ऐसी घटनाएँ नही मिलतीं।

बादशाही सिपाही सारन्धा का यह साहस और धैर्य्य देखकर दंग रह गये। सरदार ने आगे बढ़कर कहा—रानी साहबा! खुदा गवाह है, हम सब आपके गुलाम हैं। आपका जो हुक्म हो, उसे ब-सरो-चश्म बजा लायेंगे।

सारन्धा ने कहा—अगर हमारे पुत्रों में से कोई जीवित हो, तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।

यह कहकर उसने वही तलवार अपने हृदय में चुभा ली। जब वह अचेत होकर धरती पर गिरी, तो उसका सिर राजा चम्पतराय की छाती पर था।

(४) आत्माराम

(१)

दो ग्राम में महादेव सोनार एक सुविख्यात आदमी था। वह अपने सायबान में प्रातः से सन्ध्या तक अँगीठी के सामने बैठा हुआ खटखट किया करता था। यह लगातार ध्वनि सुनने के लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारण वह बन्द होजाती, तो जान पडता था, कोई चीज़ गायब हो गई है। वह नित्य-प्रति एक बार प्रातःकाल अपने तोते का पिंजरा लिये कोई भजन गाता हुआ तालाब की ओर जाता था। उस धुँधले प्रकाश में उसका जर्जर शरीर, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर देखकर किसी अपरिचित मनुष्य को उसके पिशाच होने का भ्रम हो सकता था। ज्योंही लोगों के कानों में आवाज़ आती—'सत्त गुरु-दत्त शिवदत्त दाता' लोग समझ जाते कि भोर हो गया।

महादेव का पारिवारिक जीवन सुखमय न था। उसके तीन पुत्र थे, तीन बहुएँ थीं, दर्जनों नाती-पोते थे, लेकिन उसके बोझ को हल्का करनेवाला कोई न था। लड़के कहते—जब तक दादा

जीते है, हम जीवन का आनन्द भोग ले, फिर तो यह ढोल गले पडेहीगा। वेचारे महादेव को कभी-कभी निराहार ही रहना पड़ता। भोजन के समय उसके घर मे साम्यवाद का ऐसा गगनभेदी निर्घोष होता कि वह भूखा ही उठ आता और नारियल का हुक्का पीता हुआ सो जाता। उसका व्यवसायिक जीवन और भी अशान्तिकारक था। यद्यपि वह अपने काम मे निपुण था, उसकी खटाई औरों से कही ज्यादा शुद्धिकारक और उसकी रासायनिक क्रियाएँ कही ज्यादा कष्टसाध्य थी, तथापि उसे आये-दिन शक्की और धैर्यशून्य प्राणियों के अपशब्द सुनने पडते थे, पर महादेव अविचलित गाम्भीर्य्य से सिर झुकाये सब कुछ सुना करता। ज्योंही यह कलह शान्त होता, वह अपने तोते की ओर देखकर पुकार उठता—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।' इस मन्त्र के जपते ही उसके चित्त को पूर्ण शांति प्राप्त हो जाती थी।

(२)

एक दिन संयोगवश किसी लडके ने पिंजरे का द्वार खोल दिया। तोता उड गया। महादेव ने सिर उठाकर जो पिंजरे की ओर देखा, तो उसका कलेजा सन्न-से हो गया। तोता कहाँ गया! उसने फिर पिंजरे को देखा, तोता गायब था। महादेव घबराकर उठा और इधर-उधर खपरैलों पर निगाह दौड़ाने लगा। उसे ससार मे कोई वस्तु प्यारी थी, तो वह यही तोता था। लडके-बालों, नाती-पोतों से उसका जी भर गया था। लड़कों की चुल-बुल से उसके काम में विघ्न पड़ता था; बेटों से उसे प्रेम न था,

इसलिये नहीं कि वे निकम्मे थे , बल्कि इसलिये कि इनके कारण वह अपने आनन्ददायी कुल्हड़ों की नियमित संख्या से वंचित रह जाता था। डोमियों से उसे चिढ थी , इसलिये कि वह उसकी अँगीठी से आग निकाल ले जाते थे। इस समस्त विघ्न-बाधाओं से उसके लिये कोई पनाह थी, तो वह यही तोता था। इससे उसे किसी प्रकार का कष्ट न होता था। वह अब उस अवस्था मे था, जब मनुष्य को शान्ति-भोग के सिवा और कोई इच्छा नहीं रहती।

तोता एक खपरैल पर बैठा था। महादेव ने पिंजरा उतार लिया और उसे दिखाकर कहने लगा—'आ, आ, सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।' लेकिन गाँव और घर के लड़के एकत्र होकर चिल्लाने और तालियाँ बजाने लगे, ऊपर से कौवों ने काँव-काँव की रट लगाई। तोता उड़ा और गाँव से बाहर निकलकर एक पेड़ पर जा बैठा। महादेव खाली पिंजरा लिये उसके पीछे दौड़ा, हाँ दौड़ा। लोगों को उसकी द्रुतगामिता पर अचंभा हो रहा था। मोह की इससे सुन्दर, इससे सजीव, इससे भावमय कल्पना नहीं की जा सकती।

दोपहर हो गया था। किसान लोग खेतों से चले आ रहे थे, उन्हें विनोद का अच्छा अवसर मिला। महादेव को चिढ़ाने मे सभी को मजा आता था, किसी ने कंकर फेंके, किसी ने तालियाँ बजाई, तोता फिर उड़ा और यहाँ से दूर आम के बाग मे एक पेड़ की फुनगी पर जा बैठा। महादेव फिर खाली पिंजरा लिये मेढक की भाँति उचकता हुआ चला। बाग मे पहुँचा, तो पैर के

तलुओं से आग निकल रही थी, सिर चक्कर खा रहा था। जब जरा सावधान हुआ, तो फिर पिंजरा उठाकर कहने लगा, 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।' तोता फुनगी से उतरकर नीचे की एक डाल पर आ बैठा, किन्तु महादेव की ओर सशंक नेत्रों से ताक रहा था। महादेव ने समझा—डर रहा है। वह पिंजरे को छोड़कर आप एक दूसरे पेड़ की आड़ में छिप गया। तोते ने चारों ओर गौर से देखा, निश्शंक हो गया, उतरा और आकर पिंजरा के ऊपर बैठ गया। महादेव का हृदय उछलने लगा। 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त' का मंत्र जपता हुआ धीरे-धीरे तोते के समीप आया, और लपका कि तोते को पकड़ ले, किन्तु तोता हाथ न आया, फिर पेड़ पर जा बैठा।

साँझ तक यही हाल रहा। तोता कभी इस डाल पर जाता, कभी उस डाल पर। कभी पिंजरे पर आ बैठता, कभी पिंजरे के द्वार पर बैठ अपने दाना-पानी की प्यालियों को देखता, फिर उड़ जाता। बुड्ढा अगर मूर्तिमान मोह था; तो तोता मूर्तिमती माया। यहाँ तक कि शाम हो गई, माया और मोह का यह संग्राम अंधकार में विलीन हो गया।

(३)

रात हो गई। चारों ओर निबिड़ अन्धकार छा गया। तोता न-जाने पत्तों में कहाँ छिपा बैठा था। महादेव जानता था कि रात को तोता कहीं उड़कर नहीं जा सकता और न पिंजरे ही में आ सकता है, तिस पर भी वह इस जगह से हिलने का नाम न

लेता था। आज उसने दिन भर कुछ नही खाया, रात के भोजन का समय भी निकल गया, पानी की एक बूँद भी उसके कंठ मे न न गई, लेकिन उसे न भूख थी न प्यास। तोते के बिना उसे अपना जीवन निस्सार, शुष्क और सूना जान पडता था। वह दिन-रात काम करता था, इसलिये कि यह उसकी अंतःप्रेरणा थी, जीवन के और काम इसलिये करता था कि आदत थी। इन कामों मे उसे अपनी सजीविता का लेशमात्र भी ज्ञान न होता था। तोता ही वह वस्तु था, जो उस चेतना की याद दिलाता था। उसका हाथ से जाना जीव का देहत्याग करना था।

महादेव दिन-भर का भूखा-प्यासा, थका-माँदा, रहरहकर, झप-कियाँ ले लेता था, किन्तु एक क्षण मे फिर चौंककर आँख खोल देता और उस विस्तृत अंधकार मे उसको आवाज सुनाई देती— 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।'

आधीरात गुजर गई थी। सहसा वह कोई आहट पाकर चौंका, तो देखा कि दूसरे एक वृक्ष के नीचे एक धुँधला दीपक जल रहा है और कई आदमी बैठे हुए आपस मे कुछ बाते कर रहे है। वह सब चिलम पी रहे थे। तमाखू की महक ने उसे अधीर कर दिया। उच्च स्वर से बोला—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' और उन आदमियों की ओर चिलम पीने चला, किन्तु जिस प्रकार बन्दूक की आवाज सुनते ही हिरन भाग जाते हैं, उसी प्रकार उसे आते देख वह सब-के-सब उठ कर भागे। कोई इधर गया, कोई उधर। महादेव चिल्लाने लगा—'ठहरो—ठहरो।' एकाएक उसे

ध्यान आ गया, यह सब चोर है। वह जोर से चिल्ला उठा—'चोर चोर, पकडो, पकडो !'—चोरों ने पिछे फिरकर भी न देखा।

महादेव दीपक के पास गया, तो उसे एक कलशा रखा हुआ मिला। मोरचे से काला हो रहा था। महादेव का हृदय उछलने लगा। उसने कलशे मे हाथ डाला तो मोहरे थी। उसने एक मोहर बाहर निकाली और दीपक के उजाले मे देखा—हाँ, मोहर थी। उसने तुरन्त कलशा उठा लिया, दीपक बुझा दिया और पेड़ के नीचे छिपकर बैठ रहा। साहु से चोर बन गया।

उसे फिर शका हुई, ऐसा न हो चोर लौट आये और मुझे अकेला देखकर मोहरे छीन ले। उसने कुछ मोहरे कमर मे बाँधी, फिर एक सूखी लकडी से जमीन की मिट्टी हटाकर कई गड्ढे बनाए, उन्हे मोहरों से भरकर मिट्टी से ढक दिया।

(४)

महादेव के अन्त:नेत्रों के सामने अब एक दूसरा ही जगत् था, चिन्ताओ और कल्पनाओ से परिपूर्ण। यद्यपि अभी कोप के हाथ से निकल जानेका भय था, पर अभिलाषाओं ने अपना काम शुरु कर दिया। एक पक्का मकान बन गया, सराफे की एक भारी दूकान खुल गई, निज सम्बन्धियों से फिर नाता जुड गया, विलास की सामग्रियाँ एकत्र हो गई, तब तीर्थयात्रा करने चले और वहाँ से लौटकर बड़े समारोह से यज्ञ-ब्रह्मभोज हुआ। इसके पश्चात् एक शिवालय और कुआँ बन गया, एक उद्यान भी आरो-

पित हो गया और वहाँ वह नित्यप्रति कथा पुराण सुनने लगा साधु-सन्तों का आदर-सत्कार होने लगा।

अकस्मात् उसे ध्यान आया, कहीं चोर आजाय तो मै भागूँगा क्योंकर। उसने परीक्षा करने के लिए कलशा उठाया और दो सौ पग तक बेतहाशा भागा हुआ चला गया। जान पडता था, उसके पैरों में पर लग गये है। चिन्ता शान्त हो गई। इन्हीं कल्पनाओं मे रात व्यतीत होगई। उषा का आगमन हुआ, हवा जगी, चिडियाँ गाने लगी। सहसा महादेव के कानों मे आवाज़ आई—

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरन में चित्त लागा।'

यह बोल सदैव महादेव की जिह्वा पर रहता था, दिन मे सहस्रों ही बार ये शब्द उसके मुख से निकलते थे, पर उसका धार्मिक भाव कभी उसके अन्तःकरण को स्पर्श न करता था। जैसे किसी बाजे से राग निकलता है, उसी प्रकार उसके मुँह से यह बोल निकलता था, निरर्थक और प्रभावशून्य। तब उसका हृदय-रुपी वृक्ष पत्र-पल्लव-विहीन था। यह निर्मल वायु उसे गुंजरित न कर सकती थी; पर अब उस वृक्ष मे कोपलें और शाखाएँ निकल आई थीं। इस वायु-प्रवाह से वह झूम उठा—गुंजित हो गया।

अरुणोदय का समय था। प्रकृति एक अनुरागमय प्रकाश मे डूबी हुई थी। उसी समय तोता परों को जोड़े ऊँची डाली से उतरा, जैसे आकाश से कोई तारा टूटे, और आकर पिंजरे मे बैठ

गया। महादेव प्रफुल्लित होकर दौड़ा और पिंजरे को उठा कर बोला—आओ आत्माराम, तुमने कष्ट तो बहुत दिया; पर मेरा जीवन भी सुफल कर दिया। अब तुम्हे चाँदी के पिंजरे मे रक्खूँगा और सोने से मढ दूँगा—उसके रोम-रोम से परमात्मा के गुणानुवाद की ध्वनि निकलने लगी। प्रभु तुम कितने दयावान हो, यह तुम्हारा असीम वात्सल्य है, नहीं तो मुझ-जैसा पापी पतित प्राणी, कब इस कृपा के योग्य था। इन पवित्र भावों से उसकी आत्मा विह्वल हो गई, वह अनुरक्त होकर बोल उठा—

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्तदाता'
राम के चरण में चित्त लागा।'

उसने एक हाथ मे पिंजरा लटकाया, बगल मे कलशा दबाया और घर चला।

(५)

महादेव घर पहुँचा, तो अभी कुछ अँधेरा था। रास्ते मे एक कुत्ते के सिवाय और किसी से भेट न हुई और कुत्ते को मोहरों से विशेष प्रेम नहीं होता। उसने कलशे को एक नाँद मे छिपा दिया और उसे कोयले से अच्छी तरह ढक कर अपनी कोठरी मे रख आया। जब दिन निकल आया, तो वह सीधे पुरोहित जी के घर जा पहुँचा पुरोहित जी पूजा पर बैठे सोच रहे थे—कल ही मुकदमे मे की पेशी है और अभी तक हाथ मे कौड़ी भी नहीं, जजमानो मे कोई साँस भी नहीं लेता। इतने मे महादेव ने पालागन किया।

पण्डित जी ने मुँह फेर लिया, यह अमंगलमूर्ति कहाँ से आ पहुँची, मालूम नहीं दाना भी मयस्सर होगा या नही। रुष्ट होकर पूछा—क्या है जी, क्या कहते हो, जानते नही कि हम इस बेला पूजा पर रहते है?—महादेव ने कहा—महाराज आज मेरे यहाँ सत्य-नारायन की कथा है।

पुरोहित जी बिस्मित हो गये, कानों पर विश्वास न हुआ। महादेव के घर कथा होना उतनी ही असाधारण घटना थी, जितनी अपने घर से किसी भिखारी के लिये भीख निकालना। पूछा—आज क्या है?

महादेव बोला—कुछ नही, ऐसी ही इच्छा हुई कि आज भगवान् की कथा सुन लूँ।

प्रभात ही से तैयारी होने लगी। बेदो और अन्य निकटवर्ती गावों मे सुपारी फिरी। कथा के उपरान्त भोज का भी नेवता था जो सुनता आश्चय करता—यह आज रेत मे दूब कैसे जमी!

सध्या समय जब सब लोग जमा हो गये, पडित जी अपने सिंहासन पर विराज मान हुए, तो महादेव खडा होकर उच्चस्वर से बोला—भाइयो, मेरी सारी उम्र छल-कपट मे कट गई। मैंने न-जाने कितने आदमियों को दगा दिया, कितना खरे को खोटा किया; पर अब भगवान ने मुझपर दया की है, वह मेरे मुँह की कालिख को मिटाना चाहते है। मैं आप सभी भाइयों से ललकार कर कहता हूँ कि जिसका मेरे जिम्मे जो कुछ आता हो, जिसकी जमा मैंने मार ली हो, जिसके चोखे माल को खोटा कर दिया हो, वह

आकर अपनी एक-एक कौड़ी चुका ले, अगर कोई यहाँ न आ सका हो, तो आप लोग उससे जाकर कह दीजिये, कलसे एक महीने तक जब जी चाहे आवे और अपना हिसाब चुकता कर ले। गवाही-साखी का काम नहीं।—सब लोग सन्नाटे मे आ गये। कोई मार्मिक भाव से सिर हिलाकर बोला—हम कहते न थे? किसी ने अविश्वास से कहा—क्या खाके भरेगा! हजारों का टोटल हो जायगा।

एक ठाकुर ने ठठोली की—और जो लोग सुरधाम चले गये?

महादेव ने उत्तर दिया—उनके घरवाले तो होंगे।

किन्तु इस समय लोगों को वसूली की इतनी इच्छा न थी, जितनी यह जानने की कि इसे इतना धन मिल कहाँ से गया। किसी को महादेव के पास आने का साहस न हुआ। देहात के आदमी थे, गड़े मुर्दे उखाडना क्या जाने। फिर प्रायः लोगों को याद भी न था कि उन्हे महादेव से क्या पाना है और ऐसे पवित्र अवसर पर भूल-चूक हो जाने का भय उनका मुँह बन्द किये हुए था। सबसे बडी बात यह थी कि महादेव की साधुता ने उन्हे वशीभूत कर लिया था।

अचानक पुरोहितजी बोले—तुम्हे याद है, मैंने तुम्हे एक कंठा बनाने के लिए सोना दिया था और तुमने कई माशे तौल मे उडा दिये थे।

महादेव—हाँ याद है, आपका कितना नुकसान हुआ होगा?

पुरोहित—५०) से कम न होगा।

महादेव ने कमर से दो मोहरें निकालीं और पुरोहितजी के सामने रख दीं।

पुरोहित की लोलुपता पर टीकायें होने लगीं। यह बेईमानी है, बहुत तो दो-चार रुपये का नुकसान हुआ होगा। बेचारे से ५०) एठ लिये। नारायण का भी डर नही। बनने को पडित, पर नीयत ऐसी खराब ! राम राम !

लोगों को महादेव से एक श्रद्धा-सी हो गई। एक घटा बीत गया; पर उन सहस्रों मनुष्यों मे से एक भी न खड़ा हुआ। तब महादेव ने फिर कहा—मालूम होता है, आप लोग अपना-अपना हिसाब भूल गये है; इसलिये आज कथा होने दीजिये, मैं एक महीने तक आपकी राह देखूँगा। इसके पीछे तीर्थ-यात्रा करने चला जाऊँगा। आप सब भाइयों से मेरी विनती है कि आप मेरा उद्धार करे।

एक महीने तक महादेव लेनदारों की राह देखता रहा। रात को चोरों के भय से नीद न आती। अब वह कोई काम न करता। शराब का चसका भी छूटा। साधु-अभ्यागत जो द्वार पर आ जाते, उनका यथायोग्य सत्कार करता। दूर-दूर उसका सुयश फैल गया। यहाँ तक कि महीना पूरा हो गया और एक आदमी भी हिसाव चुकाने न आया। अब महादेव को ज्ञात हुआ कि ससार मे कितना धर्म, कितना सद्व्यवहार है। अब उसे मालूम हुआ कि ससार बुरों के लिये बुरा है; पर अच्छों के लिये अच्छा है।

(६)

इस घटना को हुए ५० वर्ष बीत चुके है। आप बेदो जाइये, तो

दूर ही से एक सुनहला कलश दिखाई देता है। यह ठाकुरद्वारे का कलश है। उससे मिला हुआ एक पक्का तालाब है, जिसमे खूब कमल खिले रहते है। उसकी मछलियाँ कोई नही पकडता। तालाब के किनारे एक विशाल समाधि है। यही आत्माराम की स्मृति-चिह्न है। उनके सम्बन्ध मे विभिन्न किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं। कोई कहता है—उनका रत्नजटित पिंजरा स्वर्ग को चला गया; कोई कहता है—वह 'सत्त गुरुदत्त' कहते हुए अतर्धान हो गये, पर यथार्थ यह है कि उस पक्षीरूपी चन्द्र को किसी बिल्ली रूपी राहु ने ग्रस लिया। लोग कहते हैं, आधी रात को अभी तक तालाब के किनारे आवाज आती है—

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरन में चित्त लागा।'

महादेव के विषय मे भी कितनी जन-श्रुतियाँ हैं। उनमे सबसे मान्य यह है कि आत्माराम के समाधिस्थ होने के बाद वह कई सन्यासियों के साथ हिमालय चले गये और वहाँ से लौटकर न आये। उनका नाम आत्माराम प्रसिद्ध हो गया।

५—श्रीपदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बी० ए०

आप मध्यप्रदेश के निवासी और प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक है। आपकी शैली बहुत ही प्रौढ विचार-शील और कटाक्ष-पूर्ण है। आपने प्राच्य और पाश्चात्य-साहित्य का गहरा अध्ययन किया है। 'साहित्य-विमर्श' मे आपने ससार-साहित्य की मार्मिक विवेचना की है। आप सुकवि भी हैं।

कमलावती

---

(१)

स्तम !”

“जनाब !”

“क्या यह वही स्थान है ?”

“जी हाँ, यह वही गुर्ज्जर-प्रदेश है ।”

“रुस्तम ! क्या सत्य ही यह गुर्ज्जर-प्रदेश है ? क्या हम लोगों ने इसी को ध्वंस करने का विचार किया है ? क्या इसी के लिये हमने यह छद्म-वेप रचा है ? रुस्तम ! सच कहो, क्या यही समुद्र-मेखला, गिरि-किरीटिनी, गुर्ज्जर-भूमि है ?”

“हुजूर जो अनुमान करते है वह सत्य है। कृष्ण-वर्ण छाया के सदृश सम्मुख जो देख पडती है वही गुर्ज्जर की तटभूमि है।”

“रुस्तम, इन पर्वत-श्रेणियों की शोभा तो देखो, कितने ऊँचे है ! जान पडता है कि गगन-नीलिमा को स्पर्श करने के लिये ये गर्व भाव से इतने उन्नत हो गये हैं। कैसा अलौकिक सौन्दर्य है ! ऐसा दृश्य हमने अफगानिस्थान मे कभी नही देखा था। रुस्तम, यह स्वर्ग-भूमि तो नही है ? इसके मलय-प्रवाह मे कैसी संजीविनी शक्ति है ! चन्द्र-ज्योत्स्ना कैसी उज्ज्वल और स्निग्ध है।”

किया। दो दिन समुद्र मे बिताकर तीसरे दिन ये सोमनाथ-बन्दर पहुँच गये।

नाव खडी की गई। सब उतरे। रुस्तम ने माँझियों को एक सुवर्ण-मुद्रा दी। वह मुद्रा गुजरात की ही थी, जो पहले से प्राप्त कर ली गई थी। माँझी गण विदा हुए और ये लोग भी पाषाण-खण्डों पर बैठकर विश्राम करने लगे।

समीप मे ही सोमनाथ का मन्दिर था। उसके स्वर्ण-मण्डित शिखर पर चन्द्र-रश्मि के पड़ने के कारण एक अपूर्व शोभा होती थी। वह शोभा अनिर्वचनीय थी।

क्रमश सन्ध्या बढने लगी। आरती का समय आया। भगवान् सोमनाथ की आरती होने लगी। दमामा और घटों की ध्वनि मिलकर एक गम्भीर नाद उत्पन्न करती थी। वह नाद समुद्र के भीषण गर्जन से मिलकर आकाश-मडल को कँपा देता था। आरती हो जाने पर वेद-पाठी ब्राह्मण सुमधुर स्वर से सोमनाथ की स्तुति करने लगे। निशा की निस्तब्धता को भगकर वह स्वर क्रमश पवन मे फैलने लगा। उस मधुर स्वर से चन्द्रालोक-प्लावित पृथ्वीतल पुलकायमान हो उठा।

शाह जमाल स्थिर दृष्टि से उधर ही देख रहा था। वह न जाने क्या सोचता था।

रुस्तम बोला—हुजूर की क्या मरजी है? चलिये, किसी मुसाफिरखाने में चलकर ठहरे। हमें अपनी चिन्ता नहीं है, पर आप को कष्ट न हो। सुलतान ने हमे यही आज्ञा दी है।

जमालखाँ ने विरक्त होकर कहा—चुप, चुप, रुस्तम ! सुलतान का नाम लेने की क्या जरूरत है ? जानते नहीं हो, हम लोग कहाँ है ?—रुस्तम चुप हो गया। भूल उसी की थी।

जमालखाँ ने कहा—रुस्तम, कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। क्या नगर मे इससे अच्छा स्थान मिलेगा ? हम लोग यहीं विश्राम करेंगे। इधर देखो, क्या वे सब तारे है ? अहो, क्या इस देश के तारों मे इतना वर्ण-वैचित्र्य है ? देखो तो सही, नीले, पीले, लाल और श्वेत तारागणों से, इस नभ-मण्डल की कैसी शोभा हो रही है !

रुस्तम—जनाब, आप भूल करते हैं। ये तारे नहीं, सोमनाथ के मन्दिर-शिखर मे लगे हुए रत्न है।

जमाल—हाँ, सोमनाथ का क्या इतना ऐश्वर्य !

रुस्तम—जनाब, सोमनाथ का ऐश्वर्य विश्व-विश्रुत है।

जमाल—जब बाहर इतना है, तब भीतर न-जाने कितना होगा ! पर रुस्तम, सच कहो, ऐसा कभी तुमने कहीं देखा भी था ? ऊपर आकाश मे चन्द्र की निर्मल ज्योति, नीचे उसी विमल ज्योति से प्लावित मन्दिर-चूडा मे स्थित रत्नो की ज्योति ! रुस्तम, क्या कही और भी ऐसा होगा ? मै गुर्ज्जर की यह नैसर्गिक शोभा देखकर मुग्ध हो गया।

रुस्तम—जनाब, और कहीं आप ऐसा न देखियेगा। सुलतान इसीलिये तो हस्तगत करना चाहते हैं और छद्म-वेष धारण कर हम लोगों के यहाँ आने का प्रयोजन भी यही है।

जमालखाँ ने एक दीर्घ नि:श्वास लेकर कहा—रुस्तम, क्या कहते हो? हम लोग इस सुन्दर देश को नष्ट करेंगे? इस स्वर्ण-भूमि को ध्वंस करेंगे? अग्नि-दाह कर इस नन्दन-कानन को भस्म करेंगे? क्या खुदा ने इसीलिये इसको इतनी शोभा-सम्पत्ति दी है? क्या हम लोग इस शान्ति-मय देश को शोणित-मय करेंगे? नहीं, नहीं। रुस्तम, ऐसा कभी नहीं होगा। हम ऐसा कदापि नहीं करेंगे।

रुस्तमखाँ घोर हिन्दू-द्वेषी, सुलतान का उपयुक्त सेनापति था। वह यह बात सुन नहीं सका, पर करता क्या? धीरे से बोला—आखिर आपका मन्सूबा क्या है?

जमालखाँ—यह तो हमने पहले ही बतला दिया। रुस्तम, जिस विजय-वासना ने सुलतान के हृदय को पाषाण बना दिया है, जिसके कारण उन्होंने भारत को आज ध्वंस कर डाला है, खुदा की पवित्र-भूमि में रक्त-प्रवाह बहाया है, जिसके कारण भारत आज श्मशान हो गया है, वह दुर्दमनीय वासना हमारे हृदय में नहीं है। मैं अफगानिस्थान के पार्वत्य राज्य से ही सन्तुष्ट हूँ, मुझे यह ऐश्वर्य्य नहीं चाहिये। मैं सच कहता हूँ, मुझसे इस सौन्दर्य्य-शालिनी भूमि के सर्वनाश का कार्य्य नहीं बनेगा।

रुस्तम ने गम्भीर स्वर से कहा—जनाब, आप कहते क्या हैं? आते समय सुलतान ने आपको यह तलवार दी थी, इसे स्पर्श कर आपने सुलतान की आज्ञा-पालन करने की प्रतिज्ञा की थी। क्या आप अपनी तलवार की गौरव-रक्षा नहीं करेंगे?

जमाल—रुस्तम, स्वाधीन अफगानिस्थान मेरी जन्म-भूमि है और मै एक स्वाधीन नराधिप के क्रोड मे आजन्म परिपालित हुआ हूँ। वह स्वाधीनता मै नही छोड़ सकता। सुलतान को मैने अपनी देह बेच दी, पर अपने विवेक को नहीं बेचा है। इस देह पर सुलतान का पूरा अधिकार है, पर मेरा विवेक स्वाधीन है। उस पर सुलतान का कोई अधिकार नहीं है। सुलतान चाहे, तो अभी मैं उनके लिये प्राण दे दूँ और वे इस प्राण-विहीन देह को लेकर कुत्तों के सामने डाल दें, पर मैं अपने विवेक के विरुद्ध काम नही करूँगा। रुस्तम, तुम यह तलवार ले लो, इसे सुलतान के पैरों के नीचे डालकर कहना, कि जमाल अब अफगानिस्थान को नहीं लौटेगा। वह अब स्वाधीन है। वे उसके अपराध की मार्जना करें, यही उसका अन्तिम अनुरोध है।

यह कहकर शाह जमाल ने रुस्तम की ओर देखा। रुस्तम चुप था। जमालख़ ने फिर कहना शुरू किया—रुस्तम, चुप क्यों हो? क्या तुम्हारे हृदय में पीडा नही होती? तुम भी वीर-श्रेष्ठ, स्वाधीनता की गोद वर्द्धित, तेजस्वी अफगान हो; हाय! यह क्या करते हो? रुस्तम! उस दिन का स्मरण क्यों नहीं करते, जब तुमने अपने अपूर्व साहस से सुलतान की प्राण-रक्षा की थी और जब सुलतान ने कृतज्ञ होकर तुम्हे पुरस्कार देना चाहा था? याद है, तब तुमने क्या कहा था? 'जनाब, बन्दा आपकी प्रजा है। प्रजा का कर्तव्य है, राजा की रक्षा करना। पुरस्कार का कोई प्रयोजन नहीं।' रुस्तम, तुम्हारा वह तेज कहाँ है? तुम्हारा वह दर्प,

वह साहस और वह वीरत्व अब कहाँ है ? आज तुच्छ धन और सम्मान के लोभ से रुस्तम ! वीर रुस्तम ! सुलतान के एक घृणित कार्य्य का समर्थन करता है ! एक दिन जो साहस दरिद्र रुस्तम ने दिखलाया था, वह आज धनिक रुस्तम नहीं दिखला सकता !! हाय, हाय, रुस्तम, यह क्या करते हो ? जरा सोचो तो सही, तुम यह क्या करने चले हो ?—शाहजादा चुप हो गया। रुस्तम सोचने लगा—शाहजादे का कहना सच है। सुलतान सत्य ही अन्याय करते है। तब क्या रुस्तम सुलतान के विरुद्ध चलेगा ? उनकी आज्ञा भग करेगा ? सावधान, रुस्तम ! सावधान ! शाह जमाल कुछ भी करे, पर तुम सुलतान के विरुद्ध काम मत करना; नहीं तो तुम्हारी हृदयेश्वरी, प्रियतमा रुखिया बीबी और प्रिय पुत्र, जिन्हे तुम सुलतान के महल मे छोड आये हो, जल्लादों के हाथ पड़ेगे। सुलतान उन लोगों को जीता न छोडेगा।

रुस्तम बोला—तब आपकी इच्छा क्या है ? हम लोग यहीं भिक्षा माँगकर जीवन व्यतीत करे, अथवा गुप्त-चर के हाथ पड-कर प्राण खोवे ?

शाह जमाल—क्यों ? भिक्षा क्यों माँगेगे ? क्या गुज्जर-देश वासियों मे दया और आतिथ्य-सत्कार का इतना अभाव है ? विश्वास रक्खो, यदि हम लोग गुज्जर-नृपति से अपना सारा हाल कह देंगे, तो वे हम लोगों का अनिष्ट नहीं करेगे ! सुनते है कि हिन्दू शरणागत शत्रुओं का वध नहीं करते। तब किसका भय ?

रुस्तम और सह न सका। वह उन्माद-वश भृकुटि-भग कर

बोला—शाहज़ादे, आप हमें क्षमा कीजिये। आप विश्वास-घातक के समान यह कह रहे हैं। हमसे यह न होगा।

विश्वास-घातक!—शाहजमाल का शरीर जल उठा। रुस्तम की यह धृष्टता सह्य न हो सकी। तुरन्त तलवार खींच, व्याघ्र के समान भीषण गर्जना कर बोले—शैतान, तेरी इतनी स्पर्द्धा! एक अन्याय के समर्थन न करने से हम विश्वास-घातक हो गये!

चन्द्र के आलोक में जमाल खाँ की तलवार चमक उठी। क्षण-भर में एक भयानक काण्ड हो जाता, परन्तु दैवेच्छा से वह रुक गई। उसी समय पीछे से किसी ने जमाल खाँ का हाथ पकड़ लिया। स्वत. शाहज़ादे ने पीछे फिर कर देखा। वह एक रमणी थी। शाहज़ादा विस्मय-विमुग्ध हो बोला—तुम कौन हो? हमारे काम में विघ्न क्यों डाला?

(२)

उस रमणी ने हँसकर तिरस्कार-व्यञ्जक स्वर से कहा—आत्म-विवाद कभी अच्छा नहीं होता। आप लोग क्यों विवाद करते थे?

शाहजमाल ने ऐसा कंठ-स्वर कभी नहीं सुना था। वीणा-ध्वनि के समान वह स्वर अत्यन्त मधुर था। उत्तर देने के लिये वह कामिनी की ओर फिरा, पर उस रूप-राशि की ओर वह देखता ही रह गया। उत्तर न दे सका। उसने मन-ही-मन सोचा—ऐसी अपूर्व रूप-राशि और फिर ऐसी अलौकिक शक्ति! निश्चय ही यह रमणी कोई देवी है।—उस रमणी ने फिर कहा—गुर्ज्जर की यह

पवित्र भूमि किसी विदेशी के रक्त से रञ्जित न हो, यही हमारी इच्छा थी और इसीलिये हमने तुम्हारे हाथ से तलवार ले ली।

शाहजादे ने चकित होकर पूछा—यह तुमसे किसने कहा कि हम लोग विदेशी है?

रमणी—तुम्हारे इस कार्य ने। गुर्ज्जर-देश के सम्पूर्ण अधिवासी, हजार कारण होने पर भी, अपने देश-बन्धु के शोणित से इस भूमि को कलंकित न करेंगे और तुम यही करने चले थे।

शाह—(उठकर) रमणी! तुम कौन हो?

रमणी—मैं भगवान् सोमनाथ की दासी हूँ।

शाह—क्या तुमने हम लोगों की सब बातें सुन ली?

रमणी—हाँ।

शाह—बताओ तो हम कौन है?

रमणी—आप गुर्ज्जर के घोर शत्रु है।

शाह—(हँसकर) रमणी, तुमने भूल की है, हम लोग काश्मीर के वणिक् है।

रमणी—नहीं साहब, मै भूलती नहीं हूँ। आप सुलतान महमूद के भ्रातृ-पुत्र शाहजादे है और ये रुस्तम।

शाह जमाल चमक उठा। मुख मलीन हो गया। वह बोला—रमणी, तुम्हारे साथ और कोई है?

रमणी—नहीं साहब, मै अकेली हूँ।

शाह जमाल—तुम एक रूपवती रमणी हो। फिर भी अकेली ही फिरती हो!

रमणी—कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। गुर्ज्जर स्वाधीन देश है। यहाँ हिंदू बसते हैं। पर-स्त्री और पर-कन्या को सब भगिनी-भाव से देखते है। साहब, इस देश मे रमणी को विपद् की आशंका नहीं रहती।

शाह जमाल—समझ गया, पर हम तुम्हारा पूरा परिचय चाहते हैं।

रमणी—इससे अधिक मै नहीं कह सकती।

शाह जमाल ने मन-ही-मन उस रमणी के साहस की बहुत प्रशसा की, फिर कठोर स्वर से बोले—रमणी, परिचय न देने से बिपद् में पडोगी।

रमणी—विपद् मे कौन डालेगा?

शाह—हम और हमारे साथी।

रमणी—आपके और कितने साथी हैं?

शाह—चार।

रमणी—क्या वे भी आपके समान वीर हैं, क्या स्वाधीनता की लीला-भूमि अफ़गानिस्थान के सब वीर, रमणी पर अत्याचार करते है?

रुस्तम यह सह न सका। उसने तलवार खींच ली। रमणी ने शीघ्रता से रुस्तम का हाथ पकड़कर ऐसा झटका दिया कि, तलवार हाथ से छिटककर दूर जा गिरी।

रुस्तम विस्मय-सहित बोल उठा—मा, तुम कौन हो?

रमणी ने हँसकर कहा—मै भगवान् सोमनाथ की दासी हूँ।

रुस्तम—क्या गुर्ज्जर की सब रमणियाँ ऐसी ही शक्ती-शालिनी है ?

रमणी—जिस देश मे स्वय शक्ति के अवतार महा-काल भैरव सोमनाथ विराजते है, वहाँ की अधिकांश रमणियाँ ऐसी ही है।

इसी समय शाहजादे ने कहा—रुस्तम, इस रमणी को धन्य-वाद दो। इसी के कारण आज यह पवित्र भूमि हम लोगों के रुधिर-प्रवाह से कलंकित होने से बची। चलो, हम लोग अब लौटे। यह यात्रा निष्फल हुई।

रमणी ने पूछा—कहाँ जाइयेगा ?

शाह जमाल—अधिकतर सिन्धुदेश।

रमणी—अभी आपको नाव कैसे मिलेगी ? फिर एक बात और है कि आप हमारे अतिथि है, बिना आतिथ्य स्वीकार किये आप जा कैसे सकते हैं ?

शाह—तब हम क्या करे ?

रमणी—आपको हमारे साथ चलना पडेगा। आप हमारे अतिथि हैं।

शाह—तुम्हारा विश्वास क्या ?

रमणी—विश्वास ! हमारा बचन।

शाह—यदि हम न जायें, तो क्या करोगी ?

रमणी—आप को जाना ही पडेगा।

यह कह रमणी ने एक शख निकाल कर फूँका। शंखनाद के

होते ही क्षण भर मे वहॉ १०० शस्त्रधारी सैनिक आ पहुँचे। उनमे से एक ने आगे बढकर कहा—माँ, क्या आज्ञा है।

रमणी ने हँसकर कहा—कुछ नही। यों ही एक बार तुम्हे देखने की इच्छा हुई। अब तुम लोग जाओ।

क्षण-भर में वे लोग जहॉ से आये थे वही चले गये।

शाह जमाल ने यह देखकर कहा—"अच्छा, हम चलते है; पर एक बात की प्रतिज्ञा करो।

रमणी—किस बात की ?

शाह—दगा तो नही करोगी ?

रमणी—ना, भगवान् सोमनाथ हमे ऐसी मति न दे।

शाह—और एक बात। हमारा परिचय किसी को न देना।

रमणी—स्वीकार है।

शाह—और कल सूर्योदय के पहले हमे बिदा दे देना और एक नाव भी ठीक करना।

रमणी—यह भी स्वीकार है।

शाह जमाल ने रुस्तम की ओर देखकर कहा—रुस्तम, उन लोगों को भी बुला लो।

रुस्तम ने एक सीटी बजाई, जिसे सुनते ही वे चारों सैनिक भी आ गये।

रमणी आगे-आगे चलने लगी और वे लोग विस्मय-विमुग्ध होकर पीछे-पीछे जाने लगे।

(३)

कुछ दूर चलने के बाद एक बृहत् अट्टालिका मिली। वहाँ १० शस्त्रधारी सैनिक इधर-उधर घूम रहे थे। रमणी ने शाहजादे की ओर देख कर कहा—महाशय! आप यहाँ निश्शंक आइये। राजपूत अपने अतिथि का अनिष्ट कभी नहीं करते। घोर शत्रु भी यदि अतिथि होकर आवे, तो वह हम लोगों का पूजनीय है।

इसके बाद उसने एक सैनिक की ओर देखकर कहा—भैरव, ये लोग हमारे अतिथि हैं। इनको विश्राम-स्थान बतलाओ।—भैरव ने आकर कहा—चलिये महाशय।

रमणी एक ओर चली गई और शाह जमाल तथा उसके साथियों ने उस बृहत् अट्टालिका में प्रवेश किया। भैरव इनको एक सजे हुए कमरे में ले गया। वहाँ इनसे कहा—यह कमरा आपके लिये है और यह दूसरा कमरा आपके भृत्यों के लिए।

यह कहकर भैरव चला गया। शाह जमाल की आज्ञा पाकर वे चारों सैनिक भी दूसरे कमरे में चले गये। उस कमरे में केवल शाह जमाल और रुस्तम रह गये।

शाह जमाल ने कहा—रुस्तम!

रुस्तम—जनाब।

शाह—यह क्या व्यापार है? कुछ समझ में आता है?

रुस्तम—जनाब! कुछ नहीं।

शाह—इनका उद्देश्य क्या है? अतिथि बनाना या इसी मिस से बन्दी करना?

रुस्तम—बन्दी होने मे अब क्या कसर है?

शाह—और यह रमणी कौन है?

रुस्तम—हुजूर, मै कुछ नही कह सकता।

और कुछ बात नही हुई। इसी समय भैरव चार भृत्यों के साथ आ पहुँचा।

भैरव बोला—हमारी माताजी का अनुरोध है कि अब अब आप लोग भोजन करे। यहाँ जो कुछ मिल सकता है, वही आपके लिए लाया गया है। फल, कन्द-मूल और दुग्ध को छोड और कुछ नही है। कल प्रातःकाल माताजी से साक्षात् होगा।—भैरव चला गया और ये लोग भोजन कर सोने की चेष्टा करने लगे। शाहज़ादे को छोड़, घडी-भर मे सब घोर निन्द्रा मे अचेत हो गये।

शाहज़ादे को नींद नही आई। वह जागता ही रहा। आज तक शाहज़ादे के हृदय मे किसी रमणी का चित्र अंकित नहीं हुआ था; पर उस गुर्ज्जर-रमणी के अपूर्व-सौदर्य्य, अगम्य साहस और आतिथ्य-सत्कार ने उसके हृदय पर एक बड़ा आघात कर दिया था। उस आघात के कारण उसका हृदय जल रहा था। शाहज़ादे को ज़रा भी शान्ति नही मिलती थी।

रात व्यतीत हो गयी। आकाश मे प्रात.काल की लालिमा फैलने लगी। रुस्तम भी सोकर उठा और चारों सैनिक भी। भैरव फिर आया। शाहज़ादे को प्रणाम कर, बोला—रानीजी जानना चाहती है, कि आप लोगों को कल कुछ कष्ट तो नहीं हुआ?

शाह्—रानीजी कौन ? जिन्होंने हमे आश्रय दिया है ?

भैरव—जी हॉ, जिनके आप अतिथि हैं।

शहा—वे ही गुर्ज्जर की राजकन्या कमलावती है, जो कल हमारे साथ आई थी ?

भैरव—जी हाँ।

शाह्—रानीजी को हमारी ओर से धन्यवाद देकर कहना, हम लोग उनके बडे कृतज्ञ है। अब वे हमे बिदा करे।

भैरव—आप लोग प्रात.काल के कार्यो से यदि निवृत्ति हो चुके हो, तो अभी प्रस्थान कीजिये। नाव तैयार है।

शाह्—गुर्ज्जर के अतिथि आपकी रानी के निकट और एक बात के प्रार्थी है।

भैरव—कहिये।

शाह्—यही कि वे स्वय आकर हमे बिदा देवे।

भैरव—असम्भव, ऐसा कभी नही हो सकता।

शाह्—क्यों ? कल तो वे हमारे साथ आई थी !

भैरव—पर वह आना कर्तव्य के अनुरोध से था, आज कदापि नही आ सकती।

शाह—हम मुसलमान है। अपने आमत्रित अतिथि को पूरे सम्मान-सहित बिदा करते है। देखते हैं कि गुर्ज्जर की रानी शिष्टाचार की आदर्श नही हैं। वे अपने श्रेष्ठ अतिथि का अपमान करने मे सकोच नही करती।

भैरव का मुख लाल हो गया। उसने तलवार पर हाथ रक्खा,

इसी समय पीछे से किसी ने कहा—सावधान! भैरव! सावधान! अतिथि का अपमान मत करना।

भैरव ने चौककर पीछे देखा कि स्वय रानी कमलावती खडी है।

शाह जमाल ने देखा कि, इस बार कमलावती का मुख खुला नहीं है, वह अवगुण्ठन से आवृत है।

कमलावती ने शाह जमाल की ओर देखकर कहा—जनाब! आप गुर्ज्जर पर कलक आरोपण करने के लिये उद्यत हो गये थे; इसीलिये मुझे आना पडा। यह ध्यान रखिए कि गुर्ज्जर की रानी अपने अतिथि के साथ अशिष्ट व्यवहार नही करती।

कमलावती यह कहकर चुप हो गई। शाह जमाल ने सिर नीचा कर लिया। कमलावती ने फिर गम्भीर स्वर से कहा—जनाब, मै अब अधिक समय तक नहीं ठहर सकती, क्योंकि पूजा का समय जा रहा है। यदि हम से कुछ भूल हुई हो, तो उसे आप क्षमा करे; भूल सभी से हो जाती है। हाँ यह भी कहे देती हूँ कि आप फिर कभी छद्म-वेष से गुर्ज्जर-प्रदेश मे न आइयेगा, नहीं तो आप विपद् मे पडेगे।

कमलावती शीघ्रता से चली गई। जैसे विद्युत् क्षण-भर मे आकाश-मण्डल मे प्रकट होकर फिर लुप्त हो जाती है, वैसे ही वह शीघ्रता से आई और शीघ्रता से ही चली गई। शाह जमाल देखता ही रह गया।

सेनापति रुस्तम ने कहा—शाहज़ादे! अब आप वृथा विलम्ब क्यों करते हैं?

शाहजादे ने एक दीर्घ नि श्वास परित्याग कर कहा—रुस्तम, चलो, अब यहाँ ठहरने का काम नही है।

सब लोग आगे बढ़े और भैरव भी उनके पीछे चला।

(४)

"मा, क्या यह काम अच्छा हुआ ?"

"इसमे बुरा क्या हुआ भैरव ?"

"मुसलमान हमारे शत्रु है। और फिर, जो यहाँ आये थे, वे लोग हमारे घोर शत्रु है।"

"कुछ भी हो , पर थे तो हमारे अतिथि !"

"जान पडता है, गुर्ज्जर पर शीघ्र ही विपद् आवेगी।"

"यह कैसे जाना ?"

"उन लोगों की बातचीत से मालूम हुआ।"

"कुछ चिन्ता की बात नही है। भैरव, तुम भय मत करो, गुर्ज्जरवासी निर्बल नही है। कुमारसिंह की शक्ति अभी क्षीण नही हुई। गुर्ज्जर का अभी कुछ भी अनिष्ट न होगा।"

पीछे से किसी ने कहा—"सत्य है कमला ! गुर्ज्जरवासी निर्बल नही है।"

कमलावती ने मुँह फेरकर देखा, तो कुमार पीछे खडे हँस रहे है। भैरव कुमार को देखकर अन्यत्र चला गया। कमला ने चिन्तित स्वर से कहा—कुमार ! हम लोगों पर विपद् आनेवाली है।

कुमार बोले—विपद् ! कमला, जब तक सुलतान महमूद

जीवित है, तब तक विपद् का अभाव न रहेगा, पर यह ध्यान रक्खो, हम भी विपद् को ही खोजते रहते है।

कमला ने कठोर दृष्टि-पात कर पूछा—कैसे ?

कुमार—क्या यह नहीं जानती हो ? स्मरण है, सोमनाथ के मन्दिर मे आपने क्या प्रतिज्ञा की थी और क्या स्वीकार किया था ? यदि विपद् न आयेगी, तो कुमार सिह का बाहु-बल कैसे प्रगट होगा ?

कमला गम्भीर होकर बोली—कुमार, यह समय सुख-कल्पना करने का नही है। गुर्ज्जर का सारा भार तुम पर है। पिता वृद्ध है। वे तुम पर विश्वास करते है।

कुमार—यह सब जानता हूँ। जीवन रहते मैं कर्त्तव्य से पराङ्मुख न हूँगा। तुम इसकी चिन्ता मत करो। पर मुझे एक बात की चिन्ता है।

कमला—कौन बात ? मुझसे सकोच न करना।

कुमार—कमला, युद्ध मे सब अनिश्चित रहता है। कौन जानता है कि क्या होगा ? यदि कहीं मै युद्ध मे मारा जाऊँ ?

कमला—कुमार, तो मै स्वर्ग मे जाकर तुम्हारे चरणों को चूमूँगी।

कुमार—कमला, मैं यही सुनना चाहता था। मुझे ऐसा जान पडता है कि तुम्हारे लिये ही नीच 'महमूद' गुर्ज्जर पर आक्रमण करेगा।

कमला—यह आपने कैसे जाना ?

कुमार—सुलतान का भ्रातृ-पुत्र शाह जमाल तुम्हे देख कर उन्मत्त-सा हो गया है वही सेनापति होकर आवेगा, यह भैरव ने हमसे कहा है। वह उन लोगों के साथ बड़ी दूर तक गया था। उसने यह बात उन लोगों के मुख से सुनी है।

यह सुनकर कमलावती के हृदय मे भय होने लगा। एक अनिष्ट की आशका होने लगी। क्या उसके लिये उसकी जननी जन्मभूमि का सर्वनाश होगा? क्या उसी के लिये शाह जमाल गुर्ज्जर पर आक्रमण करेगा?

कुछ क्षण बाद कमलावती ने कहा—कुमार, तुम इसका भय मत करो। मै राजपूत की कन्या हूँ। मै अपना धर्म भली-भाँति जानती हूँ समय आने पर हम लोगों के लिये चिताग्नि चन्दन-प्रलेप के समान शीतल हो जाती है।

कुमार के नेत्रों मे जल भर आया। वे वहाँ से चले गये। कमलावती ने आकाश की ओर देख कर करुण-स्वर से कहा—भगवन्, सोमनाथ! सहस्रो कमलावती चाहे काल के भीषण स्रोत मे बह जाँय; पर देखना प्रभो, कुमार गुर्ज्जर की रक्षा भली भाँति करे।

(५)

सिन्धुदेश मे समुद्र-तीर मे दस कोस पर सुलतान महमूद ने एक नगर बसाया था। वह अब भी महमूदाबाद के नाम से प्रसिद्ध है। भारत मे राज्य-स्थापित करना, यह महमूद का आन्तरिक उद्देश्य न था और इसके लिये उसने प्रयत्न भी नहीं किया।

उसकी इच्छा थी—असख्य रत्न-सग्रह करना। इसी इच्छा को पूरी करने के लिये महमूद ने भारत पर अनेक बार आक्रमण किया और दैवेच्छा से वह सदा सफल-मनोरथ ही होता रहा। उसकी राजधानी, गजनी, भारत-ऐश्वर्य से अलकापुरी के तुल्य हो गई, परन्तु महमूद सन्तुष्ट न हुआ।

सोमनाथ के ऐश्वर्य की कथा सुनकर उसने गुर्ज्जर पर भी धावा करने का निश्चय किया, परन्तु उसे सुयोग न मिलता था। उसने अनेक बार चेष्टा की, परन्तु कुछ कर न सका। इस बार उसने शाहजादा शाह जमाल और सेनापति रुस्तम को भेजा। हिन्दू वणिक् के वेष मे उन लोगों ने गुर्ज्जर-देश मे प्रवेश भी किया। इसके बाद जो कुछ हुआ वह पाठकगण जानते ही हैं।

राज-कन्या कमलावती के आदेश से भैरव उन लोगों को एक निरापद् स्थान तक पहुँचाकर गुर्ज्जर को लौट आया। मार्ग में शाह जमाल और रुस्तक पिश्तो-भाषा में वार्तालाप करते थे। शाह जमाल ने कई बार कमलावती का नामोल्लेख किया। भैरव पिश्तो नहीं जानता था, इससे कुछ समझ न सका, पर गुर्ज्जर की माता प्रत्यक्ष देवी कमलावती का पवित्र नाम उन म्लेच्छों के मुख से सुनकर भैरव का सारा शरीर जलने लगा। एक बार उसके मन मे आया, कि नाव को समुद्र मे डुबा दे, जिससे गुर्ज्जर के दो प्रबल शत्रुओं का नाश हो जाय; पर उसी समय कमलावती का अन्तिम वचन उसके ध्यान में आ गया—देखना भैरव, इन लोगों का कुछ भी अनिष्ट न हो। शत्रु होने पर भी ये लोग हमारे

अतिथि है।—भैरव ने तुरन्त ही अपने हृदय की उत्तेजना को दबा लिया, पर इतना उसने समझ लिया, कि गुर्ज्जर पर यवन लोग शीघ्र ही आक्रमण करेंगे, परन्तु इस बार सोमनाथ के विश्व विश्रुत ऐश्वर्य के लिये नहीं, कमलावती के लिये। शाहज़ादा के हृदय में एक भीषण अग्नि धधक रही थी, उसी की शान्ति के लिये वह किसी-न-किसी दिन गुर्ज्जर पर विपद् लावेगा।

(६)

महमूदाबाद आकर शाह जमाल ने सुना, कि सुलतान महमूद आखेट के लिये निकले हैं। शाहजादा वहीं सुलतान की राह देखने लगा। रुस्तम भी उसके साथ ठहरा रहा।

यहाँ आकर रुस्तम ने देखा, कि शाहज़ादा अब हमको प्रसन्न करने की चेष्टा में सदा लगा रहता है। चालाक रुस्तम समझ गया कि शाह जमाल क्यों खुशामद करता है। बात यह थी, कि रुस्तम सुलतान का प्रधान सेनापति था। फिर उस पर सुलतान का पूर्ण विश्वास था। शाहज़ादे ने सोचा, कि रुस्तम से विवाद करना अच्छा न हुआ। क्षण-भर में उत्तेजना के वश उसने जो कुछ कह डाला था, उसके लिये वह पश्चाताप करने लगा। फिर उन्हे भय था, कि रुस्तम कहीं यह सब बात सुलतान से जाकर न कह दे। यही सब सोच-विचार कर शाह जमाल रुस्तम की खुशामद में लगा रहता था। रुस्तम शाह जमाल पर आन्तरिक स्नेह रखता था। वह कभी नहीं चाहता था, कि शाह का कुछ अनिष्ट हो।

सन्ध्या के समय एक निर्जन कमरे मे बैठे शाह जमाल और रुस्तम वार्तालाप कर रहे है। शाह जमाल ने कहा—रुस्तम साहब, आपने हमारी बे-अदबी तो माफ़ कर दी ?

रुस्तम—जनाब का लडकपन अभी नही गया है। इसी से उस दिन ऐसी बात हो गई, पर हमने मन मे उसे कभी नही रक्खा। हुजूर, यह ध्यान रक्खे, कि ऐसी छोटी-छोटी बातों पर रुस्तम कभी ध्यान नही देता।

शाह—हमसे एक बात की प्रतिज्ञा करो।

रुस्तम—कहिए।

शाह—उस दिन की बात तो तुम सुलतान से कभी न कहोगे ?

रुस्तम—आज तक मैने मिथ्या-भाषण नही किया है। आपके लिये मै वह भी करूँगा। आप विश्वास करे, सुलतान को यह बात कभी न मालूम होगी।

शाह—रुस्तम हमने भी दृढ नियम किया है, कि हम सुलतान की आज्ञा कभी न भङ्ग करेगे।

रुस्तम—तो क्या आप गुर्ज्जर पर, उनके कहने से, आक्रमण करेगे ?

शाह—ज़रूर।

रुस्तम—यह क्या ? शाहज़ादे, यह सब कमलावती के लिये तो नही है ?

शाह—वही बात है रुस्तम !

रुस्तम—पर आप यह जान ले, कि गुर्ज्जर को ध्वंस किये बिना

आप कमलावती को नहीं पा सकते। जब तक गुर्ज्जर में एक भी राजपूत जीता रहेगा, तब तक आप निरापद् नहीं हो सकते।

शाह जमाल—हाँ, रुस्तम, अबकी बार हम गुर्ज्जर को बिल्कुल ध्वस कर डालेंगे, उसे एक बार ही श्मशान बना देंगे। जिस प्रदेश की प्राकृतिक शोभा ने कभी हमें मुग्ध कर लिया था, उसी प्रदेश को—तुम देख लेना—हम प्रेत-भूमि बनाकर छोड़ेंगे।

रुस्तम—कमलावती क्या इतनी सुन्दरी है?

शाह जमाल—रुस्तम! तुम उस रूप का मूल्य नहीं जानते।

रुस्तम कुछ कहना चाहता था कि सुलतान महमूद स्वयं आ पहुँचा। उन्हें देखकर शाह के चेहरे का रंग उड़ गया। रुस्तम का भी हृदय काँप उठा। दोनों आसन त्यागकर ससम्भ्रम उठ बैठे।

सुल्तान ने, गंभीर स्वर में, जमाल की ओर देखकर कहा—जमाल, गुर्ज्जर का क्या संवाद है?

शाह जमाल—जहाँपनाह, संवाद शुभ है।

सुलतान—गुर्ज्जर-पति का सेना-बल कितना है?

शाह जमाल—हम लोगों से बहुत कम!

सुलतान—गुर्ज्जर-विजय करने के लिए तुम्हें कितनी सेना चाहिए?

शाह जमाल—दस हज़ार।

सुलतान—दस हज़ार! तुमको दस और रुस्तम को पाँच हज़ार देने से हमारा बाहु-बल शिथिल हो जायगा।

शाह जमाल—गुर्ज्जर की सेना खूब सुरक्षित है।

सुलतान—जानता हूँ, पर मुझे आश्चर्य है कि ग़ज़नी का भविष्य-अधिकारी अफ़ग़ान-सैनिक का बल नहीं जानता!

शाह जमाल के हृदय मे यह बात तीर-सी लगी। उसने तेजी से कहा—जहाँपनाह, हम केवल पाँच हजार सेना लेकर युद्ध मे जाने के लिए प्रस्तुत है। आपके आशीर्वाद से मै इतनी ही सेना से गुर्ज्जर-विजय करूँगा। यदि नही, तो युद्ध मे ही प्राण-त्याग करूँगा, लौटूँगा नही।—सुलतान शाह जमाल को पुत्र के समान चाहता था। यह बात सुनकर उसके नेत्रों मे जल भर आया। उसने कहा—जमाल, हम तुम्हे दस हजार सेना देगे, पर तीन हज़ार रुस्तम के अधीन रहकर तुम्हारी पार्श्व-रक्षा करेगी। कल ही युद्ध-यात्रा करो। हाँ, एक बात और कहनी है, गुर्ज्जर-पति को बन्दी कर हमारे पास भेजना। यदि जीता हाथ न आवे, तो सिर काटकर भेजना।

शाह—जहाँपनाह, मै वैसा ही करूँगा।

सुलतान—हाँ और एक बात।

शाह—आज्ञा।

सुलतान—हम सुनते है, गुर्ज्जर-राज कन्या कमलावती अत्यन्त सुन्दरी है। हम उसे बेगम बनाना चाहते है; इसलिये तुम उसे सम्मान-सहित हमारे पास भेजना।

शाह जमाल के मस्तक पर सहसा वज्रपात हो गया। सारा ससार अन्धकार-मय बोध होने लगा, पर उपाय क्या था?

कहना पड़ा—बन्दा आपकी आज्ञा का पालन करेगा, आप निश्चिन्त रहें।

सुलतान और कुछ न बोला, वहाँ से शीघ्र चला गया।

शाह जमाल के हृदयाकाश मे आशा का जो उज्ज्वल आलोक प्रकट हुआ था, वह अन्धकार-मय निराशा मे परिणत हो गया। वह सुख का स्वप्न चला गया।

गुर्ज्जर-विजय करने का पहले जैसा उत्साह था, वैसा अब न रहा। शाह विषण्ण मुख से बोला—रुस्तम युद्ध के लिए प्रस्तुत हो। खुदा को मजूर है वही होगा।

(७)

भैरव हाँफता-हाँफता कमलावती के कमरे के पास आकर विकृत स्वर से बोला—मा, मा!

कमलावती ने बाहर आकर कहा—कौन है? भैरव! क्या बात है?

भैरव ने कहा—मा, सर्वनाश उपस्थित है!

कमलावती ने डरकर पूछा—क्यों, क्या हुआ?

भैरव—मुसलमानों की सेना गुर्ज्जर के समीप आ गई है।

कमलावती—कितनी सेना?

भैरव—प्राय: बीस हजार।

कमला—बी-स-ह-जा-र—!!!

भैरव—हाँ, मा, इससे अधिक होगी—कम नहीं।

कमला—गुर्ज्जर की रक्षा कैसे होगी? भैरव, हमारी सेन दस हज़ार से अधिक नहीं है।

भैरव—हाँ, मा, और—और तुम्हारी कैसे रक्षा होगी, मा!

कमलावती का मुख लाल हो गया, फिर तुरन्त ही वह लालिमा चली गई। कमला गम्भीर हो कर बोली—भैरव, हमारी कौन चिन्ता? क्या तू भूल गया क मै राजपूत-कन्या हूँ। हम लोगों को मृत्यु से भय नही है। अपनी जन्म-भूमि की चिन्ता कर। पिता कहाँ है?

भैरव—नगर के बाहर व्यूह-रचना कर रहे है। उनका कहना है कि वे सोमनाथ के चरण-तल मे रहकर युद्ध करेंगे। वे ही हमारी रक्षा करेंगे।—कमला कातर स्वर से बोल उठी—भगवान् सोमनाथ, क्या होगा? क्या करोगे? प्रभो!

सहसा कुमारसिंह वहाँ युद्ध-वेष में आ पहुँचा। कमलावती कुमार का हाथ पकडकर बोली—कुमार अब क्या होगा?—कुमार उत्साह-पूर्ण स्वर से बोला—किसी का भय नही है। कमला, स्वय स्वयंभू हमारे पृष्ठ पोपक हैं। जहाँ सोमनाथ महाकाल के रूप मे विराजमान हैं और जहाँ साक्षात् शक्तिमयी देवी तुम हो, वहाँ कमला, हम लोगों को भय किस बात का है? तुम हमें प्रसन्न मुख से बिदा दो। कमला सजल नेत्रों से बोली—कुमार, आज न-जाने क्यों मेरा हृदय काँपता है? न-जाने क्यों अनिष्ट की आशका होती है? हाय! इस सर्वनाश और अनथ की जड़ मैं ही हूँ। हाय! मैंने क्यों शैतान जमाल को आश्रय दिया?

कुमार—कमला, यह विषाद करने का समय नहीं है। तुम राजपूत-कन्या हो। धैर्य धरो। मैं जाता हूँ; पर एक बात और कहनी है। मुसलमानों का कोई विश्वास नहीं। युद्ध मे जय-पराजय दोनों मिलती है। कौन जानता है, कहीं हमारी पराजय हो और उन लोगों की जय। यदि कही ऐसा हो, तब तुम्हे आत्म-रक्षा के लिये समय न मिलेगा इसलिए यह मैं तुम्हे दिये जाता हूँ। विपद् पडने पर अपनी धर्म-रक्षा के लिए तुम इस विष का सदुपयोग करना। मेरी मृत्यु हो जाने और तुम्हारे पिता के स्वर्ग-गत होने पर, कमला! तुम यह जान रक्खो, देवता भी तुम्हारी रक्षा न कर सकेगे। उस समय यही विष तुम्हारी और तुम्हारे धर्म की रक्षा करेगा। जब तुम सुन लेना कि कुमार अब ससार मे नहीं रहा, तब तुम विष-पान कर अपनी पवित्र आत्मा की रक्षा करना।

यह कहकर कुमार ने कमलावती के हाथ में एक काग़ज़ की पुड़िया दे दी और फिर सजल नेत्रों से युद्ध-भूमी की ओर प्रस्थान किया। भैरव दूसरे कमरे मे था। कुमार को जाते देखकर वह भी उनके पीछे हो गया।

(८)

सन्ध्या हुई। गुर्ज्जर-सेना पठानों से पराजित हुई। सूर्यदेव गुर्ज्जर के पराजय का कलङ्क न सह क्रोध मे लोहित वर्ण धारणकर आकाश-मण्डल मे अदृश्य होगये।

उस दिन भगवान सोमनाथ के मन्दिर मे आरती नही हुई। उस दिन देव-मन्दिर के घण्ट-निनाद और ब्राह्मणों के स्तोत्र-पाठ से

आकाश नही गूँजा। दिगन्त मुखरित नही हुआ। उस दिन समुद्र तरङ्ग घोर गर्जना नही करती थी। उस दिन गुज्जर की सौन्दर्य शालिनी भूमि विभीपिका-मय श्मशान के समान हो गई थी।

भगवान् सोमनाथ श्मशान ही मे रहते है। वही उनका निवास स्थान है; पर इस श्मशान मे चिता-भस्म नहा है। उनके स्थान मे उनके एकान्त भक्त गुज्जरवासियों का हृदय-शोणित बह रहा है।

क्रमश. रजनी गम्भीर होने लगी। अन्धकार बढने लगा। कमलावती अपने पिता की मृत-देह के लिए चिता रचकर भैरव के साथ फिर युद्ध-भूमि मे आई। उस महाश्मशान मे वह प्रेतनी के समान घूम रही है। पीछे-पीछे मशाल हाथ मे लिए भैरव था। भैरव मृत-देहो के मुख के पास मशाल ले जाता था। फिर निराशा पूर्ण स्वर से कहता था—नही, नही ये कुमार नही है। वायु भी हताश होकर कहता था—नहो ये कुमार नही है। उस श्मशान-क्षेत्र मे स्थित वृक्षों के पत्ते भी कहने लगते—नहो, ये कुमारसिंह नही है। चन्द्र-हीन अकाश-मडल के तारे भी कह उठते थे—कुमार-सिह कहाँ है? उन्हे कहाँ खोजतो हो? वे तो हमारे राज्य मे है कमलावती निराश होकर फिर दूसरी मृत देह की ओर जाती थी।

इसी समय उस अन्धकार-मय श्मशान-भूमि मे दो मनुष्य की आकृत दीख पड़ी। मूर्त्तिद्वय, भैरव और कमलावती के समीप आये। कमलावती ने उन दोनों को पहचान लिया और भैरव ने भी। उनमे से एक शाह जमाल था और दूसरा रुस्तम।

कमलावती ने तिरस्कार-पूर्ण स्वर से कहा—शैतान, नराधम, तूने क्यों हमारा सर्वनाश किया ? क्या हमारे आतिथ्य-सत्कार का यही पुरस्कार है ?—शाह जमाल ने उस तिरस्कार का उत्तर न दिया। वह इस समय कमलावती की ओर स्थिर दृष्टि से देखता था। जिसके लिए आज उसने गुर्ज्जर को प्रेत-भूमि कर दी है, उसे सामने खडी देखकर शाह जमाल उन्मत्त हो उठा। फिर विकृत स्वर से बोला—कमला ! तुम यहाँ क्यों घूम रही हो ? यह हम अनुमान से कह सकते है कि कदाचित तुम कुमारसिंह की मृत देह लेना चाहती हो , पर कुमार मरे नही है, आहत है और हमारे शिविर मे बन्दी है। कमला हम कृतघ्न नहीं हैं। यदि तुम चाहो, तो हम अभी उन्हे स्वाधीन कर दे ; पर इसके लिये मै तुम्हें लेना चाहता हूँ।—इसके बाद शाह जमाल उत्तेजित स्वर से कहने लगा—कमला, सुलतान तुम्हे बेगम बनाना चाहते है और मैं तुम्हें अपनी हृदयेश्वरी, अपनी प्राणेश्वरी करना चाहता हूँ। मैं ग़ज़नी का भावी सुलतान हूँ ; पर कमला तुम्हारे लिए मै वह राज्य छोड़े देता हूँ। मै तुम्हे चाहता हूँ। मैंने निश्चय कर लिया है कि अब मैं अफगानिस्तान न लौटूँगा। इसी देश मे एक कुटी बनाकर मैं तुम्हारे साथ सुख से रहूँगा। मुझे अब और कुछ नहीं चाहिए। कमला, प्राणेश्वरी कमला ! एक बार कहो, तुम मेरी हो।—इतना कहकर शाह जमाल कमलावती को आलिङ्गन करने के लिए दौड़ा। एकाएक पीछे से एक बन्दूक की आवाज़ आई। शाह जमाल आहत होकर पृथ्वी पर गिर पडा। शीघ्र ही वह आघात-

कारी सब के सम्मुख आया। उसे देख रुस्तम के आश्चर्य की सीमा न रही, क्योंकि वह स्वयं सुलतान महमूद था।

भू-पतित शाहज़ादे की ओर देखकर सुलतान बोला—शैतान, विश्वास-घातक! नफ़र, क्या इसीलिए मैंने तुझ पर इतना विश्वास किया था? मैंने तुझे क्या नहीं दिया? और फिर तूने मेरे ही साथ दगा की। महमूदाबाद में मैंने छिपकर तेरी बातें सुन ली थीं। एक सैनिक के वेष में मैं तेरे पीछे-पीछे यहाँ तक आया और यहाँ आज मैंने तुझे इस दग़ाबाज़ी के लिए पूरा पुरस्कार दे दिया।

यह कहकर सुलतान पीछे लौटा, देखा, वहाँ कमलावती और भैरव कोई नहीं है, रुस्तम खड़ा है। सुलतान ने पूछा—रुस्तम, ये दोनों कहाँ चले गये?

रुस्तम ने कहा—जहाँ पनाह, मैं कह नहीं सकता, कहाँ गये। मैंने ख़याल नहीं किया।

सुलतान—रुस्तम, तुम इस लाश को उठाकर मेरे पीछे-पीछे आओ।—रुस्तम शाह जमाल की लाश उठाकर सुलतान के पीछे-पीछे चला। शिविर में जाने से मालूम हुआ, कि कुमारसिंह भी न जाने कैसे छूटकर निकल गये! सुलतान ने कहा—रुस्तम, इस बार हम दुश्मनों को शिकस्त न कर सके। चलो फिर कभी देखा जायगा।

सुलतान महमूद के लौट जाने पर कुमारसिंह ने कमलावती का पाणिग्रहण किया। कमलावती के पिता की भी यही अन्तिम इच्छा थी। कुमारसिंह उनके बाद गुर्जर के अधीश्वर हुए।

६—पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

आप कानपूर के निवासी हैं। आपकी कहानियाँ प्रायः हिन्दी-मासिक-पत्रिकाओं मे निकलती रहती है। 'गल्प-मन्दिर' और 'चित्रशाला'—ये दो सग्रह आपकी कहानियों के प्रकाशित हो चुके है। कुछ दिनों तक आपने 'मनोरजन' मासिक-पत्र का बड़ी योग्यता से सम्पादन किया। आपकी कहानियों में बहुधा निम्न-श्रेणी के चरित्रों का चित्रण होता है। आपकी कला की विशेषता सभाषण है। सभाषणों-द्वारा ही आपने कई ड्रामे लिखे हैं। आपका एक उपन्यास धारा-वाहिक रूप मे 'सुधा' मे निकला था, जो अब पुस्तक रूप मे भी छप गया।

ताई

(१)

ऊजी, हमे लेलगाडी (रेलगाडी) ला दोगे ?”— कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाहें फैलाकर कहा—हाँ बेटा, ला देंगे।

उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद मे उठा लिया और उसका मुख चूमकर बोले—क्या करेगा रेलगाड़ी ?

बालक बोला—उसमें बैठ के बली दूल जायँगे। हम भी जायँगे, चुन्नी को भी ले जायँगे। बाबूजी को नहीं ले जायँगे। हमें लेलगाली नहीं ला देते। ताऊजी, तुम ला दोगे, तो तुम्हे ले जायँगे।

बाबू—और किसको ले जायगा ?

बालक दम-भर सोचकर बोला—बछ, और किछी को नहीं ले जायँगे।

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धांगिनी बैठी थी। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—और अपनी ताई को नही ले जायगा ?

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताईजी उस समय कुछ चिढी हुई-सी बैठी थी। बालक को उनके मुख का वह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—ताई को नहीं ले जायँगे।

ताईजी सुपारी काटती हुई बोली—अपने ताऊजी ही को ले जा! मेरे ऊपर दया रख!

ताई ने यह बात बडी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरत ताड गया। बाबू साहब ने फिर पूछा—

"ताई को क्यों नही ले जायगा ?"

बालक—ताई हमे प्याल (प्यार) नही कलती।

बाबू—जो प्यार करे, तो ले जायगा ?

बालक को इसमे कुछ सन्देह था। ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नही थी कि वह प्यार करेगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—क्यों रे, बोलता नही ? ताई प्यार करे, तो रेल पर बिठाकर ले जायगा ?

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया, परन्तु मुख से कुछ नही कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धांगिनीजी के पास ले जाकर उनसे बोले—लो, इसे प्यार कर लो, तो यह तुम्हे भी ले जायगा।

परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की यह चुहलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनककर बोली—तुम्ही रेल पर बैठकर जाओ, मुझे नही जाना है।

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद मे बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले—प्यार नहीं करोगी, तो फिर रेल मे नही बिठावेगा।—क्यों रे मनोहर?

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नही दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीर मे चोट नही लगी, पर हृदय मे चोट लगी। बालक रो डा।

बाबू साहब ने बालक को गोद मे उठा लिया, चुमकार-पुचकार कर चुप किया, और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाडी ला देने का वचन देकर छोड दिया। बालक मनोहर भय-पूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले—तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? बच्चे को ढकेल दिया! जो उसके चोट लग जाती, तो?

रामेश्वरी मुँह मटकाकर बोलीं—लग जाती, तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपडी पर लाद देते थे? आप ही तो उसे मेरे ऊपर डालते थे, और आप ही अब ऐसी बाते करते है।

बाबू साहब कुढकर बोले—इसी को खोपडी पर लादना कहते हैं।

रामेश्वरी—और नहीं किसे कहते है ! तुम्हे तो अपने आगे और किसी का दु ख-सुख सूझता ही नहीं। न-जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुम्हे इन बातों की कोई परवा ही नही, अपनी चुहल से काम है।

बाबू—बच्चों की प्यारी-प्यारी बाते सुनकर तो चाहे जैसा जी हो, प्रसन्न हो जाता है, मगर तुम्हारा हृदय न-जाने किस धातु का बना हुआ है!

रामेश्वरी—तुम्हारा हो जाता होगा। और होने को होता भी है; मगर वैसा बच्चा भी तो हो! पराये धन से भी कही घर भरता है।

बाबू साहब कुछ देर चुप रहकर बोले—यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है, तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेगे।

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोली—बाते बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो; पर मुझे ये बाते अच्छी नही लगती। हमारे भाग ही फूटे है! नही तो ये दिन काहे को देखने पड़ते! तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। आदमी सन्तान के लिये न-जाने क्या-क्या करते है—पूजा-पाठ कराते है, व्रत रखते हैं, पर तुम्हे इन बातों से क्या काम? रात-दिन भाई-भतीजों में मगन रहते हो।

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा—पूजा, पाठ, व्रत, सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग में

नही, वह पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो यह अटल विश्वास है।

श्रीमतीजी कुछ-कुछ रुआसे स्वर मे बोलीं—इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रक्खा है! ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायँ, तो काम कैसे चले। सब बिश्वास पर ही बैठे रहे, आदमी काहे को किसी बात के लिये चेष्टा करे।

बाबू साहब ने सोचा, कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं; अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गये।

(२)

बाबू रामजीदास धनी आदमी है। कपडे की आढत का काम करते हैं। लेन-देन भी है। इनके एक छोटा भाई भी है। उसका नाम है कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही मे है। बाबू रामजीदास की आयु ३५ वर्ष के लगभग है, और छोटे भाई कृष्णदास की २१ के लगभग। रामजीदास निस्सन्तान है। कृष्णदास के दो सन्ताने हैं। एक पुत्र—वही पुत्र, जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं—और एक कन्या है। कन्या की आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उनकी सन्तान पर बडा स्नेह रखते है—ऐसा स्नेह कि उसके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तान-हीनता कभी खटकती ही नहीं। छोटे भाई की सन्तान को वे अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले हैं कि उन्हे अपने पिता से भी अधिक समझते है।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तान-हीनता का बडा दु:ख है। वह दिन-रात सन्तान ही के सोच में घुला करती है। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उनकी आँखो मे काँटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शय्या पर लेटे हुए शीतल और मन्द-वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शैय्या पर रामेश्वरी, हथेली पर सिर रक्खे, किसी चिन्ता मे डूबी हुई थी। दोनो बच्चे अभी बाबू साहब के पास से उठकर अपनी मा के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा—आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह से ढकेला था कि मुझे अब तक उसका दुःख है। कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिलकुल ही अमानुषिक हो उठता है।

रामेश्वरी बोली—तुम्हीं ने मुझे ऐसा बना रक्खा है। उस दिन उस पण्डित ने कहा था कि हम-दोनों के जन्म-पत्र में सन्तान का जोग है, और उपाय करने से सन्तान हो भी सकती है। उसने उपाय भी बताए थे, पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना न होना तो भगवान् के आधीन है।

बाबू साहब हँसकर बोले—तुम्हारी-जैसी सीधी स्त्री भी... क्या कहूँ, तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो,

जो दुनियाँ-भर के झूठे और धूर्त है। ये झूठ बोलने ही की रोटियाँ खाते है।

रामेश्वरी तुनककर बोलीं—तुम्हे तो सारा ससार झूठा ही दिखाई पडता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे है? पण्डित कुछ अपनी तरफ से तो बनाकर कहते ही नही है। शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते है। शास्त्र झूठा है, तो वे भी झूठे है। अगरेजी क्या पढी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादे के जमाने से चली आई है, उन्हे भी झूठा बताते है।

बाबू साहब—तुम बात तो समझनों नही, अपनी ही ओटे जाती हो। मे यह नही कहता कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा है। सम्भव है, वह सच्चा हो, परन्तु ज्योतिपियों मे अधिकाश झूठे होते है। उन्हे ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नही, दो-एक छोटी-मोटी पुस्तके पढ़कर ज्योतिपी बन बैठते और लोगों को ठगते फिरते है। ऐसी दशा मे उनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?

रामेश्वरी—हूँ, सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक बडे सच्चे हो! अच्छा, एक बात पूछती हूँ। भला तुम्हारे जी मे सन्तान की इच्छा क्या कभी नही होती?

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले—भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदय मे सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो? परन्तु किया क्या जाय? जब नहीं है और न होने की कोई आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ

चिन्ता करने से क्या लाभ? इसके सिवा जो बात अपनी सन्तान से होती, वही भाई की सन्तान से भी तो हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है। जो आनन्द उनकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर मै नही समझता कि चिन्ता क्यों की जाय।

रामेश्वरी कुढकर बोली—तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ। इसी से तो रात-दिन जला करती हूँ। भला यह तो बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्ही से तुम्हारा नाम चलेगा?

बाबू साहब हँसकर बोले—अरे तुम भी कहाँ कि पोच बातें लाई। नाम सतान से नही चलता (नाम अपनी सुकृति से चलना है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके? इसी प्रकार जितने महात्मा हो गये है, उन सबका नाम क्या उनकी संतान ही की बदौलत चल रहा है? सच पूछो, तो संतान से जितना नाम चलने की आशा रहती है, उतनी ही नाम डूब जाने की भी सभावना रहती है, परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है जिससे नाम बढने के सिवा घटने की कभी आशका रहती ही नहीं। हमारे शहर मे राय गिरिधारीलाल कितने नामी आदमी थे? उनके सतान कहाँ है? पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला जा रहा है, और अभी न-जाने कितने दिनों तक चला जायगा।

रामेश्वरी—शास्त्र मे लिखा है कि जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नही होती?

होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है, और प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली-दामन का-सा होता है। ये कभी पृथक् नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अंतर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं, परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है, पर उसको सींचकर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लानेवाला कोई नहीं, इसीलिये उनका हृदय उन बच्चों की ओर खिंचता तो था; परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरे के हैं, तब उनके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेषकर उस समय उनके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वह यह देखती थीं कि उनके पति-देव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उनके (रामेश्वरी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थीं। पास ही उनकी देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छत पर दौड़-दौड़कर खेल रहे थे। रामेश्वरी उनके खेल को देख रही थीं। इस समय रामेश्वरी को उन बच्चों का खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हे-नन्हे मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली बातें

उनका चिल्लाना, भागना, लोट जाना इत्यादि क्रीडाएँ उनके हृदय को शीतल कर रही थी। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौडा। वह खिलखिलाती हुई दौडकर रामेश्वरी के गोद मे जा गिरी। उसके पीछे-पीछे मनोहर भी दौडता हुआ आया, और वह भी उन्हीं की गोद मे जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेप भूल गई। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चों के लिये तरस रहा हो। उन्होंने बडो सतृष्णता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हे देखता, तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी ही उन बच्चों की माता है।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद मे खेलते रहे। सहसा उसी समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता वहाँ से उठकर चली गई।

"मनोहर, ले रेलगाडी।"—कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आए। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़पकर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, फिर बैठकर रेलगाडी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद-सी टूटी। पति को बच्चों मे मगन होते देखकर उनकी भौंहे तन गईं। बच्चों के प्रति हृदय मे फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आए, और मुसकिराकर बोले—आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर

रही थीं ! इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय मे भी इनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।

रामेश्वरी को पति की यह बात बहुत बुरी लगी। उन्हे अपनी कमज़ोरी पर बडा दु:ख हुआ। केवल दु:ख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दु:ख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ गया। उनकी कमज़ोरी पति पर प्रगट हो गई, यह बात उनके लिये असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले—इसीलिये मै कहता हूँ कि अपनी संतान के लिये सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो तुम्हे ये ही अपनी संतान प्रतीत होने लगेगे। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।

यह बात बाबू साहब ने नितांत शुद्ध हृदय से कही थी, परन्तु रामेश्वरी को इसमे व्यंग्य की तीक्ष्ण गंध मालूम हुई। उन्होंने कुढ़-कर मन मे कहा—इन्हे मौत भी नहीं आती। मर जॉय, पाप कटे! आठों पहर आँखों के सामने रहने से प्यार करने को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देखकर कहा—अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।

रामेश्वरी जल-भुनकर बोलीं—मुझे क्या पडी है, जो मैं प्रेम करूँगी? तुम्ही को मुबारक रहे! निगोडे आप ही आ-आके घुसते है। एक घर मे रहने से कभी-कभी हँसना-बोलना पड़ता है।

अभी परसों ज़रा यों ही ढकेल दिया, उस पर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। सकट मे प्राण है, न यों चैन, न वों चैन !

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुनकर बडा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—न-जाने कसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी-ख़ासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे; पर मेरे कहने से बल्लियों उछलती है। न-जाने मेरी बातों मे कौन-सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है, तो न कहा करूगा, पर इतना याद रक्खो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े-सिगोडे इत्यादि अपशब्द निकाले, तो अच्छा न होगा ! तुमसे मुझे ये बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वह आँखों-द्वारा निकालने लगी।

जैसे-ही-जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था, वैसे-ही-वैसे रामेश्वरी के द्वेश और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति-पत्नी मे कहा-सुनी हो जाती थी, और रामेश्वरी को पति के कटु वचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण ही वह पति की नज़र से गिरती जा रही है, तब उनके हृदय मे बड़ा तूफ़ान उठा। उन्होंने सोचा—पराए बच्चों के पीछे यह मुझसे प्रेम कम करते जाते है, मुझे हर समय बुरा-भला कहा करते हैं।

इनके लिये ये बच्चे ही सब कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं ! दुनिया मरती जाती है ; पर इन दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गए। न ये होते, न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे, उस दिन घी के दिये जलाऊँगी। इन्होंने ही मेरा घर सत्यानास कर रक्खा है।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थीं। उनके हृदय मे अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे, विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निज की सन्तान का अभाव, पति का भाई की सन्तान के प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद जब उनके विचार स्वय उन्हीं को कष्ट-दायक मालूम होने लगे, तब वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिये उठकर टहलने लगी।

वह टहल ही रही थी कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। नोहर को देख कर उनकी भ्रकुटी चढ़ गई, और वह छत की चहार दीवारी पर हाथ रखकर खडी हो गई।

सन्ध्या का समय था। आकाश मे रग-बिरगी पतगे उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खडा पतगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतग कट कर उसकी छत पर गिरे, तो क्या ही आनन्द आवे। देर तक पतग गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़कर रामेश्वरी के पास आया, और उनकी टाँगों मे लिपट कर बोला—ताई हमें पतंग मगाँ दो।—रामेश्वरी ने झिड़क कर कहा—चल हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।

मनोहर कुछ अप्रतिभ हो कर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोडी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बडे लाड मे आकर अत्यन्त करुण-स्वर मे कहा—ताई, पतग मँगा दो—हम भी उडावेगे।

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कजेला कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं फिर उन्होने एक लबी सास लेकर मन-ही मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता, तो आज मुझसे बढकर भागवान् स्त्री ससार मे दूसरी न होती। निगोड़े-मारा कितना सुन्दर है, और कैसी प्यारी-प्यारी बाते करता है, यही जी चाहता है कि उठा कर छाती से लगा ले।

यह सोचकर वह उसके सिर पर हाथ फेरनेवाली ही थीं, कि इतने मे मनोहर उन्हे मौन देखकर बोला—तुम हमे पतग नही मँगवा दोगी तो ताऊजी से कह कर पिटवावेगे।

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात मे भी बडी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। वह उसे झिडककर बोली—जा, कह दे अपने ताऊजी से। देखूँ, वह मेरा क्या कर लेगे।

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश मे उडती हुई पतगों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा—यह सब ताऊजी के दुलार का फल है, कि बालिस्त-भर का लडका मुझे धमकाता है। ईश्वर करे इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से एक पतंग कट कर उसी छत की ओर

आई और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गई। छत के चारों ओर चहारदीवारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी हुई थीं, केवल वहीं पर एक द्वार था, जिससे छज्जे पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी उस द्वार मे सटी हुई खडी थी। मनोहर ने पतग को छज्जे पर जाते देखा। पतग पकडने के लिये वह दौडकर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रही। मनोहर उसके पास से होकर छज्जे पर चला गया और उनसे दो फिट की दूरी पर खड़ा होकर पतग को देखने लगा। पतग छज्जे पर से होती हुई नीचे घर के आँगन मे, जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुँडेर पर रखकर मनोहर ने नीचे आँगन मे झाँका और पतंग को आँगन मे गिरते देख प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिये शीघ्रता से घूमा, परन्तु घूमते समय मुँड़ेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों मे मुँडेर आ गई। वह उसे पकडकर लटक गया और रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—ताई! रामेश्वरी ने धडकते हुए। हृदय से इस घटना को देखा। उसके मन मे आया, कि अच्छा है, मरने दो, सदा का पाप कट जायगा। यह सोचकर वह एक क्षण के लिये रुकीं। उधर मनोहर के हाथ मुँडेर पर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—अरी ताई! रामेश्वरी की आँखे मनोहर की आँखो से जा मिली। मनोहर की वह करुण दृष्टि देखकर रामेश्वरी का कलेजा मुँह को आ गया। उन्होंने व्याकुल होकर मनो-

हर को पकडने के लिये अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा ही था कि मनोहर के हाथ से मुडेर छूट गई। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख मारकर छज्जे पर गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार मे बेहोश पडी रही। कभी-कभी वह जोर से चिल्ला उठती, और कहती—देखो-देखो वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ—दौडो—मेरे मनोहर को बचा लो। कभी वह कहती—बेटा मनोहर मैंने तुझे नही बचाया। हाँ, हाँ, मै चाहती, तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी।—इसी प्रकार के प्रलाप वह किया करतीं।

मनोहर की टाँग उखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई। वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—मनोहर कैसा है?

रामजीदास ने उत्तर दिया—अच्छा है।

रामेश्वरी—उसे मेरे पास लाओ।

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे बडे प्यार से हृदय से लगाया। आँखों से आँसुओं की झडी लग गई। हिचकियों से गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गईं। अब वह मनोहर की बहन चुन्नी से भी द्वेष और घृणा नहीं करतीं। और, मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उनके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

७—श्रीशिवपूजन सहाय

आप विहार के निवासी हैं। आपकी भाषा माधुर्य से परिपूर्ण होती है। आप सच्चे कलाविद् की भाँति भाषा को खूब अलंकृत करते हैं। आपकी कई पुस्तकें—'महिला-महत्व' 'देहाती-दुनिया' आदि—प्रकाशित हो चुकी हैं। पहले आपने 'बालक' का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया, अब 'गंगा' का सम्पादन करते हैं।

तूती-मैना

(१)

सी को मस्त और किसी को पस्त करने वाला, किसी को चुस्त और किसी को सुस्त करने-वाला, कहीं अमृत और कहीं विष बरसाने-वाला—कहीं निरानन्द बरसाने वाला और कहीं रसानन्द सरसाने वाला यथा अखिल अण्डकटाह में नई जान, नई रोशनी, नई चाशनी, नई लालसा और नई-नई सत्ता का सचार करने वाला सरस वसन्त पहुँच चुका था। नवपल्लव-पुष्पगुच्छों से हरे-भरे कुञ्ज-पुञ्जों मे वसन्त-बसीठी मीठी-मीठी बोली बोलती और बिरह मे विष घोलती थी। मधुर मधु-मयी माधवी-लता पर मंडराते हुए मकरन्द-मत मधुकर, उस—चराचर मात्र मे नूतन शक्ति सञ्चालन करने वाले—जगदाधार का गुन-गुनकर गुण गाते थे। लोनी लतिकाएँ सूखे-रूखे वृक्षों से भी लिपट रही थीं। वसन्त-वैभव ने उस वन को विभूतिशाली बना दिया था।

उसी सघन वन मे, नवकिसलय से सुशोभित एक अशोक-वृक्ष तले, एक सजीव सुषमा की सौम्य मूर्त्ति, लहलही लता-सी तन्वी,

सरल-तरल दृष्टि वाली, कोई कान्तिमयी कान्ता, खड़ी-खड़ी मल्लिका-वल्लरी-वितानों के भीतर कबूतरों की क्रीड़ा एवं अलि-अवलि-केलि-लीला देख-देख चकित हो, चिबुक पर तर्जनी अँगुली रखकर, मन्द-मन्द मुसुकानों की लड़ियाँ गूंथ रही थी। मंजुल-मञ्जरी-कलित तरु-वर की शाखाओं पर, शान से तान का तीर मारनेवाली काली-कलूटी कोयल, पल्लवावगुण्ठन मे मुँह छिपाये बैठी हुई, इस अनुपरूपा सुन्दरी को देख रही थी। शीतल-सुरभित समीर विलुलित अलकावली-तीर डोल-डोलकर रस घोल जाता था। चञ्चल पवन अंचल पर लोट-लोटकर अपनी विकलता बताता था। धीरे-धीरे लहराती हुई कालिन्दी की लहरों के सदृश चढाव-उतारवाली, श्याम-सुचिक्कण कुंचित कुन्तलराशि, नितम्बारोहण करती हुई, आपाद लटक रही थी। यद्यपि निराभरण शरीर पर केवल एक सामान्य वस्त्र ही शेष था, तथापि वह शैवाल-जाल-जटित सुन्दर सरोजनी-सी सोहती और मन मोहती थी। नैनसुख की धोती ही नयनों को सुख देती थी। रूप-रङ्ग मे अप्रतिम होने के कारण अथवा लाड-प्यार किम्वा संसार से विलग रहने से, न-जाने क्यों—उसके "तूती-मैना" आदि कई एक जंगली नाम पड़े थे। जैसे जल-शून्य वनस्थली मे बहुरंगे सुरभित सुमन खिल-खिलकर अछूत और अज्ञात ही रह जाते है, उसी तरह वह मंजुभाषिणी सुहासिनी भी उस वन मे दिन बिता रही थी।

फूलों को चुन-चुनकर माला गूँथना, कँगना बनाना, बाजूबन्द बनाना, अपने रेशम के-से मुलायम बालों मे फूलों की कलियाँ गूँथना,

हरिणियों की देह पर धीरे-धीरे हाथ फेरते रहना, कान देकर पक्षियों का गाना सुनना और नदी से कलसी मे जल भर-भरकर द्रुमगुल्म-लतादिकों को सींचना—ये ही उसके नित्य के कृत्य थे। जब वह गङ्गा मे कलसी भरने जाती, तब मुकुरोज्ज्वल मन्दाकिनी मे अपनी परछाई देखकर, अपनी सुन्दरता पर आप ही मुग्ध होकर मुस्कराने लगती थी!

कभी-कभी शून्य स्थान मे स्वच्छन्द विहार करनेवाले पक्षियों और भ्रमरों को किलोले करते देखकर उसके मन मे यौवन-मद-जनित एक प्रकार का मनोविकार-सा उदय हो आता था, किन्तु उससे वह प्रभावान्वित नहीं होती थी। एक तो कोमल-कमल-कलिका-सी सुकुमारी, दूसरे त्रिवली-सोपान द्वारा मन्मथ-महेन्द्र का क्रमशः आरोहण और तीसरे एकान्त वसन्त-वेष्टित वन मे वास—सब कामोद्दीपक सामग्रियाँ जहाँ अहर्निश आँखों के सामने खेल-खेलकर रिझा रही थीं, वहाँ भला चपला-चचल तारुण्य से आक्रान्त अबला का निवास कैसा कष्ट-कर था!!! कभी-कभी रुचिर-रश्मि-राशि राकेश के सुधा-सिक्त किरण कन्यकाओं को पार्श्ववर्तिनी पुष्करिणी के स्फटिकोपम जल-वक्ष-स्थल पर थिरकते हुए देखकर यों ही मुस्करा उठती थी। जब वह कबूतरों को गोद मे लेकर प्रेम-पूर्वक चूमने-चाटने लगती थी, तब वे स्निग्ध-कर-स्पर्श-जन्य अद्भुत सुख का अनुभव करते हुए, गोद मे सटकर, पुलक-पल्लवित शरीर को फुलाकर, आनन्दोत्फुल्ल अर्द्धोन्मीलित नयनों से, मृगनयना मैना के सुधाधरोपम मुखड़े की ओर देखते हुए,

उसकी पतली-पतली और नन्ही-नन्ही कोमलारुण अँगुलियों को चोंच मे लेकर, धीरे-धीरे, पीने लगते थे।

(२)

वनान्त-प्रदेश-वासी राजा राजीव-रञ्जनप्रसादसिंह के प्रिय दत्तक पुत्र शशि-शेखर-कुमार, घोड़े पर सवार होकर, मृगया खेलने उसी वन मे आये हुए थे। किशोरावस्था थी। निडर और ढीठ थे। घोडा मानो हवा से बात करने वाला था। इसी से शायद उसका नाम 'पतीला' रखा गया था। उसकी सजावट, तेजी और डील-डौल देखकर देखनेवाले दाँतों अगुली दबा लेते थे। कुमार साहब उसी अशोक के पास पहुँच गये, जहाँ वही शान्तोज्ज्वल स्मित-विकसित मुखडा चतुर्दिक आनन्द की वृष्टि कर रहा था। वह भुवन-मोहन रूप देखते ही कुमार का मन निहाल हो गया। घोडे से उतरकर, मन-ही-मन सोचने लगे कि—'नैव रूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महातले!'—'लोचन लाहु हमहिं विधि दीन्हा'—कुमार किंकर्त्तव्यविमूढ हो खड़े रह गये! जिन्होंने कभी गजेन्द्र-कुम्भ-विदारक मृगेन्द्र का भी, बिना मारे, पीछा न छोडा था, उसी कुमार का कडा कलेजा, एक सौकुमार्य्य-पूर्ण सुन्दरी को देखते ही मोम हो गया! जो कुमार अपनी डपट की झपट से छलाँग मारते हुए केसरी-किशोर को तत्क्षण भूमि शायी कर देते थे, वे ही वीर कुमार उस वामाक्षी को देखकर एक बात भी नहीं बोल सके,—निरे अवाक् रह गये! किसी तरह धैर्य्य धारण कर कुछ-कुछ लड़-खडाती हुई जुबान से बोले—हे शुचिस्मिते! तुम किन-किन

अक्षरों को पवित्र करती हो ? किस शुभ देश से तुम्हारा वियोग हुआ है ?

कुमार के प्रश्नों का उत्तर न मिला। विशाल-लोल लोचनों से दो-चार बूँद आँसू टपक पडे ! मानो 'मानस-सरोवर' के रुचिर 'राजीव' से हंस द्वारा संचित—'मोती' झरते हों। क्यों ? "सो सब कारण जान विधाता !"

कुमार को, आँसू टपकते देखकर, बडा पश्चात्ताप हुआ। उससे उसके रोने का कारण पूछने का उन्हें साहस न हुआ। उन्होंने सोचा कि नाम-धाम पूछने का तो यह नतीजा हुआ, दुबारा कुछ पूछने से न-जाने क्या-क्या गुल खिलेंगे !—अभी तो थोड़ी देर हुई कि, हास्यमुक्ता-माला से मुख-मण्डल मण्डित था। न-जाने क्यों अब अश्रु-बिन्दु-मुक्तावली गूँथकर स्वपद-तलस्थ-मृदुल-दूर्वादलों का मण्डन करने लगी ! हाँ, जो दूर्वादल उसके शयन करके के लिये मृदुशय्या बनकर उसे सुख देते हैं, उन वन्य-शष्यों का मूल-सिञ्चन उसके लिये क्या कोई अनुचित काम है ? जो हमारे सुख के लिये अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देता है, उसके लिये यदि हम अपने कलेजे का खून भी दे दें, तो कौनसी बडी बात है ? यही सोचते-सोचते कुमार 'कहि न सकै कछु चितवत ठाढ़े।"

थोड़ी देर सँभलकर एक ओर बड़े जोर से दौड पड़े। फिर कुछ ही देर मे, एक पलाश के दोने मे वन्य कन्द-मूल-फल ले आकर तूती के सामने रख दिये। कमल के पत्ते को चारों ओर से

चुनकर, कुश से उसका मुँह बाँधकर, कमण्डल बनाया और उसी मे पास ही की नदी से थोड़ा जल लाये परन्तु "प्रेम-विवश मुख आव न बानो"—साहस पर भार देकर बोले—देवि! तुच्छ आतिथ्य स्वीकार करो।

सौन्दर्य्य मे बडी विलक्षण विद्युत्-शक्ति है! जिसके सामने दासगण सदैव हाथ बाँधे खडे-खडे मुँह जोहते रहते है, जो प्रचुर प्रजामण्डली का भावी शास्ता है, उस समर्थशाली नृपनन्दन को भी क्षणमात्र मे सौन्दर्य्य ने कैङ्कर्य्य सिखा दिया!

• • • •

ठीक है, यदि सौन्दर्य्य मे ऐसी अद्भुत आकर्षण-शक्ति न होती, तो मत्स्योदरी का नाम योजन-गन्धा कैसे होता? नारद के समान विरागी भजनानन्दी व्याकुलता की पराकाष्ठा तक क्यों पहुँचते? वेचारे राक्षस अमृत के बदले मदिरा क्यों पी लेते? उर्वशी भला "नारायण' के बदले 'पुरुरवा' का नाम लेकर क्यों स्वर्ग-च्युत होती? सूर्पणखा को अपने नाक-कान कटाने की क्या पडी थी? गोपियाँ लोक-लाज की तिलाञ्जलि क्यों देती? रुक्मिणी खिडकी की राह से कृष्ण को प्रेम-पत्र क्यों भेजती? ऊषा की सखी चित्रलेखा अपनी चित्र-कला-कुशलता का परिचय कैसे देती? मानिनी राधिका के पैरों की महावर नन्दनन्दन के माथे का तिलक कैसे होती?

• • • •

(३)

एक अपरिचित मनुष्य के सामने तूती कन्द-फल-दल-जल, कुछ भी, छू न सकी। लज्जावनत-मुखी होकर सरलता-पूर्वक बोली—तब तक इस चटाई पर बैठिये, पिताजी बाहर से आते होंगे।—तूती की वाणी सुनकर राजकुमार की दक्षिण भुजा और आँख फडक उठी। उस चटाई पर बैठकर कुमार मखमली गद्दी की गुद-गुदी अनुभव करने लगे। वे सोच रहे थे कि—

'कहत मोहि लागत भय, लाजा ;
जौं न कहौं बड़ होइ अकाजा।'

कुमार की सासारिक कुवासनाओं मे तूती के प्रेम की-सी अलौकिक पवित्रता और क्षमता नहीं थी। जिस प्रकार गङ्गा में मिलकर कर्मनाशा भी शुद्ध हो गई, उसी प्रकार तूती की सरलता-सुरसरी मे कुमार की कुवासना-कर्मनाशा मिलकर निर्मल हो गई। उनकी इच्छा थी कि हमारे तमाच्छन्न हृदय मे इसी छवि-दीप-शिखा का उजाला होता, इसी बाहु-लता की सघन छाया मे हमारा प्राण-पथिक विश्राम करता, इन्ही अधर-पल्लवों की ओट मे हमारा प्राण-पखेरू छिपकर शान्ति पाता और इसी स्वर्गीय सौन्दर्य्य-सुधा का एक घूँट पीकर हम अमरत्व लाभ करते, किन्तु कुमार की कलुषित कामना कुण्ठित हो गई। तूती का सारल्य उनकी कामना पर विजयी हुआ। नीच जल-विन्दु भी जैसे कमल दल के सयोग से मुक्ताफल की-सी श्री धारण करता है, राजस

सुख के उपासक कुमार का चित्त सात्त्विक सुख का अनुभव करते-करते वैसे ही धवलित हो गया।

प्रेमोन्मत्त मधुप कमलिनी को इतना रिझाता है कि, वह अपने दिल के सब पर्दे खोलकर भौंरे को भीतर बुलाकर, अनेक स्निग्ध-सुगन्धमय आवरणों के अन्दर छिपा लेती है। वह चाहती है कि, मेरी सुन्दरता पर अपना तन-मन-धन न्योछावर कर देनेवाले अनन्य प्रेमी पर अब कोई दूसरा डीठ न डालने पावे।

हंस-गण प्रति-दिन आते हैं, चमकीली सीपियों के स्फुटोन्मुख मुख चूम-चूमकर चले जाते हैं। सीपियाँ भी एक दिन दिल खोलकर उनके सामने मोतियों की डाली लगा देती है।

वंशी टेरनेवाला, प्रेम में खूब डूब कर, अपने हृदय का माधुर्य अधरों से भरकर, जब निभृत निकुञ्ज में मुरली की तान छेड़ने लगता है, तब हृदयहारिणी हरिणी भी कहने लगती है—

'चाम काटि आसन करौ, माँस राँधि कै खाउ ;
जब लौं तन में प्रान है, तब लौं बीन बजाउ।'

(४)

भगवान भास्कर संसार-भर के शुभाशुभ कर्मों का निरीक्षण करके, कर्त्तव्य-परायणता का परिचय देते हुए, पश्चिमाचल की ओर चल पड़े। सन्ध्या-वधू ने अपने धूसर अञ्चल से धरणी का नग्न पृष्ठ-देश ढक लिया। थोड़ी देर के बाद, ताराओं की मुक्ता-माला पहन, ललाट पर चन्द्र-चन्दन की बिंदी लगा, दिगङ्गनाओं

को उज्ज्वल दर्पण दिखाती और चकोरों को चाँदनी की चाशनी चखाती हुई, राका-रजनी-रमणी आ पहुँची। उस समय मालूम हुआ, मानो यह दुनिया ज्योत्स्ना-तरङ्ग मे स्नान कर रही है।

चटाई पर बैठे-बैठे कुमार अनुक्षण रूप-सुधा-माधुरी पान कर रहे थे। चन्द्रमा के किरण जाल मे अपने सौन्दर्य्य-सुरसरी गत मन-मीन को फँसाने की असफल चेष्टा कर रहे थे। कभी सिन्दुरिये आम और चिबुक से, कभी विकसित किंशुक-कुसुम और नासिका से, कभी अंगूर के गुच्छों और स्तन-स्तवक से कभी पके जम्बूफल और कुन्तल-कलाप से, कभी अनार-दानों और सुशोभन दन्त-पंक्ति से, कभी पकी हुई नारङ्गी और देह की गौरवमयी गौरता से तथा कभी मृगशावक के आकर्ण-विस्तृत नेत्रों और तूती के तरलायत लोचनों से सादृश्य मिलाते थे। कभी कण्ठ से विद्रुम की माला निकालकर उसमे उन कोमल अधरों की-सी अरुणिमा ढूँढते थे। किन्तु वह पीन-घन-सजीव शोभा कहीं मिलती न थी।

एकाएक प्रेमान्ध होकर फिर कुमार ने कहा—हे कन्दर्प-कीर्ति-लतिके! ये तेरे विषम विशिख-सरीखे नयन तो शेर के शिकारियों का भी शिकार करने वाले अचूक आखेटक मालूम होते है?—भोली-भाली तूती कूप मण्डूक थी। उस वन्याश्रम और उस कुञ्ज-कुटीर के सिवा भी कोई स्थान ससार मे है, यह उसे मालूम ही नहीं था, कुमार की उक्तियाँ सुनकर, सरल हँसी हँसती हुई, तूती उनका मुख निहारती रह जाती थी। तूती का भोलापन

देखकर कुमार मुग्ध हुए बिना न रह सके। वे मन-ही-मन सोचते थे कि चाहे तूती देवाङ्गना हो या वनदेवी हो, पर अपने राज्य में आई हुई सर्वोत्तम वस्तु को अब दूसरे किसी के हाथ में न जाने दूँगा। राज्यभर में जितनी उत्तमोत्तम वस्तुएँ हों, उन सबका संग्रह राजाओं को अवश्य ही करना चाहिये।

(५)

द्रुम-लताओं की ओट में छिपे-छिपे एक महात्माजी सारी प्रेम-लीला देख रहे थे। तूती की स्वाभाविक सरलता और कुमार की प्रेमकता देखकर हँसते-हँसते वे पूरब की ओर से प्रकट हुए। मानो आशुतोष शिव औढरदानी तूती और कुमार के प्रेम-याग से सन्तुष्ट होकर उनके मनोरथ पूर्ण करने के निमित्त प्रकट हुए हों। महात्माजी सर्वाङ्ग में भस्म रमाये, सिर पर जटा बाँधे और हाथ में सुमिरनी लिये हुए थे। इन्होंने ही तूती को, गंगा की बाढ़ में बहते जाते हुए देखकर, पकड़ा था और चार वर्ष की अवस्था से ही आज सोलह वर्ष की अवस्था तक, बड़े लाड़-प्यार से पाला था।

महात्मा को देख कर तूती सहम गई। राजकुमार, चकित होकर चरणों में झुक गये। महात्मा ने पूछा—तू कौन है। तेरा यहाँ क्या काम है?—राजकुमार ने हाथ जोड़कर कहा—महात्मन्! मृगयावश इस जंगल में चला आया हूँ। एकाएक मैं आपकी कुटी की ओर निकल आया। यहाँ आने पर, मैं इस देवी को देखकर स्तम्भित हो गया। मैंने ऐसा भोला-भाला अनूठा रूप कभी देखा नहीं था। इस पर्ण-कुटी के पास आते ही, मैं

इस देवी को रोते देखा। कुछ ही देर पहले यह हँस रही थी। इसका रोना देखकर मैं अधीर हो गया। इसे भूख-प्यास के कारण रोते जानकर, मैं विमल-सलिला गङ्गा में से थोड़ा जल और कुछ जंगली फल ले आया ; किन्तु इसने मेरा सत्कार स्वीकार नहीं किया है। इसका कारण मुझे ज्ञात नहीं। इसके सिवा मेरा कोई अपराध नहीं। अभी तक मैंने इस देवी की केवल मानसिक पूजा की है। इस अलौकिक रूप ने मुझे अपना किंकर बना लिया है। मैं इस अमूल्य रत्न का भिक्षुक हूँ। आप इस अपराध को यदि दण्डनीय समझते हैं, तो इस अतुलनीय रूप-रत्न का याचक बनकर मैं आपका शाप भी ग्रहण कर सकता हूँ।

राजकुमार की सच्ची बातें सुनकर महात्मा ने कहा—हम तुम्हारे सद्भाव से सन्तुष्ट हैं। तुम राजकुमार जान पड़ते हो। तुम्हारा ब्रह्मचर्य्य-प्रदीप्त मुख-मण्डल देखकर हम प्रसन्न हैं। यह कन्या गंगा की बाढ़ में बहकर आई थी। हमने बड़े स्नेह से इसका पालन-पोषण किया है। आज हमारा स्नेह-सम्वर्द्धन सार्थक हुआ। हमारे-जैसे विजन-वन-विहारी वालाम्बु-पर्णाहारी की कुटी में इसको कष्ट होता था। यह तुम्हारे राजमन्दिर के ही योग्य है। हम हृदय से आशीर्वाद देते हैं कि यह मणि-काञ्चन-संयोग सफल हो। मणि का स्थान राजमुकुट ही उपयुक्त है।

(६)

शशि-शेखर-कुमार भी एक राजा के लाड़ले पुत्र ही तो थे। अकण्टक सुख से पला हुआ उनका शरीर मक्खन-सा मुलायम

और चिकना था। दीर्घ भुजायें, चौड़ी ऊँची छाती, चटकीला चेहरा, कसरत से कसी हुई देह और प्रशस्तोन्नत ललाट—सभी अवयव मनोहर थे। मोतियों से गुथी सोने की गोल-गोल बालियाँ कानों में पड़ी थीं। कानों तक फैले हुए नेत्र यों सोहते थे, मानों मुक्ता-फल उगलती हुई सीपियों के मुख चलित-पत्र-युक्त पद्म चुम्बन कर रहे हों। तूनी के योग्य ही सुवर्ण-घटित-प्रेम-पञ्जर मिल गया! सोने के पींजरे में सोने की चिड़िया बन्द हो गई!

वन के तोते जब पींजरों में बन्द होकर जन-समुदाय में आते है, तब पाण्डित्य प्राप्त कर अपना जीवन आदर्श बना लेते है। सुन्दर सरोवरों में चाहे कितना ही सुन्दर सरोज क्यों न खिले; पर जब तक भगवान शशिशेखर के मस्तक पर वे नही चढते, तब तक उनका ससार मे होना न होना, दोनों बराबर रहता है। जो वन ही में फूलते और झर जाते हैं, उन पुष्पों का उपयोग ही क्या है? कण्व-कन्या यदि दुष्यन्त की हृदय-सर्वस्वा नहीं हुई होती, तो उसके अक-गगन मे भरत-सरीखे पुत्र-पूर्णेन्दु के दर्शन पाकर ससार किस प्रकार पुलकित होता? 'महाकवि' का 'शाकुन्तल' ही आज क्यों ससार मे सर्वोच्च आसन पाता?

ठीक है—जिसने चन्द्रमा को सुन्दर बनाया, उसी ने चकोर के हृदय को भी प्रेममय बना दिया। जिसने मेघ को श्याम-सुन्दर बनाया, उसी ने बिजली को भी व्रज-बाला बना दिया! फूल बनानेवाले ने ही भ्रमर के छोटे से हृदय-केन्द्र में अगाध प्रेम-सागर उमड़ाकर 'गागर में सागर' भर दिया!

(७)

अहा ! जो तूती शून्यारण्य मे चहकती थी, जिसके कुन्तल-कपाल को पन्नगी-परिवार समझकर मयूर-माला अपनी चोंचों से धीरे-धीरे बखेरती थी, जिसके दिये हुए अनारदानों को चखनेवाले शुक-शावक कुटी के पास वृक्ष-शाखाओं पर बैठकर नित्य ही कलरव करते थे, जिसकी बोली सुनकर जङ्गली मैना भी अपनी बोली बिसार कर वैसी ही मीठी बोली बोलने का अभ्यास किया करती थी, जिसके फूलों से भरे अञ्चल मे से बावले-उतावले भ्रमरों का झुण्ड निकल-निकलकर, सुरभित-श्वास-समीर के लोभ से, घ्राण-रन्ध्र के पास टूट पडता था, वही तूती अब राज-प्रासाद के मखमली पर्दों मे, वृहद्दर्पणालकृत विविध-चित्र विभूपित विलास-मन्दिरों मे और खस की टट्टियो से जडी हुई बारहदरियों मे बन्द रहने लगी। जो बिजली वन मे तूती की शोभा निहारकर आरती उतार जाती थी, अब वही बिजली खिडकियों की राह से भी झाँकने नही पाती—तड़प-तडपकर बाहर ही रह जाती है ! वन्य वृक्ष लता-दिकों को सींचने के समय तूती के विधु-वदन पर जो श्रम-स्वेद-कण परिलक्षित होते थे, उन्हे प्रकृति देवी अपनी पवनान्दोलित लतिका-कन्याओं के पुष्पमय अञ्चलों से पोंछ लेती थी, अब उन्हीं कुडल कलित कल-कपोलों को शशि-शेखर-कुमार अपनी सुगन्ध सिक्त रेशमी रुमालों से पोंछकर, उन्हे आखों से लगा लेते है। जो हाथ झंझावात के झोंके से इतस्ततः उलझी हुई लताओं को सुधारने में सधे थे, अब वे ही हाथ हारमोनियम और सितार पर सध गये।

ससार का सारा सौन्दर्य्य यदि प्रेम की सुगन्ध से शून्य हो जाय, तो ईश्वर ने अपने 'मनोरञ्जन' के लिये जो यह विश्व-महा-नाटक रचा है, उसका पहला पर्दा कभी न उठे। सारा खेल मटियामेट हो जाय। प्रेम की सुगन्ध के विना यह जीवन-कुसुम सौन्दर्य्य की थाली लेकर क्या करेगा ?

देखिये, जिन पर्वत-शिलाओं पर घास-पात का पर्दा पड़ा था, जिनका कलेवर काई से ढका रहता था, जिन पर चाँदनी भी आकाश से उतरकर घड़ी-भर के लिये रँगरलियाँ मचा जाती थी, वही शिलाएँ आज पहाड़ की चोटियों से उतरकर प्रेमवश दृष्टि-उन्मेषिणी एव लोचनानन्ददायिनी मूर्त्ति बनकर, देव-मन्दिरों मे आ डटी है। अब उनका कलेवर प्रकृति की गोद में पले हुए फूलों से ढका हुआ नहीं है, बल्कि दूध की धाराओं से सींची हुई संगमर्मरी क्यारियों मे फलनेवाले फूलों के मोटे-मोटे गजरे उन्हे पहनाये जाते है। काई के बदले अब हरे रंग की जरीदार मख-मली पोशाक सुशोभित हो रही है। यही इस परिवर्तनशील ससार की विचित्रता है।

'मैना ! तू वनवासिनी, परी पींजरे आनि ;
जानि देव गति ताहि में, रही शान्त सुख मानि।'

• • • •

'कहें 'मीर' कवि नित्य, बोलती मधुरे बैन ;
तौभी तुझको धन्य, वनी तू अजहूं 'मैं-ना'।'

८—श्रीचण्डीप्रसाद, बी० ए० 'हृदयेश'

आप पीलीभीत के निवासी थे। आपके देहावसान को तीन वर्ष हो गये। आप सानुप्रास भाषा लिखते थे। आपकी लेखन-शैली मधुर और चरित्र-चित्रण आकर्षक होता था। यदि आप कुछ काल तक और जीवित रहते, तो हिन्दी-साहित्य मे एक विशिष्ट धारा प्रवाहित कर जाते। आपके 'मगल-प्रभात' और 'मनोरमा' आदि उपन्यास तथा 'नन्दन-निकुञ्ज' आदि गल्प-सग्रह प्रकाशित हो चुके है। कुछ दिनों तक आप 'चॉद' के सहकारी सपादक भी रह चुके हैं। कविताएँ भी आप अच्छी लिख लेते थे।

मुस्कान

(१)

ह शुभ दिन धीरे-धीरे निकट आने लगा, जिस दिन सुशीला की गोद भरी-पुरी होनेवाली थी ! मातृत्व ही नारी-जीवन का परम सार है और उसी सार-वस्तु की सुशीला शीघ्र ही अधिकारिणी होनेवाली है—यह जानकर सुशीला के पति सत्येन्द्र भी परम प्रसन्न हुए। दाम्पत्य-जीवन-रूपी कल्पतरु में मधुर फल के आगमन की सूचना पाकर पति-पत्नी के आनन्द का पारावार नहीं रहा।

सुशीला के सास-ससुर कोई नहीं थे ; इसलिए सुशीला को कभी-कभी अन्तर्वेदना हुआ करती थी , पर वह व्यथा पति के पवित्र शीतल-प्रेम सलिल में शीघ्र ही शान्त हो जाया करती थी। सुशीला अपने गृह की एकमात्र अधिश्वरी होने के साथ-ही-साथ अपने पति के अखण्ड प्रेम की भी एकमात्र अधिकारिणी थी। सत्येन्द्र सुशीला को अपनी आत्मा का ही दूसरा स्वरूप मानते थे और वे उसे अपने गले की मणिमाला के समान बड़े आदर और यत्न

से रखते थे। जबसे सुशीला को गर्भ-स्थिति हुई, तब से तो उन्होंने उसकी सुश्रूषा और सेवा की ओर भी सुचारु व्यवस्था कर दी थी। पहले घर मे केवल एक वृद्धा दासी थी, अब उन्होंने सुशीला की समवयस्का एक और परिचारिका का भी प्रबन्ध कर दिया। वे उसकी इच्छा की सदा पूर्ति किया करते थे। खाने-पीने मे छोडकर बाकी उसकी और किसी अभिलाषा का वह प्रतिवाद नही करते थे। सुशीला के मुख से निकलते-निकलते ही वे उसकी इच्छा को पूरी कर देते। प्रातःकाल और सायकाल वे उसे अपने साथ लेकर गृह-सलग्न उद्यान मे शीतल मधुर वायु का सेवन करते। रात्री मे भोजन के उपरान्त वे उसे धार्मिक वीर पुरुषों की पवित्र गाथाएँ सुनाते और उनकी सदा यही चेष्टा रहती कि सुशीला का मनोरञ्जन होता रहे। सुशीला के मन मे दुःख अथवा ग्लानि की एक क्षीण रेखा भी अङ्कित न होने पावे—इस विषय मे सत्येन्द्र सदा प्रयत्नशील रहते।

रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो चुका है। सत्येन्द्र अपने कमरे मे एक आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे किसी ग्रन्थ का पारायण कर रहे है—पास ही एक दूध के फेन के समान कोमल शय्या पर सुशीला लेटी हुई है। सुशीला एक टक अपने प्राणाधार के प्रोज्ज्वल मुख की ओर देख रही है। थोडी देर तक इस प्रकार रूप-सुधा पी चुकने के उपरान्त सुन्दरी सुशीला ने मृदुल मन्द स्वर मे कहा—नाथ! मेरी एक इच्छा है।

सत्येन्द्र—कहो प्रिये! निस्सकोच भाव से कह डालो। मैं

तुम्हारी इच्छा की अवश्य ही यथा-शक्ति पूर्ति करूँगा। ऐसा करने से मुझे बडा आनन्द मिलता है।

सुशीला—सो जानती हूँ देव ! यद्यपि आपने मेरी सुश्रूषा के लिये दो-दो परिचारिकाये नियुक्त कर दी है, पर तो भी मै सोचती हूँ कि यदि इस समय कोई अपना आत्मीय स्वजन आ जाता, तो बडा अच्छा होता। दोनों परिचारिकाय मेरी बडी सेवा करती है; पर तो भी जो स्नेह, जो आदर अपने आत्मीय से मिल सकता है, वह इन परिचारिकाओं से प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्येन्द्र—इसमे सन्देह नही। इस विषय मे मैं भी सोचता था, पर कुछ समझ मे नहीं आता। बहुत सोचने पर भी कोई ऐसा आत्मीय नहीं दिखाई पडता, जिसके आ जाने से तुम्हारी सेवा-सुश्रूषा की मधुर व्यवस्था हो सके। मेरी चचेरी भाभी है—उनका स्वभाव तुम जानती ही हो—वह बडी कर्कशा है। और भी दो-एक निकट सम्बन्धिनी है; पर वे भी सब लगभग एक ही-सी है। तुमने कुछ इस विषय मे सोचा है प्रिये ?

सुशीला—नाथ ! यदि गुणसुन्दरी को बुला लिया जाय, तो कैसा हो ?

सत्येन्द्र—बहुत उत्तम। तुमने बहुत ठीक सोचा। वास्तव मे उसके आ जाने से सब ठीक हो जायगा।

गुणसुन्दरी सुशीला की छोटी बहिन है। उसका विशद परिचय हम अगले परिच्छेद मे देंगे—सत्येन्द्र स्थानीय कॉलेज मे साहित्य के प्रोफेसर थे। उन्होंने दूसरे दिन कॉलेज पहुँचते ही

लखनऊ को, जहाँ सुशीला का मायका था, गुणसुन्दरी के बुलाने के लिये तार भेज दिया। तीसरे दिन ही गुणसुन्दरी अपने भाई के साथ आ गई।

पतिव्रता स्त्री की उपलब्धि जिस प्रकार पति के लिये परम-सौभाग्य का विषय है, एकान्त अनुरक्त पति की प्राप्ति भी पत्नी के लिये पूर्वकृत पुण्य-पुञ्ज की उतनी ही मधुर भेट है।

(२)

गुणसुन्दरी सुशीला की कनिष्ठा सहोदरा है। वह उससे ३ वर्ष छोटी है अर्थात् इस समय उसकी अवस्था १७ वर्ष की है। गुण-सुन्दरी ने आते ही घर की व्यवस्था के समस्त नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लिया और उन्हीं के अनुसार वह सुचारुरूप से गृहस्थी का विधान करने लगी। उसने आते ही सुशीला को एकान्त विश्राम का अवसर दे दिया और गृहस्थी की सारी चिन्ता का भार अपने सिर पर ओढ़कर उसने अपनी प्यारी सहोदरा को पूर्ण रूप से निश्चिन्त कर दिया।

गुणसुन्दरी बाल-विधवा है। वह अपने पति के पर्य्यंक पर केवल एक बार ही पौढी थी और उसके उपरान्त ही, आज ४ वर्ष हुए, उसका सौभाग्य-सिन्दूर दुर्भाग्य के कठोर विधान से पुँछ गया। तब से गुणसुन्दरी अपने पिता के ही घर पर रहती है। उसके पिता प्रकाण्ड विद्वान् हैं और उन्होंने भली-भाँति यह जान लिया था कि विधवा गुणसुन्दरी के तपोमय जीवन की मृदुल

अवाधगति के लिये यह अनिवार्य्य रूप से आवश्यक है, कि उसे ज्ञान, विवेक और आत्मानुभूति का पवित्र साहचर्य्य प्राप्त हो जाय। इसीलिये उन्होंने स्वय गुणसुन्दरी को सस्कृत तथा अन्य देशी भाषाओं की ऊँची शिक्षा दी थी। वाल्मीकि-रामायण और महाभारत के प्रसिद्ध श्लोक की वह दस-दस बार आवृति कर चुकी थी। कला-कौशल तथा गृह-प्रबन्ध की उसे पर्य्याप्त शिक्षा विवाह से पहले ही मिल चुकी थी, इसीलिये गुणसुन्दरी केवल अतुलनीया सुन्दरी ही नहीं थी, वह अद्वितीया गुणवती विदुषी भी थी।

सत्येन्द्र के घर मे आते ही उसने गृहस्थी का सुचारु प्रबन्ध करना प्रारम्भ कर दिया। माधुर्य्य और आनन्द की नदी-सी उस घर मे प्रवाहित होने लगी। प्रात.काल ब्रह्ममुहूर्त मे उठकर वह नित्य कर्मादि से निवृत्त हो जाती और उसके उपरान्त वह गृह-संलग्न उद्यान से सुमन चयन करके लाती तथा चन्दन, नैवेद्य इत्यादि प्रस्तुत करके वह सत्येन्द्र के स्नानादि मे निवृत्त होते-न-होते उनकी पूजा की मधुर व्यवस्था कर देती। अपने हाथ ही से वह सुस्वादु भोजन बनाती और बडे प्रेम से अपनी बहिन और जीजाजी को जिमाती। सत्येन्द्र के कालिज चले जाने पर उनके पठन-कक्ष को साफ करके वह उनकी पुस्तको को सुन्दर प्रकार से सजा देती। सायकाल को अपने हाथ से सुगधित फूलो के सुरम्य गुलदस्ते बनाकर वह उनके टेबुल पर लगा देती। इस प्रकार गुणवती गुणसुन्दरी ने सत्येन्द्र को सुशीला की प्रेममयी सेवा एव श्रद्धा-मयी सुश्रूषा का अभाव क्षणभर भी अनुभव नहीं करने दिया। सत्येन्द्र

भी गुणसुन्दरी को स्नेहमयी श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे—उसके गुणों का ऐसा विकास देखकर वे बड़े सन्तुष्ट हुए।

परिजन ही के प्रति नहीं—परिचारिकाओं के प्रति भी गुण-सुन्दरी का ऐसा स्नेहमय व्यवहार था, कि वे भी उसे पाकर बड़ी प्रसन्न हुई और उस पर बहन की भाँति प्रेम करने लगीं। ऐसी सुन्दरी गुणवती स्वामिनी की सेवा को वे अपना सौभाग्य समझने लगी।

गुणसुन्दरी अपूर्व रूप-राशि की स्वामिनी थी अवश्य, पर उसने इस यौवन-वन को यों ही छोड दिया था। शृंगार के नाम से उसके कोमल शरीर पर एक भी आभूषण नही था। उसके हिम-शुभ्र ललाट पर न तो कृष्ण बिन्दु सुशोभित होता था और न उसके सहज-अरुण अधर पर ताम्बूल-राग ही विलसित होता था। उसकी उस देह माधुरी को न तो चित्राम्बर ही आच्छादित करता था और न उसकी कुन्तल केश राशि पर पुष्पहार ही सुगन्ध का विस्तार करता था। वह पहनती थी केवल एक स्वच्छ शुभ्र सारी और उसके उन्नत पुण्य पीन-पयोधर आच्छादित होते थे एक खद्दर की जाकट द्वारा। बस यही उसकी वैराग्यमयी वेष-भूषा थी, यही उसकी सन्यासमयी शोभा थी और यही उसकी पवित्र तपोमयी माधुरी थी। वह निष्कलक आत्म-प्रभा की भाँति, निर्वि-कार तपोमयी साधना की भाँति एव तेजोमयी पुण्य-पवित्रता की भाँति प्रतीत होती थी। विधवा के संन्यास अर्थात् निष्काम कर्म योगमय जीवन का सम्पूर्ण रहस्य उसके आन्तरिक लोचनों के

सम्मुख विघून हो चुका था और उसने पिता की पुण्यमयी शिक्षा के पावन प्रभाव से यह जान लिया था कि इस वैधव्य के दुःखमय जीवन को पवित्र एवं अबाध मृदुल गति से व्यतीत करने का एक मात्र उपाय निःस्वार्थ सेवामयी साधना है। गुणसुन्दरी सदा, निर्विकार हृदय से, निस्स्वार्थ बुद्धि से एवं निष्काम कामना से इसी साधना के अनुष्ठान मे तन्मयी होकर रत रहती।

सेवा और साधना—दोनों सहोदरा है और उनकी जननी है पुण्य-प्रवृत्ति।

(३)

श्रावण-शुक्ला-त्रयोदशी के प्रातःकाल शुभ ब्राह्म-मुहूर्त मे सुशीला ने पुत्र-रत्न प्रसव किया। सत्येन्द्र एवं सुशीला के आनन्द की बात जाने दीजिये, उनके सारा घर-का-घर आनन्द की मन्दाकिनी से प्लावित होने लगा। गुणसुन्दरी अपनी माता के घर ही से एक सुवर्ण की कण्ठमाला बनवा लाई थी जिसमे मध्यमणि के स्थान पर एक सुवर्ण मण्डित रुद्राक्ष था। उसने अपने पवित्र आशीर्वाद के साथ उसे नवजात शिशु के गले मे रक्षा-कवच के रूप मे पहना दिया। उस दिन सत्येन्द्र और सुशीला ने देखा कि गुणसुन्दरी के मुख पर एक अपूर्व उल्लास है, एक परम पवित्र तेज है। उस दिन गुणसुन्दरी का गम्भीर प्रशान्त हृदय-सागर भी चन्द्र-दर्शन को पाकर आनन्दातिरेक से उद्वेलित होने लगा।

गुणसुन्दरी स्वभावतः ही गम्भीर प्रकृति की थी। रस-रंग, हास, परिहास पर उसका विशेष अनुराग नही था, पर सुशीला के

उस परम आनन्द मे योग देने के कारण उसका वह गम्भीर भाव अनेकाश मे तिरोहित हो गया था और उसके मुख-मण्डल की शोभा आन्तरिक आनन्द की श्री से और भी मनोहर एव प्रभा-मयी हो गई थी। सत्येन्द्र गुणसुन्दरी के गुणों पर मुग्ध थे ही और जैसा हमने पहले कहा है, वे उस पर विशेष रूप से स्नेहमयी श्रद्धा रखते थे। पर उस आनन्द से प्रफुल्ल वदन-कमल की जो अपूर्व शोभा उन्होंने उस आनन्द-अवसर पर देखी वह कुछ और ही प्रकार की थी, उसमे कोई और ही प्रकार का निरालापन था। उसे देखते ही उनके हृदय म एक और ही प्रकार को प्रवृत्ति जागृत हो उठी। अभी तक उनका जो स्नेह श्रद्धा के पवित्र शीतल सलिल से सिञ्चित होता था, वह अब दूसरी ही प्रकार के प्रवृत्ति प्रवाह मे अवगाहन करने लगा। वात्सल्य शृङ्गार मे परिणत हो गया।

तब तो सत्येन्द्र एक प्रकार से व्याकुल हो उठे। वे विद्वान् थे, पण्डित थे और अब तक उनका जीवन सदाचार ही के साहचर्य्य मे व्यतीत हुआ था। उन्होंने इस प्रवृत्ति को दबाने की चेष्टा की पर वह उनसे दबी नहीं। वे गुणसुन्दरी को बार-बार देखने के लिये आकुल हो उठते और निरर्थक ही उसे अपने कमरे मे किन्हीं कामों के बहाने बुलाकर रात-दिन मे वे उसका दस-पाँच बार दर्शन कर लेते, पर इससे उन्हें शांति मिलना तो दूर, उनकी लालसा और भी तीव्र होती जाती। इधर सुशीला प्रसूतिकागार मे थी और इसलिये गुणसुन्दरी को उनके कमरे मे किसी-न-किसी काम के

लिये कई-कई बार आना ही पडता था। सुशीला की निरन्तर अनुपस्थिति से अनुचित लाभ उठाकर सत्येन्द्र की मोहमयी प्रकृति और भी प्रबल वेग से प्रधावमान होने लगी।

आज नवजात-शिशु के शुभ नामकरण-संस्कार का आनन्द-दिन है। दिन-भर गुणसुन्दरी अभ्यागतों की अभ्यर्थना मे लगी रही और उसने स्वय दिन-भर बिना खाये-पीये सबको खिलाया पिलाया। गुणसुन्दरी उस उत्सव मे अपने अस्तित्व तक को भूल गई।

रात्रि के लगभग आठ बजे गुणसुन्दरी अपने जीजा सत्येन्द्र के लिये भोजन लेकर उनके कमरे मे गई। सत्येन्द्र उस समय कोई साहित्य की पुस्तक पढ रहे थे और उसमे वर्णित नायिका के सुन्दर स्वरूप की कल्पना को गुणसुन्दरी मे आरोपित करने की धुन मे लगे हुए थे। ऐसे ही समय गुणसुन्दरी ने भोजन की थाली लिये हुए उनके कमरे मे प्रवेश किया। सत्येन्द्र एकटक गुणसुन्दरी के मुख-चन्द्र की ओर देखने लगे। उस समय सहसा उनके मुख की आकृति कुछ बड़ी विलक्षण-सी हो गई। उनकी आँखे फैल गई, मुख-विवर खुल गया, दन्त-पक्ति कुछ बाहर निकल आई और उनकी चेष्टा ठीक वैसी ही हो गई, जैसी किसी मूर्ख की उस समय हो जाती है, जब वह अपनी दृष्टि मे कोई बडी विलक्षण वस्तु देखता है। गुणसुन्दरी को जीजा का यह आश्चर्य-भाव कुछ ऐसी कुतूहलता से भरा हुआ प्रतीत हुआ, कि सहसा उसके स्निग्ध मृदुल अधर पर मन्द मुस्कान आ गई। उसने नीची दृष्टि कर ली

और भोजन की थाली टेबुल पर रखकर वह बिना कुछ कहे-सुने शीघ्र ही कमरे से बाहर चली गई।

सत्येन्द्र को उस रात मे क्षणभर के लिये भी नींद नहीं आई। उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ, कि मानो उनके हृदय मे, उनकी बुद्धि मे, उनकी आँखों मे, उनकी विवेक-दृष्टि मे, वह मधुर मन्द मुस्कान सजीव स्थिर दामिनी की भाँति प्रवेश कर गई।

यह एकान्त सत्य है, कि रूपवती रमणी की मधुर मन्द मुस्कान बडे-बडे ज्ञानी और पण्डितों को भी परम मूर्खों की भाँति उद्भ्रान्ति की गम्भीर अन्धकारमयी गुफा मे गिरा देती है।

(४)

धीरे-धीरे ब्राह्म-मुहूर्त आ पहुँचा। मन्द-मन्द शीतल समीर प्रवाहित होने लगी। नक्षत्रावली रात्रि-भर के विहार के उपरान्त परिश्रान्त होकर अपने-अपने प्रासाद मे प्रवेश करने लगी। सत्येन्द्र भी अपने कमरे से निकलकर गृह-सलग्न उद्यान मे जाकर घूमने लगे। उस समय उद्यान मे अनेक प्रकार के प्रस्फुटित पुष्पों की सुगन्ध परिव्याप्त हो रही थी और शीतल समीर का संयोग पाकर वह इधर-उधर इठलाती फिरती थी। उसके अञ्चल के सुशीतल स्पर्श से सत्येन्द्र का उत्तम मस्तिष्क कुछ-न-कुछ शान्त हो गया।

वे इधर-उधर गूमने लगे। वे अपनी उद्भ्रान्त विचारमाला में तल्लीन थे। गुणसुन्दरी की उस मधुर मन्द मुस्कान की मूक कविता का अर्थ तथा भाष्य करने मे वे ध्यानावस्थित-से हो रहे थे। कभी वे सोचते थे, कि वह मुस्कान क्रमशः परिवर्द्धित होनेवाली प्रेम-

प्रवृत्ति की प्रथम झलक थी और कभी उनका यह विचार स्थिर होता, कि वह मुस्कान उनकी प्रेम-भिक्षा के प्रति उपहासमयी उपेक्षा की प्रथम किरण थी। कभी वे सोचते, कि गुणसुन्दरी ने उस मधुर मुस्कान के द्वारा उनके प्रेम का अभिनन्दन किया था और कभी उनकी यह धारणा होती, कि उस अपूर्व संयमशीला रमणी ने उस मुस्कान के द्वारा उनके इस अनुचित साहस का तिरस्कार किया था। सत्येन्द्र निश्चित् रूप से उस रहस्यमयी मुस्कान का अर्थ समझने में कृतकार्य नहीं हो रहे थे। उनकी बुद्धि उद्भ्रान्त हो गई थी और उस उद्भ्रान्ति की संशय-स्वरूपा अग्नि को हृदय में धारण करके वे उस उद्यान में घूम रहे थे।

सहसा उन्हें एक ओर से गाने की ध्वनि सुनाई दी। उन्होंने कण्ठ-स्वर से जान लिया, कि गुणसुन्दरी ही गुनगुना रही है। सत्येन्द्र को यह जानकर और भी हर्ष हुआ, कि गुणसुन्दरी गान-विद्या में भी अधिकार रखती है। हृदय की प्रबल प्रेरणा से परिचालित होकर वे उसी ओर को, धीरे-धीरे उस मधुर गान को सुनते-सुनते अग्रसर होने लगे, ठीक उसी तरह जैसे मृगी वीणा-स्वर में आकृष्ट होकर उसी ओर को, चलने लगती है। गुणसुन्दरी का स्वर ही अभी तक सत्येन्द्र को सुनाई पडता था—अब स्पष्ट रूप से गान भी सुनाई पड़ने लगा। गुणसुन्दरी गा रही थी—

रे मन! भूल्यो फिरै जग बीच।
कुसुम कुसुम पै अटकत डोलै,
नीचे लखै नहिं मीच। रे मन०

एक बार फँस निकस न पैहै,
जैसे फँस्यो काई कीच। रे मन०
त्यों 'हृदयेश' सुमिर प्रभु-पद को,
छाँड़ि मदन मद नीच। रे मन०

उषा देवी प्राची दिशा मे स्थित होकर इस गान को तन्मयी बनी हुई सुन रही थी, उन मधुर स्वरों के स्पर्श से कोमल कुसुम रोमाञ्चित हो रहे थे। सत्येन्द्र ने प्रभात काल के उस स्निग्ध प्रकाश मे देखा, कि गुणसुन्दरी एक हाथ से डाल पकडे है और एक हाथ से जुही के कोमल फूल तोड-तोड़कर नीचे रखी हुई टोकरी में डालती जाती है। वह अपने इस कृत्य मे तन्मयी होकर आन्तरिक आनन्द के आवेश मे गुनगुना रही है। सत्येन्द्र एकटक से इस छवि-माधुरी को देखने लगे। थोडी देर तक इस स्वरूप-सुधा को पान करने के उपरान्त सत्येन्द्र ने मन्द मधुर स्वर में पुकारा—गुणसुन्दरी !

गुणसुन्दरी ने चकित हरिणी की भाँति पीछे फिरकर देखा। उसके हाथ से डाल छुट गई। उसने सलज्ज भाव से प्रत्युत्तर दिया—जीजाजी ?

सत्येन्द्र—हाँ! क्या फूल तोड रही हो ?

गुणसुन्दरी—हाँ! पूजन के लिये फूल चुन रही हूँ।

सत्येन्द्र ने हृदय मे साहस भरकर कहा—गुणसुन्दरी! मै तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।

गुणसुन्दरी ने चकित भाव से कहा—कहिये!

सत्येन्द्र क्षण-भर के लिए चुप हो गये। फिर बोले—मुख से कहने का साहस नहीं है, मैं लिखकर दूँगा। क्या तुम उसका उत्तर देने की कृपा करोगी?

गुणसुन्दरी ने स्थिर भाव से कहा—जीजाजी! मेरा विश्वास है कि हृदय के जिन भावों को एक दूसरे की समुपस्थिति में मुख की भाषा-द्वारा व्यक्त करने में लज्जा या संकोच मालूम हो, तो उनको लिखकर व्यक्त करना भी अनुचित ही है। उनका हृदय में घुट-घुटकर मरजाना ही मेरी तुच्छ बुद्धि में बहुत अच्छा है।

सत्येन्द्र—ऐसा भी हो सकता है, पर मेरे प्रश्न का क्या उत्तर है?

गुणसुन्दरी—वही, जो मैंने अभी कहा है। वह स्पष्ट है।

इतना कहकर गुणसुन्दरी शीघ्रता-पूर्वक वहाँ से चली गई। सत्येन्द्र और भी उलझन में पड़ गये। गये मुस्कान की परिभाषा करने और रास्ते में दूसरी ही शंका उठ खड़ी हुई।

मानसिक ग्रन्थि का तारतम्य कुछ ऐसा विलक्षण होता है कि उसको जितना ही सुलझाया जाय, वह उतना ही और उलझता जाता है। इसका सबसे उत्तम उपाय है—अग्नि-संस्कार। पर उसका अनुष्ठान उतना ही कठिन है, जितनी की सायुज्य मुक्ति की साधना।

(५)

इस घटना को घटित हुए लगभग एक सप्ताह व्यतीत नहीं होने पाया था कि सुशीला के भाई हेमचन्द्रजी गुणसुन्दरी को बुला ले जाने के लिए आ गये। गुणसुन्दरी विधवा हो जाने के

थी। वे रोक नहीं सकते थे—उनके देखते-देखते ही उनकी हृदय-रत्न-राशि को दूसरा लिये जा रहा था। सत्येन्द्र बड़े आकुल हो गये, पर उपायान्तर था ही नहीं—क्या करते?

दूसरे दिन ५ बजे सायकाल की गाडी से गुणसुन्दरी का जाना निश्चित हो गया। सुशीला भी क्या करती? उसने भी एकाध बार गुणसुन्दरी को छोड जाने के लिये हेमचन्द्र से अनुरोध किया, पर हेमचन्द्र की उक्ति के सन्मुख उसे भी विवश होकर अन्ततः स्वीकृति देनी ही पडी।

इन २४ घण्टों के भीतर सत्येन्द्र ने सहस्रों बार यह चेष्टा की कि गुणसुन्दरी से एकान्त मे मिलने का अवसर प्राप्त करे; पर वे बार-बार विफल-प्रयास हुए। गुणसुन्दरी उनकी दृष्टि के सम्मुख कई बार पडी, कई बार उन्होंने आँखों-आँखों मे उससे अपने कमरे मे आने के लिए आकुल अनुरोध किया, पर गुणसुन्दरी ने देखकर भी नहीं देखा। उस दिन उसने हेमचन्द्र और सत्येन्द्र को भोजन भी साथ ही साथ कराया। सत्येन्द्र को एकान्त-मिलन का अवसर दिया ही नहीं। अन्त मे वह समय आ पहुँचा, जब उनकी प्राण-प्रतिमा उनके घर और हृदय को अन्धकार-मय बनाकर जाने के लिए प्रस्तुत हुई। और चलते समय भी उसका इतना निष्ठुर भाव था कि उसने एक बार भी उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देखा। सत्येन्द्र बडे ही दुखित, आकुल और क्षुभित हो गये। अश्रु-विसर्जन के साथ सुशीला ने गुणसुन्दरी और हेमचन्द्र को विदा किया, गुणसुन्दरी ने चलते समय शिशु का मुख चूमा

और आँखों मे आँसू भरकर उसने बडी बहन को प्रणाम किया। सत्येन्द्र उन दोनों को पहुँचाने के लिए साथ-साथ स्टेशन तक गये। स्टेशन पर पहुँचते-पहुँचते गाडी आ गाई और एक सेकण्ड क्लास मे हेमचन्द्र गुणसुन्दरी के साथ बैठ गये। सत्येन्द्र प्लेटफार्म पर खडे-खडे उस रूप-राशि को देखने लगे। गुणसुन्दरी के उस निष्ठुर आचरण ने उनके हृदय मे बडी वेदना उत्पन्न कर दी थी। उसी समय जब ट्रेन चलने मे ३-४ मिनट शेष थे, गुणसुन्दरी ने अपने मुखावरण को हटाकर कोमल स्वर मे पुकारा—जीजाजी!

सत्येन्द्र ने कम्पित कण्ठ से कहा—हाँ।

गुणसुन्दरी—कृपा करके बहन के साथ दुर्गापूजा की छुट्टी मे अवश्य पधारियेगा। जब मै आई थी, तब माताजी ने मुझसे कह दिया था कि मै आप से इस विषय मे अनुरोध-पूर्वक उनकी आज्ञा कह दूँ। नवजात शिशु और बहन को देखने के लिए उनका बहुत मन है।

सत्येन्द्र ने दर्द-भरी हँसी के साथ व्यंग्य-पूर्वक कहा—पर तुम्हे इस अनुरोध का स्मरण बडे बिलम्ब से हुआ।

गुणसुन्दरी—हाँ! काम मे लगी रहने से मै भूल-सी गई थी। मुझे आशा है कि आप अपनी छोटी समझ कर मेरे इस अपराध को क्षमा करेंगे।

सत्येन्द्र—कह नहीं सकता, हो सका तो आऊँगा।

गुणसुन्दरी—हो सका नहीं, आपको आना ही पड़ेगा।

सत्येन्द्र—क्यों?

गुणसुन्दरी—आपको मेरे अनुरोध की रक्षा करनी चाहिये। आप अवश्य आइयेगा। आपको मेरी शपथ है।

सत्येन्द्र—अच्छा आऊँगा।

गाडी चल दी। हृदय थामकर सत्येन्द्र घर लौट आये।

सत्येन्द्र ने देखा कि घर जैसे प्राण-शून्य हो गया है। सबके होते हुए भी वह माधुर्य अन्तर्हित हो गया।

इसीलिये यह सम्पूर्ण सत्य है कि आलम्बन के बिना उद्दीपन केवल शव का मण्डन-मात्र है।

(६)

बडे दु खित एव व्यथित होकर सत्येन्द्र घर लौटे थे। यद्यपि गुणसुन्दरी के उस निष्ठुर भाव ने उनके हृदय को बडी ही वेदना पहुँचाई थी पर उसकी चलते समय की शपथ ने उनके उस काल्पनिक तिरस्कार की मात्रा को अधिकाश मे दूर कर दिया था। सत्येन्द्र सुशीला से बिना मिले ही अपने कमरे में चले गये और जल्दी-जल्दी कपडे उतारकर वह बडे अन्यमनस्क भाव से एक आराम-कुर्सी पर लेट गये। उनके हृदय-श्मशान मे, उनकी अभिलाषा की चिता के आलोक मे, प्रेतात्माओं की भाँति प्रवृत्ति-पुञ्ज हाहाकार कर रहा था और उनके मस्तिष्क मे विरोधी भावों की सेना तुमुल-सग्राम मे प्रवृत्त हो रही थी। सत्येन्द्र बडे आकुल, बड़े उद्विग्न, एव बडे सतप्त हो रहे थे।

रात्रि का अन्धकार क्रमश· प्रगाढ हो रहा था। उसी समय उनकी परिचारिका ने उनके कमरे मे प्रवेश किया और उसने आते

ही उनके हाथ मे एक बन्द लिफाफा दे दिया। वह विना कुछ कहे-सुने चली गई—सत्येन्द्र ने भी उससे कुछ नही पूछा।

सत्येन्द्र ने काँपते हुए हाथों से पत्र खोला। बडे उत्सुक भाव से वे उसे पढने लगे। पत्र की प्रतिलिपि इस भाँति है—

'पूज्य जीजाजी—श्री चरणों मे प्रणाम!

न माना आपने। पत्र लिख ही तो डाला। ज्यों ही इसी नौकरानी ने मुझे आपका पत्र दिया, त्योंही क्रोध, क्षोभ एवं ग्लानि से मेरी बुरी दशा हो गई। पत्र खोलने से पहले ही मैंने भाई हेमचन्द्र को, मुझे बुला ले जाने के लिये पत्र लिख दिया।

एक बार मेरे मन मे आया कि मैं आपका पत्र विना खोले ही सुशीला बहन को दे दूँ और इस प्रकार मैं दाम्पत्य-दण्ड-विधि के अनुसार आपको गार्हस्थ-न्यायालय से विश्वास-घात का समुचित दण्ड दिलाऊँ; पर मेरी आत्मा ने मुझे ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी। मैने सोचा कि सम्भव है, इसके कारण आप मे और मेरी बहन मे मन-मुटाव हो जाय और उसका दु:खमय परिणाम उस निर्दोष सरल बहन को भुगतना पडे; पर मुझे दु ख है कि आप पण्डित, विद्वान् एवं आचार्य होकर भी इस घृणित कृत्य की ओर प्रवृत्त होने मे कण-मात्र भी कुण्ठित एव लज्जित न हुए। छि:!

कदाचित् आपने यह सोचा होगा, कि एक तो वह मेरी साली है और उस पर भी है—बाल-विधवा। उसे भ्रष्ट करने का मेरा अधिकार है और उसमे सफल होना भी बडा सरल है, पर आपने इतने बडे विद्वान् होकर भी यह नहीं सोचा कि संसार-भर की

साली और बाल-विधवाएँ सभी मदन-देव की उपासिका नहीं होती है और न काम-प्रवृत्ति का उन पर इतना प्रबल अधिकार ही होता है कि वह प्रत्येक भगिनी-पति एव परपुरुष को आलिङ्गन करने के लिये इतनी उद्विग्न हो उठे कि वे उस प्रबल प्रवाह मे अपने धर्म, विवेक एव सर्वश्रेष्ठ सतीत्व को नगण्य वस्तु की भाँति बह जाने दे। जीजाजी ! हम बाल-विधवा है—हमारा जीवन कर्म-सन्यास का प्रोज्ज्वल उदाहरण है—सबकी बात जाने दीजिये अपवाद कौन से नियम मे नही है—पर अब भी हमारी जाति पुण्यशीलाओं से एकान्त रूप मे खाली नही हो गई है—अब भी हम गर्व करती है कि हम उन्ही आदि सती की प्रतिनिधि है। हम वैधव्य के कठोर कारागार मे साधना की कठोर शृङ्खला से सर्व-विजयी मदन-देव को जकडकर हृदय के एक अन्धकारमय निभृत कोण मे डाल देती है। जीजाजी ! आप चाहे कुछ हों—चाहे बृहस्पति के साक्षात् अवतार ही क्यों न हों ; पर रमणी-हृदय का रहस्य आप नही जान सकेगे। छि:, आप बडे निर्लज्ज है !

मुझे जहाँ तक स्मरण है, मैने आपके सम्मुख ऐसा कोई आचरण नहीं किया, जिससे आपको ऐसा घृणित पत्र लिखने का साहस हुआ हो। हाँ ! एक बार अवश्य आपको देखकर मुझे मुस्कराहट आ गई थी। उससे आपने कदाचित् यही अभिप्राय निकाला (सुना है आप तर्क-शास्त्र के भी पण्डित हैं) कि गुण-सुन्दरी मेरे इस जवाकुसुम-सुगन्धित चारु केश-विन्यास पर, मेरी इस सुन्दर मुख-श्री पर, एवं मेरे इस सिल्क-सूट-शोभित

शरीर पर मुग्ध होकर, आनन्द से, कामासक्त होकर मुस्करा रही है। पर आपकी यह भूल थी। वास्तव मे उस दिन आपने मेरी ओर कुछ ऐसे विलक्षण भाव से देखा था—आपके नेत्र विस्फारित, आपका मुख विवृत, आपकी आकृति विकृत एव आपकी चेष्टा कुतूहलमयी थी—मुझे सहसा मुस्कराहट आ गई। सच मानिये, मैने उस दिन आपके मुख पर मूर्खत्व का प्रोज्ज्वल नृत्य देखा था—बस इसीलिए मै मुस्करा पडी और पण्डित-प्रवर साहित्याचार्य श्रीमान् प्रोफेसर सत्येन्द्र एम० ए०, पी० एच० डी० महाशय ने उसका जो अर्थ लगाया उससे उनकी मिट्टी पलीत हुई सो तो हुई, मुझ निरपराधिनी को भी व्यर्थ मे आत्मग्लानि सहनी पडी।

जीजाजी! आपने अपनी सरल सती स्त्री के प्रति विश्वास-घात किया है। आपको इसका प्रायश्चित्त करना चाहिये और अपने इस महा कुत्सित आचरण के लिये उस पुण्यमयी देवी से क्षमा माँगनी चाहिए। इसी मे आपका कल्याण है।

जीजाजी! रमणी पुष्प की भाँति मधुर, रत्न की भाँति प्रभामयी, प्रभात-तुषार-कण की भाँति पवित्र, आत्मा की भाँति प्रकाशमयी, साधना की भाँति तपोमयी एवं भगवती शक्ति की भाँति पुण्यमयी है, अत: आपको अपने कल्याण के लिये इस बात का ध्यान रखना परम आवश्यक है कि आप उसके हृदय-सागर को अपने घृणित आचरण से उद्वेलित न करे, क्योकि उसके अन्तर मे ऐसी वड़वाग्नि निहित है, जिसमे अपनी समस्त सृष्टि के समेत स्वय भगवान् तक भस्मावशेष हो सकते हैं।

जीजाजी, मै आपकी छोटी हूँ । यदि आपके प्रति मैने कुछ अनुचित व्यवहार कर दिया हो, या मुझसे प्रमाद-वश कोई अपराध बन पडा हो, तो उसे आप अपने उदार हृदय से क्षमा करने की कृपा करे । साथ-साथ मेरी यह भी विनय है कि इस घटना से उत्पन्न होनेवाली ग्लानि और वेदना को सतत साधना की सुर-सरिता मे प्रवाहित कर देने की सदा चेष्टा कीजियेगा ।

दुर्गा-पूजा के अवसर पर प्यारी वहन के साथ अवश्य ही दर्शन देने की कृपा कीजियेगा ।

आपकी वात्सल्य-पात्री—

गुणसुन्दरी'

'पुनश्च—इस पत्र के साथ आपका पत्र भी लौटा रही हूँ । सच मानियेगा, मैने आपका पत्र अच्छी तरह पढ़ा भी नही है । ऊपर ही की दो-चार लाइने पढ़कर मै समझ गई कि उसमे कैसे-कैसे भ्रष्ट विचार ग्रथित किये गये होंगे ।'

पत्र को समाप्त करते ही सत्येन्द्र का वह मोहावरण, जो लालसा ने उनकी विशुद्ध विवेक-दृष्टि के सम्मुख डाल दिया था, हट गया । उन्होंने आत्म-प्रकाश मे देखा कि वह उनका आचरण कितना नीच, कितना हेय एव कितना कुत्सित है । आत्मग्लानि की प्रबल अग्नि धधक उठी और उनका सारा हृदय उसमे धक-धक करके जलने लगा ।

आध्यात्मिक मूर्छा का नाम मोह है ।

• • •

लगभग २० मिनट के उपरान्त सुशीला ने अपने नव-जात शिशु को गोद मे लिये प्रवेश किया। आते ही उसने शिशु को सत्येन्द्र की गोद मे दिया और आप पास ही पडी हुई कुर्सी पर बैठ गई। सत्येन्द्र ने शिशु को गोद मे ले तो लिया; पर उनके मुख पर नित्य की-सी प्रफुल्लिता नहीं दिखाई दी। उनके हृदय में ग्लानि, पश्चात्ताप और वेदना की भीपण अग्नित्रयी धॉय-धॉय करके जल रही थी और उसकी व्यथा के लक्षण उनके शुष्क मुख-कमल पर सुस्पष्ट रूप से दिखाई पड रहे थे। सुशीला के स्नेहमय सरस लोचनों से यह भाव छिपा नहीं रह सका और उसने बडे आकुल भाव से सत्येन्द्र का हाथ अपने हाथ मे लेकर कहा—नाथ! आज आप इतने व्यथित क्यों है?

सत्येन्द्र—प्यारी मैंने एक घोर पाप किया है और उसीकी वेदना से मेरा हृदय जल रहा है।

सुशीला—पाप! आप और पाप? असम्भव! मैं इस बात पर विश्वास करने को प्रस्तुत नहीं हूँ।

सत्येन्द्र—तुम सरल एव एकान्त पवित्र हो; इसीलिये तुम ऐसा समझती हो। मैंने तुम्हारे प्रति विश्वास-घात किया है और मैं तुम्हारी क्षमा का भिखारी हूँ।

सुशीला—यह उल्टी बात कैसे देव? प्रभु होकर दासी से क्षमा-याचना? मुझे आपको क्षमा करने का क्या अधिकार है,? मेरे प्रति यदि आप कोई अपराध भी करें, तो भी वह पाप नहीं, आपका अधिकार है।

सत्येन्द्र—सो बात नहीं है प्रिये! पाप सदा पाप है। पाप करने का किसी को भी अधिकार नहीं है। मैं सच कहता हूँ—स्वय भगवती राजराजेश्वरी कल्याणसुन्दरी साक्षी है—कि जब तक तुम मुझे अपने हृदय से क्षमा नहीं कर दोगी, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी, क्योंकि तब तक मुँह खोलकर मै अपने पाप को कहने का साहस ही नही कर सकूँगा। क्षमा! प्यारी क्षमा!

सुशीला ने साश्रुलोचना होकर कहा—नाथ! यदि मेरे ऐसा कहने ही से आपके हृदय को शान्ति मिल सकती है, तो मैं आपको क्षमा करती हूँ, पर मै यह शब्द केवल आपके एकान्त अनुरोध से कह रही हूँ, नहीं तो मेरा निज का विचार है कि आप मेरे लिये सदा निष्पाप है। पाप आपके स्पर्शमात्र से पुण्य में परिणत हो सकता है, आप मेरे ईश्वर है।

सत्येन्द्र ने सजल नेत्र हो कर दोनों पत्र सुशीला के हाथ मे दे दिये। सुशीला उन्हे बड़े मनोयोग-पूर्वक पढने लगी। साद्यान्त पढ चुकने पर उसके मुख पर मन्द, मधुर मुस्कान दिखाई दी। सत्येन्द्र के गले मे बड़े प्रेम से हाथ डालकर उसने कहा—बस इतनी ही सी बात के लिए आपने आकाश-पाताल एक कर दिया था? सत्येन्द्र के लोचन-युगल से अश्रुधारा पतित होने लगी। सुशीला ने अपने अञ्चल से उनके आँसू पोंछ डाले और फिर उसने हार्मोनियम उठाकर इस चरण को बार-बार मधुर स्वर मे गाना प्रारम्भ कर दिया—

'सूरदास प्रभु वे अति खोटे, वह उनहू ते अति ही खोटी।
तुम जानत राधा है छोटी।'

सत्येन्द्र भी इस बार मुस्करा दिये।

सती का सहज-सुन्दर स्नेह सुर-सरिता की स्वच्छ धारा से भी अधिक विमल, शीतल एव पवित्र है।

(७)

सुशीला की विमल आमोद-लहरी के शीतल प्रवाह ने सत्येन्द्र के हृदय की वेदना एव ग्लानि को अधिकाश मे प्रशमित कर दिया था, पर अब भी कभी-कभी उनकी भस्म मे से एकाध स्फुलिङ्ग चमक उठती है। उमे भी शान्ति करने के लिए सत्येन्द्र सुशीला के समेत दुर्गापूजा की छुट्टी मे उनके मायके को गये। बडे आदर-सत्कार से गुणसुन्दरी तथा उसके माता-पिता और भाई ने उनका स्वागत किया। गुणसुन्दरी शिशु को पाकर हर्ष से खिल उठी।

उसके दूसरे दिन की बात है। प्रभात-काल का मनोरम प्रकाश धीरे-धीरे फैल रहा था—रजनी का अन्धकार क्रमशः पुष्पाभरण-भूषिता उषा देवी के पद-नख की आभा मे विलीन होता जा रहा था। गुणसुन्दरी उस समय घर से सटे हुए बाग मे पूजा के लिये फूल चुन रही थी। इसी समय, इसी भाव में, इसी दशा मे, एक दिन और सत्येन्द्र ने गुणसुन्दरी को देखा था। सत्येन्द्र ने पीछे से बड़े मृदुल स्वर मे पुकारा—गुणसुन्दरी!

गुणसुन्दरी ने भी उसी प्रकार चकित भाव से पीछे मुड़कर देखा और कहा—जीजाजी! कहिये चित्त तो प्रसन्न है?

सत्येन्द्र—दया है जगज्जननी की, मैं आज तुमसे क्षमा माँगने आया हूँ। तुम्हारे पत्र को पढ़कर मेरा मोह अन्तर्हित हो गया था और उस समय मुझे अपना वह व्यवहार बड़ा कुत्सित प्रतीत हुआ। मैने उसके लिये प्रायश्चित किया है—अब मैं पवित्र होकर आया हूँ। देवि! मुझे क्षमा करो।

गुणसुन्दरी—जीजाजी! आपको मुझसे नहीं, मेरी बहन से क्षमा माँगनी चाहिये। मेरी तो आप कुछ हानि कर ही नहीं सके—हाँ! अपनी स्त्री के प्रति आपने अवश्य विश्वास-घात किया है।

सत्येन्द्र—उस सती ने मुझे क्षमा कर दिया है। गुणसुन्दरी! वास्तव मे हम लोग बड़े मूर्ख है। रमणी के भावों का, रमणी की चेष्टाओं का रहस्य जानना सहज नहीं, बड़ा दुष्कर है। कारण कि उसमे उद्भ्रान्त कर देने की सामर्थ्य है; नही तो अधिकांश में रमणी का हृदय और मुख सरल भाव से ही उद्दीप्त रहता है। तुम्हारी उस मन्द मुस्कान ने मुझे उद्भ्रान्त कर दिया था—उसके रहस्य-भेद से असमर्थ होकर ही मैंने कैसा पाप करने का साहस किया था। देवि! अब मैं अपने अपराध के लिये तुमसे क्षमा माँगता हूँ।

गुणसुन्दरी—जीजाजी! आप कैसी बातें कह रहे है। मैं आपकी छोटी हूँ—आप मेरे बड़े हैं। मैं क्या आपको क्षमा करने के योग्य हूँ।

सत्येन्द्र ने हाथ जोड़कर घुटने टेक दिये, वे बड़े भक्ति-भरित स्वर में बोले—वयस से कुछ नहीं होता है। तुम महामाया की

प्रतिनिधि हो। जब तक तुम मुझे क्षमा नहीं करोगी, तब तक मैं यहाँ से नहीं उठूँगा।

गुणसुन्दरी के सहज-अरुण कपोल लज्जा से और भी गुलाबी हो गये। उसके अधर पर लज्जामयी मन्द मुस्कान नृत्य करने लगी—उसके ललाट पर प्रस्वेद के दो बिन्दु चमकने लगे—उसने सलज्ज भाव से कहा—उठिये जीजाजी! मुझे बड़ी लज्जा मालूम हो रही है। मैं नहीं जानती थी, कि आप नाट्य-कला में भी इतने प्रवीण हैं। यदि आपको इसी मे सन्तोष है, तो उठिये, मैं आपको क्षमा करती हूँ। उठिये! जल्द उठिये जीजाजी! मुझे बड़ी लज्जा मालूम हो रही है। दया करके शीघ्र उठिये।

ठीक उसी समय सुशीला ने एक ओर बड़े कोमल, मधुर, स्वर में यह पद गाते हुए प्रवेश किया—

'देख्यो सखी वह कुञ्ज कुटी तट;
बैठ्यो पलोटत राधिका पाँयन।'

सुशीला का मुख-मण्डल जिस प्रफुल्ल मन्द मुस्कान से विलसित हो रहा था, वह और भी मधुर रहस्यमयी एव पवित्र अर्थमयी थी।

६—श्रीराजेश्वरप्रसादसिंह

आप प्रयाग के रहनेवाले हैं। पहले आप 'लीडर' के कार्यालय में काम करते थे। अब स्वतंत्र रूप से साहित्य-सेवा करते हैं। आपकी कहानियाँ समाज की दुर्बलताओं पर आधारित होती है। आपकी शैली मे दार्शनिक विचारों का अच्छा सम्मिश्रण होता है। आप अंग्रेजी मे भी लिखते हैं और बहुत अच्छा लिखते है।

उमा

न्त में उमा की आँखें खुलीं। स्वार्थ पर चढ़ा हुआ प्रेम का रङ्ग उड़ गया—कलई खुल गई। बिहारी का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट हो गया। विवाह हुए अभी छः मास ही व्यतीत हुए थे, किन्तु इसी थोड़े समय में उसे अपनी भूल ज्ञात होने लगी। न व्यावहारिक प्रेम की कमी थी, न मौखिक; परन्तु यह दाम्पत्य जीवन का सुखद प्रेम न था, नाट्य-मञ्च का करुण-अभिनय था—नीरस, शुष्क। विवाह होने से पहले भी यही दशा थी। दोनों अपना-अपना पार्ट जी लगाकर खेलते थे। अभिनय वही था, वही हास-परिहास, वही आमोद-प्रमोद, वही प्रेम-रस में सनी हुई बातें, किन्तु उसमें और इसमें महान् अन्तर था। उसमें प्रेरणा शक्ति थी, इसमें केवल मनोरञ्जन की मात्रा। उसमें निष्काम अनुराग भी था, इसमें केवल स्वार्थ-ही-स्वार्थ। पहले उमा बिहारी से खुलकर मिलती थी; लेकिन अब उसके दिल में भी मैल आ गया था। कृत्रिम प्रेम का अभिप्राय मनोभाव पर परदा डालता था।

उमा दिल-ही-दिल मे कुढती और अपने भाग्य को रोती। उसकी इस दुर्दशा का उत्तरदायित्व केवल उसी पर था। उसके पिता पाश्चात्य सभ्यता के उपासक थे, और स्त्री-जाति के जन्म-सिद्धि स्वत्वों के अनुमोदक। वह अपने धनाढ्य पिता की एकलौती बेटी थी। उसकी माता कभी की मर चुकी थी। उसे पूरी आजादी थी, वह जो जी मे आता करती, जहाँ चाहती जाती, जिससे चाहती मिलती। उसने बिहारी के साथ अपनी इच्छा से विवाह किया था, पिता की अनुमति केवल नाममात्र को थी। यदि इस भूल का परिणाम केवल उसे ही भुगतना पडता, तो कदाचित् इतना दुःख न होता। उसे बडा अफसोस इस बात का था कि उसने उस व्यक्ति के साथ अन्याय किया, जो सहानुभूति के योग्य था, उसकी अव-हेलना की, जो उसका सच्चा प्रेमी था।

रतन और बिहारी लड़कपन के मित्र थे। दोनों उमा के पड़ोस मे रहते थे और उसके यहाँ आया-जाया करते थे। दोनों को उमा से प्रेम था। बिहारी चञ्चल प्रकृति का था, रतन गाम्भीर। बिहारी प्रेम दिखाने के सौ-सौ उपाय करता। रतन दिल की बात कहते हुए भी हिचकता, शरमाता, घबराता। रतन का गाम्भीर्य उसके हक मे हानिकर सिद्ध हुआ—बिहारी बाजी मार ले गया। उमा की दृष्टि मे रतन की गम्भीरता, उसकी शुष्कता और हृदय-हीनता के कारण थी; अतएव रतन यदि कुछ कहना भी चाहता, तो वह उसकी बात काट देती, या सुनती भी तो बे-मन। लेकिन अब उसे पहले की बातों पर पछतावा होता था।

पश्चात्ताप में उदारता होती है। उदारता में आलोचना-शक्ति नहीं होती। उदारता नदी की बाढ़ है, जो हर चीज़ हृदय मे छिपा लेती है। उदारता के आवेग में हम दूसरों मे उन गुणों का अनुमान करने लगते हैं, जिनके विद्यमान होने, या न होने का हमें निश्चय नहीं होता। उमा को रतन अब देव तुल्य दिखाई देते थे। वह सोचती—कैसा आदर्श जीवन है, कैसा मनोविराग! कैसी सहिष्णुता है, कैसा त्याग! मैंने उनके साथ कैसा अन्याय किया; लेकिन उन्होंने कभी शिकायत नहीं की। कोई और होता, तो यों ठण्डे दिल से न सह लेता। बहुत दिनों से नहीं आये। कहीं बीमार तो नहीं पड़ गये। जाने क्या बात हैं? पिछली बार जब आये थे, बड़े उदास दिखाई देते थे। मैं इसका कारण जाननी हूँ। मै ही इस उदासी का कारण हूँ, मैं ही इसे दूर करूँगी। इस निश्चय के बाद उमा ने रतन को एक पत्र लिखा और उन्हे डिनर के लिए निमन्त्रित किया।

सायङ्काल का समय था। रतन घूमने जाने के लिए तैयार हो रहे थे। इसी समय उन्हे उमा का पत्र मिला। उनके अश्चर्य की सीमा न रही। अपने मनमे कहा—यह नई बात कैसी? उमा ने पहले तो कभी ऐसा उदारता नहीं दिखाई थी। उस समय भी जब वह स्वतन्त्र थी और रतन उसके प्रेम मे दीवाने बने फिरते थे, उसने कभी ऐसा शब्द भी मुख से न निकाला था, जिससे रतन के नैराश्यपूर्ण हृदय में आशा अकुरित होती। फिर इस आकस्मिक कायापलट से रतन को आश्चर्य क्यों न होता? उसने

बिहारी से विवाह करके रतन की अवहेलना की—उसकी इस अनुदारता से रतन को दुःख होना स्वाभाविक था ; किन्तु वे विवश थे, क्या करते ? एक बाल्य-काल का मित्र था, दूसरी वह थी, जिसके सम्मुख हृदय की बात प्रकट करना, साहस का काम था। सिवा चुप रहने के कोई उपाय न था। उमा का विवाह हो जाने के बाद से उनका यह प्रयत्न रहता कि मन का भाव प्रकट न होने पावे। इसी सद्भाव से प्रेरित होकर वे उमा के यहाँ सप्ताह मे दो बार अवश्य जाया करते ; परन्तु उनकी कृतिम उदासीनता, आन्तरिक ज्वाला शान्त करने मे असमर्थ थी। उनके हृदय मे घोर संग्राम छिड़ा रहता। वे अपनी इच्छाओं और उमङ्गों को कुचल डालना चाहते थे ; किन्तु सोने का ढेर सामने पाकर उसकी ओर से मुँह फेर लेना विरले ही का काम है। वह संयम और मनोविराग की अलौकिक अवस्था है, जब मन इच्छाओं की बेड़ी से मुक्त हो जाता है। रतन के हृदय मे ईर्ष्या अकुरित हुई। एक आफ़त से जान छुड़ाने गये थे, दूसरी मुसीबत गले पड़ी। उन्हें अपनी ग़लती मालूम हुई, उमा के यहाँ जाना क्रमशः कम कर दिया—हफ्ते मे दो बार से हफ्ते में एक बार, हफ्ते मे एक बार से पन्द्रह दिन मे एक मर्तबा, और फिर महीने मे एक दफ़ा।

रतन के दिल मे आया कि टाल जायँ। बुद्धि ने कहा—जाना ठीक नहीं। ऐसी जगह जाने से क्या फायदा, जहाँ सिर-दर्द के सिवा कुछ हाथ न लगे ; लेकिन मन कब मानता है ? उन्होंने मन में फिर सोचा, यह अनहोनी बात ! यह स्वर्ण-अवसर ? उमा का

भेजा हुआ निमन्त्रण—जाना चाहिए, सिर-आँखों के बल जाना चाहिए। रतन ने जाना ही निश्चित् किया। उनकी दशा उस बालक की-सी थी, जो माँ से वादा करता है कि अब किसी चीज़ के लिए ज़िद न करूँगा ; लेकिन मिठाईवाले की आवाज़ सुनते ही फिर मचल जाता है।

उमा का सुसज्जित ड्राइंग-रूम विद्युत-प्रकाश से जगमगा रहा था। वह एक कोच पर पड़ी हुई एक पुस्तक पढने का प्रयत्न कर रही थी ; किन्तु पढ़ने मे जी नहीं लगता था। प्रतीक्षा मे चित्त की एकाग्रता कब प्राप्त होती है ? उसके नेत्र बार-बार द्वार की ओर देखते, निराश होकर लौटते और फिर देखते, कान किसी के पैर की आहट पाने के लिए आतुर थे। इतने मे नौकर ने रतनकुमार के आने की सूचना दी।

उमा ने बढ़कर मधुर मुस्कान से रतन का स्वागत किया, जैसे अरुणोदय के समय उषा की सौन्दर्य-माधुरी उद्यान के फाटक पर एकान्त-सेवी दर्शक का स्वागत करती है। रतन मन्त्रमुग्ध से हो गये। उमा के शृङ्गार और सौन्दर्य ने उनके साथ वह काम किया जो वाटिका की अनुपम छवि दर्शक के साथ करती है। पूर्व की स्मृतियाँ, बाल्यकाल के सुखद स्वप्न, हृदय की सुप्त आशायें जाग पड़ीं, मानो कवि के मस्तक मे विश्राम करती हुई कल्पना बाल सूर्य की शीतल रश्मियों से, वसन्ती समीर के मन्द झकोंरो से, सुगन्ध की लपटों से जाग गई हो ! रतन ने उमा को कितनी ही बार देखा था, रात्रि की अन्धकारमय नीरवता में कितनी ही बार

उसके सौन्दर्य की कल्पना की थी ; किन्तु पहले उसमे ऐसी आकर्षणी शक्ति नही थी । पहले उनको उमा के सौन्दर्य मे रहस्यमय कठोरता दिखाई देती थी, किन्तु आज वह माधुर्य की जीती-जागती तस्वीर थी ।

उमा ने मुस्करा कर पूछा—इतने दिनों तक आये क्यों नही ?

"अवकाश नहीं मिलता था ।"

"बाते न बनाओ। यह क्यों नहीं कहते कि जी नहीं चाहता था ?"

रतन—(झेपकर) नही, यह बात नही थी ।

"फिर क्या आपको इतना समय नहीं मिल सकता कि यहाँ आ सकते ? अवकाश तो कोई ऐसी चीज़ नहीं कि न मिल सके ।"

रतन—(विषय पलटने के निमित्त) आज बिहारी भाई कहाँ हैं ? दिखाई नहीं देते ।

"एक दावत मे गये हैं ।"

इतने मे नौकर ने आकर कहा—खाना तैयार है ।

दोनों खाने के कमरे मे चले गये । खाना मेज पर लगा दिया गया ।

"शुरू कीजिए ।"

"आप भी आयँ ।"

"यह तो नियम के विरुद्ध है। पहले मेहमान की खातिर होनी चाहिए ।"

"लेकिन यह भी तो नियम के विरुद्ध है कि मेहमान अकेला छोड़ दिया जाय ।"

उमा निरुत्तर हो गई। रतन की बात माननी ही पड़ी। खाना शुरू हुआ। खाने के साथ-साथ बातें भी होती जाती थीं। रतन को खाने में आज तक कभी ऐसा स्वाद न मिला था। एक-एक चीज़ की प्रशसा कर रहे थे। रसोइये ने खीर की दो तश्तरियाँ लाकर रख दीं और कहा—यह हुजूर की बनाई हुई चीज़ है। खीर बहुत अच्छी बनी थी, रतन को कोई चीज़ वैसी स्वादिष्ट न मालूम हुई। बार-बार जी चाहता था कि तारीफ करे; किन्तु मुख से एक शब्द भी न निकल सका। कोई और समय होता, तो उमा इस चुप का मतलब कुछ और समझती; परन्तु अब उसे स्वभाव का काफी ज्ञान हो चुका था। प्रशंसा के लिये शब्दों की आवश्यकता न थी।

भोजन के उपरान्त दोनों टहलते हुए बाग़ में चले गये। आकाश के नीले परदे से झाँकता हुआ द्वितीया का चन्द्रमा ऐसा जान पडता था, मानो किसी सुन्दरी के नीले घूँघट से उसकी ठुड्डी झाँक रही हो। असख्य तारे साड़ी मे टँके हुए सितारे थे।

उमा ने कहा—वह समय याद है जब हम, बिहारी और तुम घण्टों आकाश की शोभा देखा करते थे?

हृदय से निकली हुई ठण्डी साँस दबाते हुए रतन ने कहा—क्या वे बातें भूल सकती हैं?

"हम सब फूल चुनते और हार गूँथते थे।"

"हाँ, हम जब हार बनाने की कोशिश करते, कभी फूल चुक जाता, कभी धागा टूट जाता—तुम हस पड़तीं। एक बार बड़ी

मेहनत के बाद मैंने और बिहारी ने एक-एक हार तैयार किया और तुम्हे देना चाहा। तुमने बिहारी का ले लिया, मेरा नहीं स्वीकार किया।"

"रतन, वे पुरानी बातें भूल जाओ। मैं स्वयं नहीं जानती कि मैंने ऐसा क्यों किया। वह लड़कपन का ज़माना था, उस समय मुझमे अच्छे-बुरे की पहचान नहीं थी।"

इसी समय पास के घण्टाघर ने नौ बजने की सूचना दी, रतन ने कहा—अच्छा अब मैं जाता हूँ।

"फिर आओगे ? अवकाश मिल जायगा ?"

"अब अधिक लज्जित न करो। जब बुला भेजोगी, चला आऊँगा।"

"वादा करते हो ?"

"हाँ।"

रतन जब बाहर आये, उन्हें ऐसा मालूम होता था, माना आकाश में उड़े जा रहे हैं। अनुकूल जल-वायु पाकर प्रेम का सूखता हुआ पौधा फिर लहलहा उठा।

• • • •

कर्तव्य पूरा हो गया, उमा के हृदय का बोझ हट गया। उमा की दशा उस दरिद्र सफेदपोश की-सी थी जो अपनी दरिद्रता का ज्ञान विस्मृत करने के निमित्त मदिरा का सेवन करने लगता है। उमा लौटकर ड्राइंग-रूम मे आई और पढने में मग्न हो गई।

ग्यारह बजे के समय बिहारी घर लौटे। बिहारी ने पूछा—कोई

आया तो नहीं था ?—उमा ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—रतन आये थे। मैंने उन्हे खाने के लिए रोक लिया था।

उमा ने यह बात छिपा ली कि उसने रतन को स्वय निमन्त्रित किया था। उमा और बिहारी का वैसा सम्बन्ध नहीं था, जिसमे भेद रखने की गुञ्जाइस नहीं थी। वे एक-प्राण दो शरीर नही थे। दो शरीर थे, दो प्राण थे, दोनों पृथक्, दोनों भिन्न—पृथ्वी और आकाश का अन्तर।

बिहारी के मुख से शराब की बू आ रही थी। उमा को बडी घृणा हुई। वह उठकर शयनागार मे चली गई। बिहारी वहीं एक कोच पर लेट गये और यह ईरादा करते हुए कि अब चलते हैं, सो गए।

दूसरे दिन उमा ने बिहारी को वहीं कोंच पर पडे हुए पाया। आठ बज चुके थे, लेकिन उन्हे अभी होश न था। काग़ज़ के कई पुर्जें बिहारी के कोट की जेब मे आधे भीतर आधे बाहर निकले हुए दिखाई देते थे। रोशनदान से आती हुई सूर्य की किरणे उनके मुख पर पड़ रही थीं। कुतूहलवश उमा ने पुर्जे बाहर खींच लिये, उलटा-पलटा, पढने की इच्छा हुई। पहला एक होटल का बिल था, दूसरा एक पत्र। पत्र में लिखा था—

'प्रिय बिहारी बाबू,

मुझे इस बात का बड़ा दु:ख है कि उस दिन तुमसे एकान्त में मिलने का अवसर न मिला। मुझे आशा है, तुमने बुरा न माना होगा। तुम जानते हो, मुझे तुमसे कितना प्रेम है। पुरानी बाते इस

बात का सबूत है। अगले शनिवार को अवश्य आना। उस दिन यहाँ कोई न रहेगा।

तुम्हारी—

श्यामा[१]

पत्र लिये हुए उमा अपने शृङ्गार-गृह मे चली गई। पत्र फिर पढा—सन्देह दृढ़ हो गया। उमा को उदासीनता घृणा मे परिणत हो गई।

उमा लौटी कि जाकर पत्र बिहारी की जेब मे रख दे; लेकिन वे जाग चुके थे। अतएव उसने पत्र को अपने सन्दूक मे बन्द कर दिया।

(३)

उमा के लिये यह पत्र वैसा ही था, जैसे मदिरा बेचनेवाले के लिए सरकारी लाइसेंस। रतन को बुलाना, या उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करना, पहले उसे अनुचित जान पड़ता था; किन्तु अनुचित अब उचित हो गया। बिहारी के अक्षम्य विश्वास-घात के सामने उसका अपना अपराध दब गया। वह सोचती—क्या विश्वास-घात का स्वाभाविक उत्तर विश्वासघात नही? उन्होंने मुझे धोखा दिया सब्ज़ बाग़ दिखाया, क्या मैं उस व्यक्ति के साथ सहानुभूति भी न प्रकट करूँ, जिसके साथ अनुचित व्यवहार करने के कारण आज मुझे ये दिन देखने पड़े? यदि वह उचित था, तो यह भी उचित है।

पहले जब बिहारी अपने दोस्तों की दावतों में शरीक होने का

प्रस्ताव करते, तो उमा उन्हे रोकने का भरसक प्रयत्न करती ; किन्तु अब बिना कुछ कहे-सुने सहमत हो जाती। यदि वे आर्थिक सहायता माँगते, तो बिना आना-कानी किये दे देती। पहले उसे उनकी अनुपस्थिति से दुःख होता था, अब उनकी उपस्थिति से।

रतन और उमा का सम्बन्ध अब उस दरजे को पहुँच चुका था, जब उसे केवल पारस्परिक सहानुभूति कहना सत्य नहीं। एक को दूसरे की सगति अत्यन्त आवश्यक हो गई थी, बिछुड़ना खल जाता। रतन यदि किसी दिन न आते, या आने मे देर करते, तो उमा व्याकुल हो जाती, शङ्कायें घेरने लगतीं। बार-बार नौकर भेजती और बुलाती। दोनों कभी घूमने निकल जाते, कभी बाइस्कोप देखने जाते, और कभी घर ही पर आनन्दोत्सव मनाते।

इसी प्रकार धीरे-धीरे दिन बीतने लगे। उमा का सौन्दर्य दिनो दिन निखरता जाता था, शरीर से आभा फूटी पड़ती थी, होठों पर हर्ष का माधुर्य था, नेत्रों मे यौवन का मद। उसकी दशा उस कोमल पुष्प के समान थी, जो बाल सूर्य की प्राणपोषक रश्मियों और वसन्ती समीर के मधुर स्पर्श से अधिक कोमल, अधिक प्रफुल्ल, और अधिक सुरभित हो जाता है। रतन इस पुष्प पर भौंरे की भाँति रीझे हुए थे।

(४)

बिहारी ने जब उमा के साथ विवाह करने का इरादा किया था, तब केवल आर्थिक लाभ का ही विचार न था। उन दिनों उन्हें सुधार की धुन सवार थी। इस अस्वाभाविक काया-पलट का

एक-मात्र कारण था धनाभाव । पैतृक सम्पत्ति का विशेषांश रङ्ग-रेलियों में पड़ चुका था, जो शेष था, उस पर महाजनों के दाँत लगे हुए थे। ऐसी शोचनीय दशा मे सिवा आत्म-शुद्धि के, उद्धार का क्या उपाय था ? सुधार बिना किसी दूसरे की मदद के आसान काम नहीं। निर्धन की दृष्टि धनवान् पर ही पडती है। हम आत्मिक प्रेरणा अथवा आर्थिक सहायता के निमित्त अपने से अच्छी दशावाले का ही मुँह ताकते है—यह मानव-स्वभाव है। बिहारी की उमा पर नज़र पडी। वह मालदार थी—उसके पास दौलत का खज़ाना भी था और रूप का भी। उसका धन उन्हे महाजनों के पञ्जों से मुक्त कर सकता था और उसका सौन्दर्य रूप के बाज़ार के फन्दों से। बिहारी ने प्रेम का स्वाँग भरा, जाल फैलाया—वह फँस गई ; लेकिन खज़ाना हाथ लगते ही बिहारी का मन भी बदल गया, जैसे बोतल सामने देखते ही तौबा किये हुए शराबी की तबीयत बदल जाती है। सुधार की प्रेरक आन्तरिक ग्लानि न थी, धनाभाव था। सौन्दर्य का बाज़ार फिर अपनी ओर खींचने लगा।

आकर्षण में स्थिरता नहीं होती। किसी वस्तु का आकर्षण उसकी नवीनता होती है। निरन्तर का सहयोग आकर्षण का घातक है। बालक को अपना खिलौना तभी तक प्रिय होता है, जब तक वह नया रहता है। बिहारी पर उमा के सौन्दर्य का प्रभाव अधिक समय तक न रह सका। उसमें वे बातें कहाँ, जो बाज़ारू औरतों में होती हैं—न वह हाव-भाव, न वह कटाक्ष, न वे

चुहले, न वे रसीली बातें और फिर हृदयहीन, स्वार्थ-रत भौंरा एक ही फूल का होकर नही रह सकता !

रात को दस बज चुके थे। मिस्टर बिहारीलाल अपने तीन अन्य मित्रों के साथ 'अलाएस होटल' से झूमते हुए बाहर निकले।

"बिहारीलाल—भई, आज खूब लुत्फ़ रहा।"

"हॉं, लेकिन एक बात की कमी थी।"

"किस चीज़ की ?"

"कोई साकी न था।"

"हॉं, मजा तो तब था, जब कोई सुन्दरी पिलाती।"

"यह तो कोई मुश्किल न था।"

"भई, यह तो बडी चूक हुई।"

"लेकिन यहॉं किसे लाते ? यहॉं इतनी आजादी नहीं।"

"सच तो यह है, कि यह जगह पीने-पिलाने के लिए ठीव नहीं, हर तरह के आदमी आते रहते है।"

"इसके लिये पूरा एकान्त चाहिये कोई बाग़ हो और चॉंदनी रात।"

"नहीं, भूलते हो। दरिया का किनारा हो और चॉंदनी रात।"

"और कोई सुन्दर पिलानेवाली हो, तो एक बार परहेज़गारों का भी तोबा टूट-जाय।"

बिहारीलाल—तो इसमे क्या मुशकिल है, अगले शनिवार को यह भी सही।

सहसा बिहारीलाल को कुछ ख़याल आया। उन्होंने चौंककर

कलाई पर बँधी हुई घडी देखी और कहा—बडी भूल हुई। अच्छा, मैं आप लोगों से इजाज़त चाहता हूँ।

"नहीं-नहीं, इस समय कहाँ जाओगे।"

"मुझे बडा ज़रूरी काम है,"—यह कहते हुए बिहारीलाल अपनी गाडी की ओर बढे। कोचवान ने अदब से गाडी का दर-वाज़ा खोल दिया। बाबू साहब सवार हुए। गाड़ी हवा से बातें करने लगी। मित्रों को रोकने का मौका न मिला।

आध घण्टे मे गाडी चौक पहुँची। बिहारीलाल उतरे और कोचवान को रुके रहने की ताकीद करके एक गली मे घुस गये। गली मे सन्नाटा छाया हुआ था, कुत्ते भी भूँकते-भूँकते थक गये थे और जगह-जगह कूडे के ढेरों पर पड़े झपकियाँ ले रहे थे, गली अँधेरी थी; लेकिन बिहारी इस शीघ्रता और सफाई से चले जा रहे थे, मानो नित्य चलते-चलते उनके पैर गली के एक-एक कंकड-पत्थर से परिचित हो गये हों। बिहारी एक विशाल भवन के सामने जाकर रुक गये। मकान के नीचे का हिस्सा अँधेरा पड़ा था; लेकिन ऊपर की खिडकियों से रोशनी छन-छनकर सामने के मकान पर पड़ रही थी। पूर्ण निस्तब्धता छाई हुई थी—वह विचारोत्पादक निस्तब्धता, जो गाना रुकने के बाद फैल जाती है। बिहारी ने दरवाज़ा खटखटाया, कोई जवाब न मिला; हाँ इसी समय सारङ्गी के तारों से निकला हुआ कोमल-मधुर स्वर दिशाओं में गूँज उठा। तबले पर थाप पड़ी और किसी सुन्दरी के कोमल कण्ठ से निकला हुआ, दिल खींच लेनेवाला अलाप सारङ्गी के लय

से हिलमिलकर नृत्य करने लगा। बिहारी इस अलाप से भली-भाँति परिचित थे। यह श्यामा के कोमल कण्ठ से निकली हुई अलाप थी। यह वह अलाप थी, जिसे सुनते ही बिहारी आनन्द से विह्वल हो जाते, जी चाहता, कि इसे कलेजे मे बिठा ले और हृदय-तन्त्रियों मे सदा के लिए बन्द कर लें, किन्तु आज वही अलाप उनके हृदय में शूल चुभा रही थी। पहले यही अलाप बिहारी के लिये प्रेम और हर्ष का सन्देश होती थी, परन्तु आज यही अलाप श्यामा की बेवफाई की स्पष्ट घोषणा थी। बिहारी ने फिर ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाया, लेकिन फिर भी किसी ने जवाब न दिया। उन्हे बड़ा क्रोध आया। जी तो यही चाहता था, किसी तरह किवाड़ खुलवाकर अन्दर जायँ और श्यामा को खूब फटकारें, लेकिन इसमें बदनामी-ही-बदनामी हाथ रहती। बिहारी उलटे पाँव लौटे और सड़क की ओर चले। घोर हार्दिक वेदना की दशा में सोचते चले जाते थे—यह है दुनियाँ का रङ्ग। जिसके साथ प्रेम करो, वही गला काटने को तैयार हो जाता है। यही है, श्यामा जिसके प्रेम की कहानियाँ सुनते-सुनते कान पक गये। आज तोते की तरह नज़र फेर ली। मुझे आने मे ज़रा-सी देर हो गई, इसने यहाँ यारों को अन्दर दाख़िल कर लिया। इसके लिये मैंने क्या उठा रक्खा, इसके पीछे मैंने क्या नहीं बिगाड़ा? धन, दौलत, रियासत—सब खाक मे मिल गई; लेकिन फिर भी इसका मुँह सीधा न हुआ। महीने में तीन-चार सौ देता था; फिर भी इसकी फ़रमाइशें बनी रहती थीं; लेकिन मैंने कभी शिकायत नहीं की।

मेरा तो यह बर्ताव और इसकी यह तोताचश्मी। इसी के लिये उमा को धोखा देता हूँ, नित नई-नई चालें खेलता हूँ, रुपये ऐंठता हूँ और इसके कलेजे मे भरता हूँ। घण्टों घर से गायब रहता हूँ, महीनों बीत गये, आधी रात से पहले कभी घर नहीं गया। प्राय: सारी रात बाहर ही कट जाती है। उमा मन मे क्या सोचती होगी? मन-ही-मन मे कुढती होगी। यह बडी बेजा बात है।

सडक सामने आ गई। कोचवान बैठा ऊँघ रहा था। उसे 'साहब' के इतना शीघ्र लौट आने पर बडा आश्चर्य और दुःख हुआ—ग़रीब की नींद भी पूरी न होने पाई, गाडी रवाना हुई और आध घण्टे मे बँगले पर पहुँच गई।

बिहारी का विचार था, कि उमा ड्राइंग-रूम में पडी हुई अपनी हालत पर अफसोस करती होगी, या सो गई होगी, लेकिन ड्राइग रूम ख़ाली पडा था, वहाँ कोई न था। उन्होंने शयनागार मे जाकर देखा, उमा वहाँ भी न थी। एक-एक कमरे मे जाकर देखा—उमा कहीं भी दिखाई न दी। उन्हे बड़ा आश्चर्य हुआ।

नौकर बरामदे मे पडा सो रहा था, बाबू साहब ने उसे जगाया और पूछा—मलकिन कहाँ है?

"हूजूर कुछ बताया नहीं, कहीं घूमने गई हैं।'

बिहारी का माथा ठनका, सहस्रों शङ्कायें घेरने लगीं—यह क्या माजरा है? ज़िन्दगी से आजिज़ आकर उसने कहीं जान तो नहीं दे दी? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। उमा ऐसी नादान नहीं, उससे ऐसी मूर्खता नहीं हो सकती। फिर, क्या बात है?

आखिर वह गई कहाँ ? कुछ समझ मे नहीं आता। बिहारी इसी उलझन मे फँसे हुए एक कोच पर आकर लेट गये। वे इस दशा मे दस मिनट रहे होंगे, कि उन्हे किसी गाडी के पहियों की आवाज़ सुनाई दी। वे झपटकर बाहर आये।

उमा गाड़ी से उतर रही थी और एक सफेदपोश महाशय बँगले से बाहर जा रहे थे। बिहारी ने उमा से पूछा—कहाँ से आ रही हो ?

"सिनेमा देखने गई थी।"

"और कौन साथ था ?"

"रतन थे।"

"तुमने मुझे नहीं बताया, कि सिनेमा देखने जाओगी ?"

"क्या तुम मुझे अपनी सारी बाते बताया करते हो ?"

बिहारी निरुत्तर हो गये। आज वे स्वय अपनी दृष्टि मे दोषी थे।

(५)

प्रतिक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। बिहारी अब विशेषत: घर ही पर रहते थे।उनका हृदय एक बार फिर दाम्पत्य के सरल सुखों के लिये लालायित हो उठा , किन्तु वे जितना प्रेम करने का प्रयत्न करते, उमा उनसे उतना ही दूर भागती। उसे उनसे डर-सा लगता था—उनसे मिलने मे अधिक वेदना होती थी। अब वह उन्हे अपना शुद्ध विमल प्रेम नहीं दे सकती थी। उनका उसके शरीर पर अधिकार अवश्य था; किन्तु उसका स्वतन्त्र हृदय

और उसमें बहता हुआ प्रेम का निर्मल स्रोत अब दूसरे का हो चुका था। वह बिहारी की ओर से जितना खिंचती, रतन की ओर उतना ही बढती। बिहारी देख रहे थे कि वह उनकी ओर से उदासीन हो रही है, परन्तु उनकी समझ मे कोई कारण न आता था।

(६)

यौवन और वासना का अटूट सम्बन्ध है। वासना प्रम का घातक है; किन्तु प्रेम को वासना के तीव्र आघातों से बचाये रखना बिरले का ही काम है। कौन है, जो आत्म-सयम का महत्त्व नही जानता? कौन ऐसा है, जो हृदय को वासना की कालिमा से पवित्र रखने का प्रयत्न नहीं करता? परन्तु, सुन्दरी के भेद-भरे नयनों का एक साधारण कटाक्ष, उसके सरस अधरों की सरल मुस्कान, उसके अञ्चल की एक लहर, चित्त को चञ्चल कर देने के लिए बहुत है।

रतन काम के बाणों का वीरता के साथ सामना कर रहे थे; परन्तु एक सहस्र सैनिक के तीव्र आघातों का बेचारा निहत्था आदमी कब तक सामना कर सकता है? जानते थे कि हार निकट है; किन्तु वे निरुपाय थे। रतन सोचते—इस प्रेम का कहाँ अन्त होगा? उमा मुझसे प्रेम अवश्य करती है; किन्तु यह प्रेम उसी समय तक है, जब तक हमारा सम्बन्ध निष्काम है। यदि मुझसे जरा-सी भी असावधानी हुई, तो वह मुझसे अवश्य घृणा करने लगेगी; लेकिन मैं कितने दिनों तक दामन बचा-बचा-

कर चलूँगा ? मैं अपने दिल को अपने वश मे नहीं रख सकता। यदि बिहारी को ये बातें मालूम हो गईं, तो वे क्या कहेंगे ? दोस्ती, मुरौवत सबका अन्त हो जायगा और बदनाम भी हो जाऊँगा। मैं वहाँ जाता ही क्यों हूँ ? अच्छा, आज से कभी न जाऊँगा; परन्तु इस पवित्र सकल्प का उसी समय अन्त हो जाता, जब उमा के यहाँ से बुलावा आता।

उमा के हृदय मे प्रतिशोध की इच्छा प्रबल थी। वह बिहारी को दिखा देना चाहती थी कि स्त्री केवल पुरुषों की इच्छाओं की दासी नही—उसके अपने भी स्वत्व है, अधिकार है, इच्छाएँ है। रतन उसकी कार्य-सिद्धि के साधन-मात्र थे। उमा नित्य नया शृङ्गार करती, नये-नये, आभूषण पहनती, नई-नई साड़ियाँ बदलती, रतन को रिझाती और उनका साहस बढ़ाती। इस कार्य मे कहाँ तक इच्छाओं का भाग था और कहाँ तक उस गुप्त प्रेरणा का, जो हमे अज्ञात रूपसे कार्य-सम्पादन मे योग देती है—यह कहना कठिन है। किन्तु इसमे लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि उमा मे कार्य-सिद्धि की वह प्रबल कामना थी, जो बलिदान के मूल्य की परवा नहीं करती।

फागुन का महीना था, सन्ध्या का समय। ऋतुराज के आगमन के आनन्द मे कुसुम-कुञ्ज और पुण्य-उद्यान सौरभ, सौन्दर्य, अलङ्कार और रङ्ग से वैसे ही सजे हुए थे, जैसे परदेश से लौटे हुए पतियों का स्वागत करने के लिए युवती रमणियाँ शृङ्गार करती हैं। उमा और रतन वाटिका में टहल- रहे थे। उमा ने

गुलाब का एक अधखिला फूल तोडा और रतन के कोट में लगाने लगी। एक तो सौरभ, रङ्ग और समीर की उत्तेजक शक्ति, और फिर प्रेमी के कोमल करों का मधुर स्पर्श—रतन सिहर उठे, बदन मे बिजली-सी दौड़ गई, हृदय की गति तीव्र हो गई। उमा की उँगलियाँ अपना काम पूरा कर चुकी थीं, वह हाथ हटाना ही चाहती थी कि रतन ने विद्युत-वेग से उमा की कुसुम-कोमल हथेली अपने गर्म हाथों मे ले ली। उमा का मुख आरक्त हो गया, आँखे नीली हो गई। उसके हृदय मे लज्जा अधिक थी, या विजयोल्लास—यह कहना कठिन है। इसी समय बँगले मे किसी गाडी के प्रवेश करने का शब्द हुआ। उमा ने हाथ छुड़ा लिया और शीघ्रता से वाटिका के बाहर चली गई। गाड़ी मे बिहारी आये थे। बिहारी ने उमा को वाटिका से निकलते देख लिया। उन्हे कुछ सन्देह हुआ। वे गाड़ी से उतरते ही बाग़ मे गये और रतन को मानसिक विकलता की दशा में भूमि की ओर ताकते हुए पाया। रतन को बिहारी के आने की खबर तक न हुई, वे वैसे ही खडे रहे। बिहारी उलटे पैर लौट आये। सन्देह में अंकुर फूट पड़ा। उमा की उदासीनता का कारण स्पष्ट हो गया। बिहारी ने सोचा—ये महाशय आज-कल यहाँ क्यों चक्कर काटा करते हैं। पहले तो इतनी कृपा न करते थे। इसमे कुछ-न-कुछ भेद अवश्य है।

(७)

रतन की इस समय वह दशा थी, जो पहली बार शराब पीने

पर नशा उतरने के बाद हो जाती है। आत्मिक वेदना भी थी, पश्चात्ताप भी था। मानसिक अशाति की दशा मे सोचते थे—उमा ने मन में क्या सोचा होगा? कहीं मुझे चरित्रहीन न समझने लगे। उसने कुछ कहा नहीं, चुपचाप बाहर चली गई–इसका क्या मतलब है? उसने जरूर बुरा माना होगा। मुझसे बड़ी ग़लती हुई, मुझे उस समय न-जाने क्या हो गया था। उमा से आँखें मिलाकर अब कैसे बाते करूँगा? नहीं, अब मैं वहाँ कभी न जाऊँगा। रतन इसी उलझन मे बडी रात तक जागते रहे। अन्त में निद्रादेवी को उनकी शोचनीय दशा पर दया आ गई।

- रतन ने उमा के यहाँ न जाने का आज पहली ही बार सङ्कल्प न किया था। उनके इस प्रकार के इरादों का मूल्य सिद्ध हो चुका था। वे इस बात से स्वय लज्जित थे।

वाटिकावाली घटना को कई दिन बीत गये। रतन ने अभूत-पूर्ण दृढ़ता दिखाई—सङ्कल्प में शिथिलता न आने दी। इस बीच मे उमा के पास से कोई बुलावा न आया। रतन का यह सन्देह कि उमा मुझपर नाराज़ है, जोर पकड़ता जाता था। उनकी मानसिक अशाति बहुत कुछ घट गई थी। उन्हे थोडा-बहुत दु:ख अवश्य था; किन्तु वे मन को इस प्रकार समझाते—चलो अच्छा हुआ, बला से जान छूटी। अब बात छिपी रह जायगी। मुझे अपनी भूल भी मालूम हो गई; नहीं तो न जाने कब तक धोखे मे रहता—साधारण सहानुभूति को प्रेम समझ बैठा, कितनी बड़ी नादानी थी।

एक दिन सन्ध्या-समय वायु-सेवन के बाद रतन जब होस्टेल लौटे तब उन्हे अपने कमरे मे एक बन्द लिफाफा पडा मिला। रतन ने लिफाफा उठाकर देखा, हस्त-लिपि उमा की थी। रतन का हृदय वेग से धडकने लगा। काँपते हुए हाथों से लिफाफा खोला। पत्र मे लिखा था—'

'प्रिय रतन,

आज पाँच दिन हो गये। तुमने सूरत नहीं दिखाई। क्या मुझसे नाराज़ हो? बडी प्रतीक्षा कराते हो? परन्तु इसमे तुम्हारा कोई दोष नहीं, दोष मेरा है कि प्रेम के हाथों ऐसी बिक गई। अब कब आओगे? आज सध्या-समय अवश्य आना। मैं तुम्हारा इन्तज़ार करूँगी।

दर्शनाभिलाषिनी,

उमा।'

पत्र देखकर रतन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा था कि उमा ने खूब खरी-खोटी सुनाई होगी, लेकिन यहाँ तो पाँसा ही पलटा हुआ था। रतन के हृदय-सागर मे आनन्द की लहरें उठने लगीं। आज पहला ही अवसर था कि उमा ने स्पष्ट शब्दों में अपने मन की बात कही। आज उन्हें प्रत्येक वस्तु मे सुन्दरता दिखाई देती थी और प्रत्येक वस्तु मे स्वाभाविक सहानुभूति। नीरव गगन मे वसन्त की मधुर श्री फूटी पडती थी। कुसुम-कुञ्जों से आती हुई समीर सुगन्ध से लदी हुई थी। सामने वृक्ष पर चहकती हुई छोटी-छोटी चिड़ियों के सुमधुर कल-रव मे प्रेम के राग थे।

रतन चाहते तो थे कि न जायँ, किन्तु कोई प्रबल प्रेरणा उन्हे उमा के घर की ओर बलात् खीचे लिये जाती थी, पैर स्वयं चले जाते थे। इच्छा-शक्ति विवश थी।

(८)

गोधूलि का समय था। आकाश मे फैली हुई लाली निशा-सुन्दरी की कालो चादर मे छिपी जाती थी। बिहारीलाल अपने बँगले के आहाते मे वेग से घुसे और सीधे पाटिका मे चले गये। उनकी दशा इस समय उस गुप्तचर की-सी थी, जो कोई रहस्य खोलने मे व्यस्त हो। बिहारी ने ध्यान से इधर-उधर देखना शुरू किया, माता प्रकृति अपने सुकुमार बच्चों को थपकी देती हुई सुला रही थीं; किन्तु चञ्चल वासन्ती समीर एक न चलने देता था। लताएँ और पुष्प हठी बालकों के समान मचलते और सिर हिलाते; परन्तु यह प्रेम-क्रीड़ा देखने के लिए बिहारी के आँखें न थीं। उन्हे कुछ और ही धुन सवार थी। उनकी भेद-भरी आँखे जिन्हे ढूँढती थी, वे वहाँ दिखाई न दिये। बिहारी ने सोचा—क्या वार खाली जायगा? वे कुञ्ज की ओर बढे। लता-भवन सूना पड़ा था। बिहारी को बड़ी निराशा हुई। उन्हे पूर्ण विश्वास था कि उमा और रतन इस समय वहाँ अवश्य होंगे। उन्हे मिलने का अवसर देने के लिए आज वे प्रातःकाल से ही घर से बाहर चले गये थे। वे पास ही पड़ी हुई एक बेच पर बैठ गये, मस्तिष्क मे विचार-तरङ्गे उठने लगीं।

बिहारी आत्म-विस्मृत की दशा मे बड़ी देर तक बैठ रहे। सहसा

उन्होंने चौंककर सामने देखा। चन्द्रमा की स्वर्ण रश्मियाँ पत्तों के झुरमुट से छन-छनकर वाटिका में मन्द-मन्द रहस्यमय प्रकाश फैला रही थीं। स्वर्ण-रक्त-रञ्जित चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी सुन्दरी के मुख पर लज्जावश गुलाबी दौड़ गई हो। बिहारी को किसी के बात-चीत करने की आहट मिली। वे उठकर शीघ्रता से एक सघन वृक्ष की आड में छिपकर देखने लगे। आगन्तुक कोई और नहीं, उमा और रतन ही थे। दोनों पास आ गये। बिहारी के कौतूहल का इस समय कुछ ठिकाना न था।

रतन ने कहा—आज मेरे जीवन का स्वर्ण-दिवस है।

उमा ने मुस्कुराकर उत्तर दिया—और मेरा भी।

अपने भाग्य को धन्यवाद दूँ, या इन प्यारे हाथों को—यह कहते हुए रतन ने उमा की कोमल हथेली अपने जलते हुए हाथों मे ले ली और तप्त अधरों से उस पर प्रेम का प्रथम चिह्न अङ्कित कर दिया।

बिहारी को अब अधिक प्रमाण की आवश्यकता न थी। वे अब ज्यादा न देख सके, झपटे और क्रोध एवं घृणा की मूर्त्ति बने हुए उन दोनों के सामने जाकर खड़े हो गये। उमा और रतन क्षण-भर तक हतबुद्धि से ताकते रहे। आश्चर्य और क्षुद्रता मूर्त्तिमान् हो गई थी। उमा सँभली और चुपचाप वाटिका से बाहर चली गई। रतन ने भी जाना चाहा; किन्तु बिहारी ने व्यंग्य-वाक्य से रोककर कहा—जाते कहाँ हैं महोदय? ठहरिए, मेरी भी सुनते जाइए।

थे—कैसी घोर नीचता है! कैसी अक्षम्य कायरता! प्रेमिका के पत्र को जिसका मूल्य प्राणों से अधिक होना चाहिए, प्राण-रक्षा का यन्त्र बनाना—इससे घृणित कौन-सी कायरता हो सकती है। यदि प्राण देकर भी रतन को पत्र वापस मिल सकता तो उन्हे उसे लेने मे तनिक भी सकोच न होता; किन्तु यह वैसा ही कठिन था, जैसे मुख से निकली हुई बात या कमान से निकले हुए तीर का वापस लौटना!

(९)

उमा खेद और दुख की मूर्त्ति बनी हुई बैठी थी—खेद इस आकस्मिक घटना पर था, दु:ख भण्डा फूट जाने का। बिहारी ने कमरे मे प्रवेश किया। उसके मुख पर वह गाम्भीर्य था, जो क्रोध और घृणा की अन्तिम सीमा है। बिहारी ने उमा के सामने उसका प्रेम-पत्र फेक दिया, किन्तु मुख से कुछ न कह सके। उमा पर वज्रपात-सा हुआ। उसके लिए वह पत्र वैसा ही था, जैसे अभियुक्त के लिए अदालत का फैसला। उमा हत-बुद्धि-सी मूर्तिवत् बैठी रही।

उमा की खामोशी ने बिहारी की जबान खोल दी—उमा, मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। मुझे स्वप्न मे भी यह आशङ्का न थी कि तुम इतना नीचे गिर जाओगी। ऐसा छिछोरापन! मेरे विश्वास का यों मटियामेट!

उमा अब अधिक न सुन सकी। अपराधी मनुष्य साधु-चरित्र आदमी की कड़ी-से-कड़ी बात सुन सकता है; किन्तु उस मनुष्य

का साधारण आक्षेप भी असह्य हो जाता है, जिसके चरित्र के विषय में उसे स्वयं सन्देह हो। उमा को केवल सन्देह ही नहीं था, उसके पास प्रमाण भी था। फिर वह बिहारी की बातें कैसे सह लेती? प्रतिघात की मात्रा प्रबल हो गई। उमा का अङ्ग-अङ्ग फड़कने लगा। उसकी दशा छेड़ी हुई सर्पिणी के समान हो गई। उमा ने बिहारी को सरोष नेत्रों से देखकर उत्तर दिया—लेकिन इसकी सारी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है। क्या तुमने प्रेम का स्वाँग भरकर मुझे जाल मे नहीं फँसाया? मेरी आशाओं का खून नही किया? तुम्हे मुझसे नहीं मेरे धन से प्रेम था।

"यह सरासर झूठा आक्षेप है मेरा प्रेम सत्य था और मैं उस पर अब से घण्टे-भर पहले दृढ़ रहा हूँ, लेकिन अब मेरी आँखों का परदा उठ गया।"

"झूठ नही बिलकुल सच है, तुमने मेरे साथ विश्वास-घात किया बाजारू औरतों के पीछे दौड़ते फिरे।"

बिहारी ने कृत्रिम क्रोध से कहा—उमा अब मैं ज्यादा सहन नहीं कर सकता। अपनी करतूतों पर पर्दा डालने के लिए, मुझ पर मिथ्या आक्षेप करती हो।

"यह बात झूठी नहीं है, मेरे पास इसका सबूत है"—यह कहकर उमा उठी और अपने शृंगार-गृह में चली गई। सन्दूक खोलकर एक पत्र निकाला। यह श्यामा का वही पत्र था, जिसे उसने बिहारी की जेब से निकाल लिया था। उमा ने पत्र लाकर बिहारी के सामने फेक दिया। बिहारी ने पत्र उठाकर पढ़ा और

उमा की ओर आश्चर्य-पूर्ण नेत्रों से देखा। वे निरुत्तर हो गये, अधिक कुछ न कह सके। उमा उठकर बाहर चली गई। उसके नेत्रों मे विजय-गर्व था।

उमा जीती अवश्य, किन्तु उसके हृदय में विजय का आह्लाद न था, पराजय की दारुण-वेदना थी। सजग आत्मा हृदय मे चुटकियाँ ले रही थी। अधिकारों की रक्षा के लिए चरित्र का बलिदान! आज वह स्वय अपनी दृष्टि मे गिर गई। वह धन और वैभव की गोद में पली थी, प्रेम और स्नेह उसके जीवन का आधार था। आज वह प्रेम के लिए किसका मुँह ताके—पुरुष समाज का, जो आज उसे धूर्तों एव कायरों से भरा दिखाई देता था? अब वह जीवित रहे, तो किसके बल पर? उसे अपना अस्तित्व शून्य एवं निरर्थक जान पडता था। उमा अभिमानिनी थी। जब वह अपने शृङ्गार-गृह मे जाकर शीशे के सामने खड़ी होती, और अपनी सुन्दरता अवलोकन करती, तब उसके नेत्रों में गर्व का मद छा जाता, हृदय मे विजय-कामना हिलोरे लेने लगती। आज उसने शीशे के सामने खड़े होकर अपने एक-एक अङ्ग को ध्यान से देखा; किन्तु आज वह आनन्द, वह उल्लास न प्राप्त हुआ। उसे अपने सौन्दर्य से भी घृणा हो गई।

(१०)

बिहारी का क्रोध अब बिलकुल शान्त हो गया था! वे वाटिका में बैठे हुए घटना-क्रम पर निष्पक्ष होकर विचार कर रहे थे। उमा के ये शब्द कि 'इसकी सारी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है' अभी तक

उनके कानों गूँज रहे थे। वे ज्यों-ज्यों विचार करते, उन्हे अपना ही दोष दिखाई देता। यदि मै श्यामा के कृत्रिम प्रेम मे न फँसता, तो आज यह दिन क्यों देखना पडता? यद्यपि मैंने स्वार्थ-वश उमा से विवाह किया था; किन्तु उमा मुझसे प्रेम करती थी, यदि वह मुझसे प्रेम न करती होती, तो रतन को छोडकर मुझसे विवाह ही क्यों करती? मेरे हृदय मे शनैः-शनैः प्रेम अंकुरित हुआ—हाँ, यह निरन्तर सहवास के कारण अवश्य था। हम दोनों एक दूसरे के साथ सुखी थे; परन्तु मैंने स्वय अपने पैरों मे कुल्हाडी मारी। उमा के प्रेम की अवहेलना की। ऐसी दशा मे मुझसे उसके मन का फिर जाना स्वाभाविक ही था। यह मानव-स्वभाव है, इसमे उमा का दोष नहीं? सारा उत्तर-दायित्व मुझ पर ही है। जब सारा दोष मेरा ही है, तब मुझे उमा से नाराज होने का कोई हक नही। अब क्या करूँ? उमा से मेल कर लेना चाहिए।

इस निश्चय के बाद बिहारी उठकर भीतर गये। ड्राइग-रूम मे दीवार पर लगी हुई घडी मे डेढ बजा था। बिहारी ने सोचा—उमा सो रही होगी। वे शयनागार की ओर गये। धीरे से दरवाज़ा खोला और भीतर प्रवेश किया। मेज़ पर जलती हुई मोमबत्ती ऐसी जान पडती थी, मानों किसी कबर पर जलता हुआ चिराग़ आँसू बहा रहा हो। उमा पलग पर पड़ी हुई थी। ऐसा जान पडता था, मानो कमरे में फैला हुआ प्रकाश उसके लावण्य का प्रकाश है। बिहारी धीरे-धीरे आगे बढ़े। वे झुके और उमा के

बन्द नेत्रों पर क्षमा और प्रेम का चिह्न अङ्कित कर दिया ; परन्तु सहसा वे चौंक पड़े और उमा के मुख की ओर ध्यान से देखने लगे। कलाई पर हाथ रक्खा, नब्ज का कहीं पता न था। हृदय पर हाथ रक्खा, गति स्थगित हो चुकी थी। चिराग बुझ चुका था, यात्रा समाप्त हो चुकी थी। उमा का निर्जीव शरीर मृत्यु-शय्या पर पड़ा था। फर्श पर एक खाली शीशी पड़ी थी, जिस पर अँगरेजी अक्षरों मे लिखा था—'विप'। बिहारी के मुख से एक चीख निकल गई। वे लास से लिपट गये। बिहारी के प्रेमाश्रु से भीगा हुआ उमा का आभाहीन मुख ऐसा जान पड़ता था, मानो अरुणोदय के समय ओस मे नहाया हुआ कोमल पुष्प हो!